मुल्कराज

मुल्कराज आनन्द

आह ! वह मेरा बचपन,
समस्त ऋतुओं का राजपथ,
अकिंचन भिखारियों से भी अधिक निर्लिप्त,
जिसे न देश
और न मित्रों का अभिमान था—
कैसी अबोध अज्ञानता थी वह—
और अब,
केवल अब ही
मैं यह समझ पाया हूं।

—रिम्बो

मां की स्मृति

पहला भाग

पहला भाग

सड़क

"मुझे सड़कें पसंद हैं, गलियां और वीथियां पसंद हैं और मुझे घूमना-फिरना और सैर करना पसंद है, क्योंकि इससे विचारों को एक क्रमबद्ध सूत्र में विकसित करने का अवसर मिलता है। कई बार तो आत्मबोध और नई सूझ प्राप्त होती है और यह सब अपनी ही पदचाप के कारण। चलना-फिरना तन को स्वस्थ रखनेके लिए एक शारीरिक व्यायाम-मात्र ही नहीं बल्कि व्यक्तित्व को बनाए रखने के लिए यह एक मानसिक प्रशिक्षण है...."

—*अज्ञात*

धूप स्वर्णधूलि-सी फैली हुई है। हवा में सरसराहट है, जैसे सोने के कण इधर-उधर उड़ रहे हों। झुरमुट के हरे पेड मियां मीर के सफेद दढियल प्रेत पर अपनी स्निग्ध छाया डाल रहे हैं, जो मां के कथनानुसार रहटवाले कुएं में रहता है। हमारे मकान की एक ओर लम्बी-लम्बी बारकें हैं, जिनमें सिपाही रहते हैं और दूसरी ओर साहब लोगों के सफेद और चमचमाते बंगले हैं, जिनके साथ बागीचे हैं और जो मुझे हमेशा रहस्य की धुन्ध में लिपटे जान पड़ते हैं। बारकों और बंगलों के बीचोबीच सड़क है, जो क्षितिज से क्षितिज तक फैली हुई है और जिसकी दोनों ओर शीशम के पेड़ हैं। मैं मुंह में अंगुली दबाए आश्चर्यचकित देखता और सोचता रहता हूं कि यह कहां से आती और किधर जाती है। तब मैं उस छोटे गोल चक्कर में, जो पेड़ों के झुंड में रहट के गिर्द बना हुआ है, दौड़ने लगता हूं, उन्माद की सी स्थिति में खूब दौड़ता हूं, चक्कर पर चक्कर लगाता हूं और अपनी इस प्रसन्नता में कि मुझे खुले विस्तृत संसार में घूमने की स्वाधीनता प्राप्त है, मैं भूत और भविष्य को भूल जाता हूं।...

यह मेरी प्रारम्भिक स्पष्ट स्मृतियों में से एक है।

मैं झुरमुट में चक्कर लगा रहा हूं क्योंकि मां ने मुझे कह दिया है कि अगर तुम सड़क पर न जाओ तो बाहर जाकर खेल सकते हो।

यह सड़क, जिसपर ऊंटों, घोड़ों, गधों और इंसानों के कारवां हमेशा गुज़रते रहते हैं, मेरे लिए पहली रुकावट है, जिसे पार करना होगा।

माली मुझे बुलाता है, "बेटा, इधर आओ।"

मैं सुनी-अनसुनी कर देता हूं और चक्कर लगाना जारी रखता हूं। तब मैं बरगद के बड़े भारी पेड़ की बाहर उठी हुई जड़ से टकराकर अचानक गिर पड़ता हूं और रोने लगता हूं।

माली आकर मुझे उठाता है। वह अपनी घनी मूंछों में से आजीबो-गरीब आवाज़ निकालकर और मुझे हवा में उछालकर चुप कराने का प्रयत्न करता है। मैं अब भी रो रहा हूं। वह मुझे अपनी गर्दन पर बैठाकर घोड़े की तरह उछलने लगता है। मैं उसके सिर को दोनों हाथों से कसकर पकड़ लेता हूं क्योंकि वह उछलता है तो मैं भी उछलता हूं और एक आनन्दमय वातावरण उत्पन्न हो जाता है। ऊपर से तो मैं 'छोड़ दो, छोड़ दो' चिल्लाता हूं; पर मन में प्रसन्न हूं। और जब वह अपने घास खोदने के स्थान पर लाकर मुझे सचमुच अपनी नन्ही मज़बूत टांगों के बल धरती पर खड़ा कर देता है, तो मैं चाहता हूं कि वह मुझे फिर उठाए। लेकिन जब माली अपना काम शुरू कर देता है, तो मैं उसे चपटी खुरपी से घास खोदते और गुनगुनाते हुए देखने लगता हूं।

"गाना मुझे भी सुनाओ।" मैं उससे कहता हूं।

"बदमाश, भाग जाओ—मां तुम्हें बुला रही है।" वह उत्तर देता है।

"मां कहां है?" मैं पूछता हूं और अपने घर के दरवाज़े की ओर देखता हूं।

मां वहां नहीं है। मैं जानता हूं कि वह मेरे छोटे भाई पृथ्वी को अपने साथ लिटाए, दोपहर की नींद सो रही है। "मुझे गाना सुनाओ।" मैं फिर कहता हूं।

माली मुस्कराता है और झूमते हुए ऊंचे स्वर में गाने लगता है।

मैं भी झूमता हूं।

तब सड़क पर से घंटियों की आवाज़ सुनाई देती है और मैं उधर भाग जाता हूं। ऊंटों की एक कतार गुज़र रही है, उनकी नकेलें एक-दूसरे की पूंछ से बंधी हुई हैं और जब ऊंटों की कुहानें आगे बढ़ती हैं तो उनपर बैठे हुए सवार

झकोले खाते हैं। मैं यौंही अंगुली मुंह में डाले कारवां को गुज़रते देखता हूं। ऊंटों की लम्बी-लम्बी टांगों पर आश्चर्य करते हुए घंटियों की टन-टन में खो जाता हूं। मैं यह जानना चाहता हूं कि वे कहां से आते और किधर को जाते हैं। मां ने कह रखा है, 'कृष्ण ! तुम्हें सड़क पर नहीं जाना है।'

कुछ सिपाही उधर से आ रहे हैं, जिधर मुझे बताया गया है कि सदर बाजार है। वे अपनी बाईं ओर देखते हुए सलूट करते हैं।

एक छाया उभरती है—एक खाकी वर्दीवाले पीले मनुष्य की छाया, साहब का रूप धारण कर लेती है। मुझे मालूम है कि वह सड़क के उस पार हमारे घर के सामनेवाले बंगले में रहता है। वह अपनी साइकल पर ... फर्र से गुज़र जाता है।

जिसका डर था, जब वही चला गया तो उसके बागीचे में जाने में ... खतरा नहीं।

और मेरे मन में सड़क पार कर लेने की उत्कट अभिलाषा उत्पन्न होती है।

मैं मुड़कर देखता हूं कि कहीं मां तो बाहर नहीं है। मैं कुएंवाले झुरमुट में झांककर इस बात की भी तसल्ली कर लेता हूं कि माली का ध्यान तो मेरी ओर नहीं है; और मैं बिना एक क्षण रुके अपनी पहली सारी आवारगियों की हद—सड़क की अंधा-धुन्ध पार कर लेता हूं।

बस अब क्या है, मैं सीधा बागीचे में जा घुसता हूं। फलों के हरे-भरे पेड़ नज़रों में लहलहा रहे हैं; पर मैं वहां नहीं जाता बल्कि झटपट अपने सामनेवाले गुलाब के निकटतम फूल पर झपटता हूं। मेरा मन मां की आवाज़ के आतंक से भर जाता है और मैं डाल के कांटों को भूल जाता हूं। सहसा मुझे अपनी अंगुलियों में ज़ोर का दर्द महसूस होता है। पर मैं अपनी समस्त शक्ति से झटका मारता हूं। फूल डाल से टूटकर मेरे हाथ में आ जाता है और मैं पीछे के मूक बंगले और आगे की चमचमाती और सरसाती हवा को बिना देखे दौड़ता हूं। मेरा धड़ टांगों से भी आगे है।

मैं फिर सड़क के इस पार आ गया हूं। पर इस खुशी की तरंग में कि फूल मेरे हाथ में है, मेरे पांव लड़खड़ा जाते हैं और टांगें आपस में गुथ जाने से मैं गिर पड़ता हूं।

मेरे मुंह से चीख निकलती है और मैं तपती धूल पर पड़ा भय से रोने लगता

। सूरज मेरे निकट आ रहा है और मैं खूब ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा हूं ताकि कोई मेरी आवाज़ सुन ले। धूल मुंह में भर गई है, गालों से पसीना बह रहा है और ग्लानि से मेरा शरीर तप रहा है। तब मुझे किसीके पांव की चाप सुनाई देती है।

वह माली है। "अरे बदमाश!" वह झिड़कता है।

मेरे जिस हाथ में फूल है, मैं उसकी मुट्ठी खूब कसकर भींच लेता हूं, क्योंकि वह माली है और उसे यह पसंद नहीं कि कोई फूल तोड़े।

वह मुझे अपनी गोद में उठा लेता है और इधर-उधर डुलाते हुए अपने शब्दों और किसी निरर्थक लोरी के बोलों में मेरी सुबकियों को डुबो देना चाहता है।

मां मेरा रोना सुनकर दरवाज़े पर आ गई है।

"यह कहां गया था?" वह पूछती है।

"खेलते-खेलते गिर पड़ा है।" माली उत्तर देता है।

"एं, उस गन्दे नाले में? क्या यह सड़क पर चला गया था?" वह घबरा जाती है।

मैं अब भी सुबक रहा हूं।

"चुप बेटा, चुप। देखो, तुमने चींटियां मार दी हैं।" मुझे बहलाने के लिए ... बात बनाता है।

"मुझे अपनी टांगें दिखाओ।" मां कहती है और मुझे अपनी गोद में ले ... है।

उसकी गर्दन और चेहरे से दूध और चीनी की सी मीठी सुगंध आ रही है। वह 'इससे इन्हें आराम आ जाएगा' कहते हुए मेरे घुटने चूम लेती है। वह मुझे पृथ्वी के पास चारपाई पर लिटा देती है और आप भी साथ लेटकर मुझे छाती से चिपटा लेती है।

मैं अब रो नहीं रहा हूं, सिर्फ रिरिया रहा हूं। शीघ्र ही नींद, थकन की नींद, मेरी आंखें बन्द कर देती है।

दोपहर के बाद जब पिता की गोद में मेरी आंख खुलती है तो गुलाब का फूल तब भी मेरी मुट्ठी में बन्द है, और कांटों की खरोंचें सारी कहानी कह देती हैं।

ज
वं

२

"तुम कहां गए थे, कहां गए थे मेरे नन्हे बदमाश ?" पिता ने संगीत के में पूछा ।

और उन्होंने मेरे मुख पर चुम्बनों की बौछार कर दी जबकि मैंने उनकी घनी मूंछें पकड़ने का प्रयत्न किया। वे मूंछें ही पिता की स्पष्ट स्मृति थीं वास्तव में पिता का समस्त व्यक्तित्व उन्हींमें केन्द्रित था। हम कच्ची दीवार वाले जिस क्वार्टर में रहते थे, उनके आंगन में बैठकर जब वे दोपहर के या मुंह धोते थे तो मैं उनकी मूछों मे अटकी हुई पानी की बूंदें देख सकता था मेरे लिए उनकी किसी दूसरी चीज़ मे इतना आकर्षण नहीं था, जितना पर उगे हुए घने बालों में। हां, उनकी समृद्ध मधुर ध्वनि भी एक थी, जिसे उनके घर में दाखिल होने से पहले ही सुनता था। इस ध्वनि में वे इस से गुजरनेवाले सिपाहियों अथवा माली के सलाम का जवाब देते थे, कारियो से मजाक करते थे अथवा मेरे दोनों भाइयों—हरीश और गणेश डपटते थे, जो सेना मे काम करनेवाले भंगियों, धोबियों और बाजेवालों के के साथ कंचे खेलते थे। उनकी आवाज़ कान में पड़ते ही मैं दरवाज़े की लपकता। वे मुझे अपनी बांहों मे भर लेते, अपनी कठोर मूछों के नीचे से पर चुम्बनों की बौछार कर देते और हंसते-मुस्कराते हुए एक गीत अलापते, ज मेरे उपनाम 'बुल्ली' से बना था :

बुल्ली, ओह, बुल्ली,
बुल्ली, मेरा बेटा,
बुल्ली, मेरा पिल्ला,
बुल्ली, मेरा सूअर,
बुल्ली, मेरा बेटा, बेटा, बेटा !

यही वह टेक थी, जिसे वे बार-बार दोहराते थे, जिसमें वे मेरे प्रति स्नेह का रग भरते थे, और अपने उस असाधारण लगाव को व्यक्त करते थे, ज मैं समझता हू मेरी उस सामान्य चंचलता और ढिठाई से उत्पन्न होता था, ि मैं उनकी मूछों के दोनों सिरे पकड़कर ज़ोर से खीचता था।

अभी मेरी उम्र चार-पांच साल थी कि मैं पिता को एक पौराणिक

समझने लगा था जैसे वे राजा विक्रम के अवतार हों, जिसकी कहानियां मां ने मुझे सुनाई थीं; अथवा भगवान कृष्ण के मित्र अर्जुन के अवतार हों, जिसने ऊपर बांस पर घूम रही मछली की आंख को नीचे पानी में उसका प्रतिविम्ब देखकर अपने तीर का निशाना बनाया था। मेरे नन्हे मस्तिष्क में पिता के जो दैविक गुण थे, उनके अतिरिक्त उनकी कुछ भौतिक विशेषताएं भी थीं। तमाम पहाड़ी डोगरा रेजिमेंट में वही एक शिक्षित व्यक्ति थे, जिनसे सिपाही अपने खत पढ़वाते थे और जिनसे वे अपनी अर्जियां लिखवाते थे। मियां मीर, छावनी के दरिद्र भंगी, धोबी और बाजेवाले उनसे रुपया उधार मांगने आते थे; और निकटवर्ती लाहौर से, हमारी जन्मभूमि अमृतसर से अथवा पंजाब के दूसरे भागों से हमारे जो सुनार सम्बन्धी मिलने आते थे, वे उन्हें हाथ जोड़कर पालागन कहते थे।

मैंने लुक-छिपकर वे बातें सुनी हैं, जो हमारे आंगन में होती थीं, जब मां बैठी चर्खा कातती थी और पिता आरामकुर्सी में लेटे और स्टूल पर टांगें फैलाए लोगों के शिकवे-शिकायतें और अर्जियां सुना करते थे। बाद में इनसे उनके साहसी जीवन का परिचय मिला।

वे ३८वीं डोगरा पलटन में हैड क्लर्क थे। वे पलटन की हाकी-टीम के तमाम मैचों में रेफरी बनते और सीटी बजाते, जो उनके लिखने की मेज की दराज जब कभी मेरे हाथ लग जाती तो मैं उससे मां के कानों में भयंकर शोर ा। दूसरे स्त्री-पुरुषों की दृष्टि में उनका बड़ा आदर-सत्कार था, क्योंकि त ही निचले स्तर से शुरू करके वे शक्ति और प्रतिष्ठा के स्थान पर पहुंच गए थे।

छावनी की अथवा हमारी बिरादरी की जो स्त्रियां मिलने आती थीं, उनके साथ बातचीत में मां ने कुछ ऐसे संकेत दिए, जिनसे मैंने अनुमान लगाया कि वे एक मुसलमान फकीर की दुआ से संसार में आए। मेरा दादा और दादी इस फकीर के पास बच्चे मांगने गए थे और फकीर ने मेरे दादा से कहा था, 'तुम एक बाग लगवाओ और एक कुआं बनवाओ ताकि मैं वहां आकर रहने लगूं, और तुम अपनी बीवी के साथ सुबह-शाम वहां आया करना। मैं तुम्हें दो बच्चे दूंगा।' मेरे दादा, जिनका नाम चेतराम मैंने बिरादरी की स्त्रियों को संकोच-सहित लेते सुना, ने वैसा ही किया जैसाकि फकीर ने कहा था। अगले साल मेरी दादी जब एक दिन सुबह कुएं पर गई तो उसे मेरे पिता रहट की एक मिट्टी की टिंड में बैठे मिले और फिर एक साल बाद मेरे चचा फकीर की कब्र के पास,

जो अब मर चुका था, एक कुंज में मिले। पिता का नाम रामचंद और चचा का नाम प्रतापचन्द रखा गया। जहां मेरे पिता के आने से घर का भाग्य जाग उठा क्योंकि उस साल वे बड़े धनी हो गए, वहां मेरे चचा अपने साथ दुर्भाग्य लाए क्योंकि दादा की मृत्यु हो गई।

मैं जन्म और मरण का अर्थ नहीं समझता था। मैं सिर्फ भूत-प्रेतों के बारे में जानता था जैसे फकीर का भूत जो उस कुएं में रहता था, जो मेरे दादा ने अमृतसर से बाहर जंडियाला रोड पर खोदा था। फिर हरी पगड़ी, सफेद कपड़ों और सफेद दाढ़ीवाले ख्वाजा खिज्र का प्रेत, जो मियां मीर में हमारे घर के पासवाले कुएं में रहता था और उन असंख्य टौमियों के भूत, जो छावनी के भिन्न-भिन्न स्थानों पर दफनाए गए थे।

घर में जो गप्पें और अफवाहें फैली थीं, उनसे पिता के बारे में किस्सों और घटनाओं का पता चलता था; लेकिन भूतों, प्रेतों और फकीरों की उत्पत्ति उन सबपर छाई रहती थी, सिर्फ उनकी घनी लम्बी मूछें थीं, जो उन्हें मेरी कल्पना में भूतों से विशिष्ट बनाती थीं; क्योंकि उनकी सफलता की सारी कहानियां मैं उस वक्त तक अपने मस्तिष्क में नहीं संजो सका, जब तक कि लगभग सात वर्ष का न हो गया।

मैंने तीन-चार साल की उम्र में लोगों के सिरों, धड़ों अथवा टांगों से और उनकी बातचीत से जो अधूरे और अस्पष्ट चित्र अपने मस्तिष्क में बनाए थे, वे लगभग पांच वर्ष की आयु में स्पष्ट और पूर्ण होने लगे, क्योंकि यही वह अवस्था थी जब मैं दुनिया को कुछ-कुछ समझता था और उसके इतिहास और भूगोल की रूपरेखा बना सकता था।

३

उन समय जिन व्यक्तियों को मैं समझने लगा, उनमें मेरा छोटा भाई पृथ्वी, मुझसे बड़ा गणेश और सबसे बड़ा हरीश था।

पृथ्वी का जो प्रारम्भिक चित्र बना, उसमें वह एक पीला, सिकुड़ा, क्षीण प्राणी था, जो निवार के एक छोटे-से पंगूरे पर पड़ा सोता रहता था, और मां हाथ के पंखे से मक्खियां हटाती थी। जब वह सोता था, उसकी आंखें तब भी

आधी खुली रहती थीं। इस स्थिति में उसका लम्बूतरा चेहरा और गालों की उभरी हुई हड्डियां देखकर मुझे भय लगता था, और उसकी एक बूढ़े आदमी जैसी मुरझाई हुई और झुर्रियोंवाली खाल से घिन आती। मुझे यह नहीं बताया गया था कि वह तमाम दिन क्यों सोता रहता है। मुझे सिर्फ शोर मचाने से मना किया जाता था ताकि उसकी आंख न खुल जाए। जब वह मां की छातियों से दूध पी रहा होता था तो कभी-कभी आंखें खोलकर मेरी ओर यों घूरता था जैसे कह रहा हो, 'मेरी मां की छातियों से दूर रहो।' अक्सर मैं उसकी विलक्षण दृष्टि से इतना डर जाता कि उसके निकट जाने का साहस न पड़ता। लेकिन कई बार जब वह आंखें बन्द किए एक स्तन को चूस रहा होता, मैं दूसरा स्तन चूसने लगता। तब वह सहसा चौंककर मुझे नोचता और अपनी थाती से दूर हटाता। मैं भी ज़िद पकड़ लेता, धृष्टता से मां की गोद में घुसकर दूध पीने लगता; जबकि पृथ्वी मुझे अधिक भयंकरता से नोचने और मारने लगता। मैं कुछ समय के लिए हट जाता, लेकिन शीघ्र ही भूल जाता और फिर मां के स्तन की ओर लपकता।

मगर अब मां हम दोनों के दूध पीने से तंग आकर चिढ़ जाती। उसने हम दोनों से पिंड छुड़ाने के लिए अपनी छातियों पर लाल मिर्च का लेप करना शुरू ᳚र दिया। मैं अब भी बाज़ न आता। मुझे याद है कि मेरी यह आदत छुड़ाने के लिए आखिर उसे बहुत सख्त कदम उठाना पड़ा।

अगर छोटे भाई पृथ्वी की ओर मेरा व्यवहार भय, घृणा और ईर्ष्या का था तो बड़े भाई गणेश की ओर शुद्ध और स्पष्ट ईर्ष्या का था। उसका मां के निकट आना मुझे एकदम असह्य था, और मैं यह प्रयत्न करता कि पिता कभी उसे अपनी गोद में न उठाएं; इसीलिए मैं उन्हें देखते ही लपकता और सबसे पहले उनका स्वागत करता। चूंकि माता-पिता का मुझपर विशेष अनुग्रह रहता, इसलिए मैं समझता हूं कि गणेश ने इस ओर से अपना ध्यान ही हटा लिया और वह अपना मन बहलाने के लिए बाहर जाकर छोटे मुलाज़िमों के बच्चों के साथ खेला करता।

गणेश को विनीत, शांत और गम्भीर देखकर माता-पिता कहा करते कि उसने अपने-आपको उपेक्षा से बचाए रखने के लिए एक विचित्र कठोर खाल ओढ़ ली है और अपने चपटी नाकवाले सरल मंगोलियन चेहरे पर जो विचित्र

मुखौट पहन रखा था, उसमें यह बात बिल्कुल स्पष्ट थी। आगे चलकर इस मुखौट ने एक कृत्रिम विनम्रता का रूप धारण कर लिया, जो उसके विकट स्वभाव की क्रूरता को सफलतापूर्वक छिपाए रखती थी और वह ऊपर से साधु जान पड़ता था। उसके कान ऊपर से तिकोने थे और उसके बारे में यह बात प्रसिद्ध थी कि एक भीख मांगने आए साधु ने उसे मां को उपहार में दिया था। गालों के शुष्क दागों और भद्दे कानों से वह मुझे एकदम शैतान जान पड़ता था। बड़े लड़कों के साथ खेलते समय चूंकि वह प्रायः मेरी उपेक्षा करता था, इसलिए मैं भी उसकी शिकायत का कोई अवसर हाथ से नहीं जाने देता था ताकि पिता उसे डांटें, डपटें और मेरा बदला लें।

वह अपने चेहरे पर विनम्रता, दीनता और भद्रता का जो कृत्रिम भाव बनाए रखता था, उससे मुझे विशेष चिढ़ थी, क्योंकि इसी कारण लोग उसे भलामानस समझते और मुझे दुल्ली या बदमाश कहते थे। सिर्फ एक ओवेन साहब थे, जिन्होंने उसे सही समझा था, क्योंकि मेरी 'दुल्ली' उपाधि के मुकाबले में वे उसे 'बर्बर' पुकारते थे और छोटे नन्हे भाई पृथ्वी को 'बिट्टी' कहते थे। मुझे इस बात से भी चिढ़ थी कि बिरादरी का जो भी आदमी आता वह गणेश के लिए सगाई का संदेश लाता, साथ ही मिठाई और मेवे होते, जिन्हें वह अकेला ही खा सकता था। हम मुंह देखते रह जाते और 'ओह कुछ' मांगते, जिसका अभिप्राय उस मिठाई से था जो मां लकड़ी के बड़े संदूक में रखती थी और दोपहर बाद खाने को देती थी। इसके अलावा वह घर की बिल्ली का आप ही मालिक बन बैठा था और मैं उसे छूने तक को तरस जाता था। अब चूंकि उसे देवता समझा जाता था, इसलिए वह अपने द्वेष को बनावटी देवत्व में सफलतापूर्वक छिपा सकता था, इससे उसके प्रति मेरी अवज्ञा और भी तीव्र हो जाती थी।

अपने बड़े भाई हरीश के प्रति मेरे मन में श्रद्धाभाव था। शायद इसलिए कि वह लम्बा और दुबला था और दोपहर के बाद जब वह अपनी साइकल पर लाहौर से आता तो मेरे लिए फलों और खिलौनों के उपहार साथ लाता और वह मुझे अपनी साइकल पर आगे बैठाकर स्कूल के हाकी-मैच में साथ ले जाने का वादा भी हमेशा किए रखता। मुझे उस समय उसके हाथ की सफाई पर भी स्पर्धा होती जब वह कुश्ती और कंचों के खेल में छोटे मुलाजिमों के लड़कों को हरा देता। मैं गेंद-बल्ले में उसकी दक्षता का प्रशंसक था और उन खेलों का प्रशंसक था

जो वह अपनी साइकल पर उसे आध घंटा बिलकुल खड़ी रखकर दिखाता था। जब उसे पलटन की हाकी-टीम में खेलने को कहा जाता, तो वह सुंदर धारीदार कमीज़ और नीले जांघिये में क्या ही भला लगता! फिर जब वह मुझे फौजी बाज़ार में हलवाई की दुकान पर दूध-जलेबी खिलाता तो मैं सर्वथा उसका हो जाता। मुझे याद है कि उस समय मैं कितना रोया था जब एक बार पिता ने उसे पढ़ने और स्कूल का काम करने के बजाय भंगी-लड़कों के साथ आवारा घूमने और खेलने के लिए क्रिकेट की विकिट से पीटा था।

हरीश मेरी मौसी अक्की के पास शहर में रहता था, क्योंकि वहां से स्कूल नज़दीक पड़ता था; इसलिए वह घर कभी-कभी आता था और मैं उससे घनिष्ठ मित्रता स्थापित नहीं कर पाया। हमारी अवस्थाओं में जो अंतर था, उसके कारण भी हम अलग-अलग रहे और उसके प्रति मेरी श्रद्धा बनी रही। निश्चय ही जीवन के आरम्भिक वर्षों में पिता के बाद हरीश मेरा नायक था।

४

मौसी अक्की मेरी मां की सबसे छोटी बहन थी। पर वे दोनों एक-दूसरे से इतनी भिन्न थीं कि बहनें जान नहीं पड़ती थीं। मां का रंग सांवला, चेहरा अण्डाकार, आंखें गहरी भूरी, चमकदार और ठुड्डी भारी थी जबकि मौसी अक्की का चेहरा पीला, गोल, आंखें चुंधी और होंठ चपटे थे। वे न सिर्फ शक्ल-सूरत से भिन्न थीं, बल्कि मैंने देखा, क्योंकि लोगों को पहचानने की वह मेरी पहली सूझ थी, कि वे सूंघने में भी भिन्न थीं। मेरी मां, जैसाकि मैं पहले कह चुका हूं, दूध और चीनी थी; लेकिन मौसी अक्की दही की सुगंध के सदृश थी।

मौसी अक्की के प्रति मेरी पहली प्रतिक्रिया यह थी कि मैं लजाकर भाग गया था। मुझे याद है कि मैं आश्चर्यचकित अंगूठा मुंह में डाले दूर खड़ा था और कनखियों से उसकी ओर देख लेता था जबकि वह बरामदे में बैठी मां से अपनी विपदा की कहानी सुना रही थी। शब्द जो हवा के नर्म झोंकों के सदृश उसके मुंह से निकल रहे थे, उनसे मुझे पता चला कि उसके पति, मेरे मौसा जयसिंह ने फिर शराब पी, उसे पीटा और घर से निकाल दिया। अब वह शहर से यहां तक सारा रास्ता पैदल चलकर हमारे घर आई थी; और क्या मां उसे

मेरे पिता से कुछ रुपया दिला देगी ताकि वह शहर लौटकर अपने लिए अलग घर बसा सके ?

जब वह अपनी करुण कहानी सुना रही थी, तो उसका स्वर मुझे उस शीतल और उदास समीर-सा लगता था, जो दोपहर के बाद सड़क पर शीशम के पेड़ों में सरसराती थी और जो आहों और सुबकियों की भांति छावनी से परेवाले मैदान से भोंकों में आती थी और आंखों को नींद से बोझिल कर देती थी। लेकिन तब उसका समतल स्वर धूप से परेशान पक्षी की आवाज की भांति तेज चीख में बदल जाता था और बातचीत के दौरान कभी-कभी उसकी आखों में आंसू चमक उठते थे।

थोड़ी देर में मां के हाथ से रुई की वह पूनी गिर पड़ती जो वह कात रही होती और लगता कि वह भी सुबक रही है।

इस समय मुझे अपनी आखें फड़क रही महसूस होतीं, और मौन के उन क्षणों में, जब मां साड़ी के पल्लू से अपनी आखें पोंछ रही होती, मैं उसके नजदीक सरक जाता क्योंकि मुझे एकाकीपन बहुत खलता था।

"मेरा नन्हा बुल्ली कहां जा रहा है ?" मौसी अक्की कहती और मां के पास जाने से पहले ही मुझे पकड़कर अपनी बाहों में दबोच लेती।

वह मुझे अपनी गोद में भरकर पुचकारती, दुलारती और साथ ही गाती :

> ओह, बुल्ली, मेरा बेटा,
> बुल्ली, मेरा पिल्ला,
> बुल्ली, मेरा ´ सूअर,
> बुल्ली, मेरा बेटा, बेटा, बेटा !

और मेरे नयनों में एक विभिन्न प्रकार की सुगंध भर जाती, दही की सुगंध, जिसमें वह मोटी चीनी मिली हुई होती जो मां मुझे दोपहर के बाद बासी रोटी के साथ खाने को देती थी। जब मौसी अक्की मुझे चूमने को झुकती तो मुझे उसकी बगलों के पसीने की दुर्गंध आती और मैं उसकी बाहों से निकल भागने का प्रयत्न करता। दूसरे ही क्षण मैं एक समृद्ध, मधुर युवा शरीर की भावना से ओतप्रोत हो जाता, जिसमें मीठे क्रीम-केकों की सुगंध होती, जो कृतज्ञ सिपाही और दुकानदार उपहारस्वरूप हमें दे जाते थे।

जो वह अपनी साइकल पर उसे आध घंटा बिलकुल खड़ी रखकर दिखाता था। जब उसे पलटन की हाकी-टीम में खेलने को कहा जाता, तो वह सुंदर धारी-दार कमीज़ और नीले जांघिये में क्या ही भला लगता! फिर जब वह मुझे फौजी बाज़ार में हलवाई की दुकान पर दूध-जलेबी खिलाता तो मैं सर्वथा उसका हो जाता। मुझे याद है कि उस समय मैं कितना रोया था जब एक बार पिता ने उसे पढ़ने और स्कूल का काम करने के बजाय भंगी-लड़कों के साथ आवारा घूमने और खेलने के लिए क्रिकेट की विकिट से पीटा था।

हरीश मेरी मौसी अक्की के पास शहर में रहता था, क्योंकि वहां से स्कूल नज़दीक पड़ता था; इसलिए वह घर कभी-कभी आता था और मैं उससे घनिष्ठ मित्रता स्थापित नहीं कर पाया। हमारी अवस्थाओं में जो अंतर था, उसके कारण भी हम अलग-अलग रहे और उसके प्रति मेरी श्रद्धा बनी रही। निश्चय ही जीवन के आरम्भिक वर्षों में पिता के बाद हरीश मेरा नायक था।

४

मौसी अक्की मेरी मां की सबसे छोटी बहन थी। पर वे दोनों एक-दूसरे से इतनी भिन्न थीं कि बहनें जान नहीं पड़ती थीं। मां का रंग सांवला, चहरा अण्डाकार, आंखें गहरी भूरी, चमकदार और ठुड्डी भारी थी जबकि मौसी अक्की का चेहरा पीला, गोल, आंखें चुंधी और होंठ चपटे थे। वे न सिर्फ शक्ल-सूरत से भिन्न थीं, बल्कि मैंने देखा, क्योंकि लोगों को पहचानने की वह मेरी पहली सूझ थी, कि वे सूंघने में भी भिन्न थीं। मेरी मां, जैसाकि मैं पहले कह चुका हूं, दूध और चीनी थी; लेकिन मौसी अक्की दही की सुगंध के सदृश थी।

मौसी अक्की के प्रति मेरी पहली प्रतिक्रिया यह थी कि मैं लजाकर भाग गया था। मुझे याद है कि मैं आश्चर्यचकित अंगूठा मुंह में डाले दूर खड़ा था और कनखियों से उसकी ओर देख लेता था जबकि वह बरामदे में बैठी मां से अपनी विपदा की कहानी सुना रही थी। शब्द जो हवा के नर्म झोंकों के सदृश उसके मुंह से निकल रहे थे, उनसे मुझे पता चला कि उसके पति, मेरे मौसा जयसिंह ने फिर शराब पी, उसे पीटा और घर से निकाल दिया। अब वह शहर से यहां तक सारा रास्ता पैदल चलकर हमारे घर आई थी; और क्या मां उसे

पतंग खरीदकर दी और मुझे अपने साथ मकान की छत पर ले गया, जहां उसने पतंग को ऊपर आकाश में चढ़ाकर मेरे हाथ में थमा दिया।

जब कभी इन तीनों विचित्र व्यक्तियों में से किसी एक से भेंट होती थी, मुझे लगता जैसे मैं आकाश में उड़ रहा हूं।

५

एक दूसरा व्यक्ति, जिसे मैं बचपन ही से जानने और प्रेम करने लगा, गुरदेवी थी। वह बाबू चत्तरसिंह, जो मेरे पिता की पलटन में क्वार्टर मास्टर क्लर्क था, की पत्नी थी। वह शांत, गम्भीर और उदास मुखवाली छोटे कद की स्त्री थी, जिसका स्वर फाख्ता की कू-कू की भांति मधुर था। वह सीने-पिरोने अथवा फुलकारी काढ़ने का काम लेकर हर दूसरे दिन हमारे घर आती और मां के पास बैठ जाती, जो पृथ्वी को गोद में लिटाए चर्खा कातती। वे दोनों खुसर-फुसर धीरे-धीरे बातें करतीं। शुरू-शुरू में तो मेरी समझ में कुछ नहीं आया, पर बाद में पता चला कि बातें गुरदेवी के बच्चा न जन सकने के बारे में होती थीं। मुझे याद है कि मैं किस तरह दोपहर के बाद जागते रहने का प्रयत्न किया करता था ताकि वे बातें सुन सकूं और यह समझ सकूं कि आखिर गुरदेवी को रोग क्या है और उसकी उदासी का कारण क्या है। लेकिन मां और गुरदेवी के कोमल और मृदु स्वर, चर्खे की घू-घू और बरामदे में मंडरा रहे कालेबरों के कारण वातावरण इतना निद्राजनक होता कि मेरा सिर घूमने लगता और अंग-अंग में भारीपन भर जाता, जो मुझे सुलाने का प्रयत्न करता। पर जब मैं सो न पाता तो गुरदेवी मुझे गोद में लिटाकर हिलाती-डुलाती और लोरी गाकर सुलाने लगती।

मैं उसकी गर्दन से बह रहे पसीने में तरबतर हो जाता लेकिन उसकी जघाओं पर लेटने का सुख भी अनुभव करता। मैं गुरदेवी के घर लौटने तक बड़े आराम से सोया रहता। जिस तरह वह मुझे सुलाने के लिए लोरी गाती थी, उसी तरह मेरे जागने पर भी एक लोरी गाती। पहले से बड़ा और बलवान मैं एक ऐसी दुनिया में आंख खोलता, जिसमें सूरज छिप रहा होता और आकाश पर संध्या की लालिमा छाई होती। मैं अपने उस बचपन में भी गुरदेवी के आलिंगन का इंद्रियजनित सुख अनुभव करता। ओह, उन क्षणों की मादकता जब आदमी

दोपहर की नींद के वाद जागे और अंगड़ाई लेते हुए गर्मी की संध्या की शीतलता का अनुभव करे !

कई वार गुरदेवी मुझे अपने साथ घर ले जाती ताकि सिपाहियों से, जो उसे देखकर सीटी वजाते और आवाज़ें कसते थे, उसकी रक्षा हो सके। मेरी इस वीरता के वदले वह उतने ही वड़े संदूक से, जितना हमारे घर में था और जिसमें से मां हमें 'ओह कुछ' देती थी, वह भी मुझे 'कुछ' देती। जव मैं वैठा मिठाई अथवा सूखी अंजीरें या खजूरें खा रहा होता, तव वावू चत्तरसिंह दफ्तर से घर आता। वह मुझे उठाकर हवा में उछालता और मेरे उपनाम की लोरी गाता :

वुल्ली, वुल्ली
वुल्ली, मेरा वेटा...

सिख होने के नाते चत्तरसिंह के मुख पर वड़ी-वड़ी काली दाढ़ी थी। वह मुझे इतनी प्यारी लगती कि मैं दोनों हाथों से पकड़कर खींचता और तव छोड़ता जव वह मुझे अपनी पीठ पर सवारी करने देने का वादा करता। यों हम दोनों उस समय तक खेलते और वड़े प्रसन्न होते जव तक कि मुझे पिता की आवाज़ सुनाई न देती और मैं उनके स्वागत को न दौड़ जाता।

प्रसन्नचित्त और अह्लाद में भरा मैं पिता के कंधों पर सवार हो जाता और गभग आकाश को छूने लगता।

मैं उन्हें जल्दी-जल्दी एक ही सांस में दोपहर के वाद की घटनाएं सुनाता और यह वताता कि गुरदेवी की मिठाई कितनी अच्छी थी और वावू चत्तरसिंह की पीठ पर सवारी में कितना मजा आया। सुनाते-सुनाते मैं आनन्द-विभोर हो जाता। पिता की नसीहत इस आनन्द को फीका कर देती, क्योंकि वे मुझसे कहते कि मैं गुरदेवी और वावू चत्तरसिंह को उनके नामों से न पुकारूं, वल्कि उन्हें अपनी 'छोटी मां' और 'छोटा पिता' समझूं।

मुझे याद है कि पिता की इस नसीहत के वारे में मैं अपने भीतर एक अस्पष्ट-सी उत्सुकता अनुभव करता और वाद में मैंने अंदाज़ा लगाया कि इसका सम्वन्ध उस रहस्यमय वातचीत से है, जो गुरदेवी की वच्चा जनने की असमर्थता के वारे में उसमें और मां में हुआ करती थी, और मेरा मन इस गर्व से भर गया कि वे मुझे ही अपना दत्तक पुत्र वनाएंगे। तव मुझे इन वुज़ुर्गों के प्रति अपने व्यवहार में सुधार की ज़रूरत महसूस हुई और तुरन्त आवश्यक परिवर्तन करके उन्हें

अपनी उस नन्ही दुनिया में, जिसे मैंने समझना शुरू ही किया था, उचित स्थान दिया।

६

उस सड़क, जिसपर कारवां और इंसान बराबर गुजरते रहते थे, की तपती सुबहों और खामोश दोपहरों के स्निग्ध एकांत में जो समृद्ध और प्रसन्न जीवन बीत रहा था, उसपर एक दिन एक अदृश्य और भयप्रद वस्तु की, जिसे 'मृत्यु' कहते हैं, परछाईं पड़ी। मैं इस परछाईं का नाम नहीं जानता था। मैं इसे देख नहीं सकता था। मैंने सिर्फ उन लोगों से जो हमारे दरवाजे पर इकट्ठे हो गए थे, यह नाम धीमे स्वरों में फुसफुसाते हुए सुना। तब मैं और मेरा भाई गणेश बाबू चत्तरसिंह के बरामदे से लौटे थे, जहां हम तमाम सुबह एक चारपाई पर लेटे रहे जबकि 'छोटी मां' गुरदेवी पंखा झलती रही।

दोपहर बाद का सूरज कच्चे घर की दीवारों के पीछे चला गया और बिलकुल सन्नाटा था। जब हम आए तो माता-पिता दोनों कहीं दिखाई नहीं देते थे। गणेश मेरी अंगुली पकड़कर मुझे आंगन के पार ले गया। जब हमने बरामदे में वह पलंग खाली देखा, जिसपर पृथ्वी सोया करता था और दोनों रिहायशी कमरों के दरवाजे बन्द पाए, तो मुझे किसी विनाश की आशंका हुई और मैंने रोना शुरू कर दिया।

गणेश मुझसे अधिक साहसी था। उसने मुझे चर्खे के पास मां की पीढ़ी पर बैठाया और हथी घुमाकर मुझे बहलाने लगा।

"मैं मां के पास जाऊंगा।" मैंने रोते हुए कहा।

गणेश ने कुछ ऊन ली और उसकी मूछें लगाकर पिता के रूप में मुझे बहलाने का प्रयत्न किया।

इसने उलटा मुझे डरा दिया और मैं चिल्लाया।

सौभाग्य से उसी समय पिता आ गए उनके पास दूध का पतीला था।

हालांकि उनकी मुखमुद्रा गम्भीर थी लेकिन फिर भी मैं उन्हें देखकर खुश हुआ। गणेश के पास बैठे हुए मुझे एक अनूठी सुरक्षा अनुभव हो रही थी। पिता रसोईघर में गए, पोने पर रखे हुए गर्म दूध के दो प्याले लाए और हमें दे दिए।

तब वे खुद पीतल की एक बाटी लाए और दूध पीने लगे। उनकी मूंछों के दोनों सिरे बाटी में डूबे हुए थे। घूंट भरते हुए उन्होंने हमें सीख दी कि हम दूध सुड़कने के बजाय घूंट-घूंट पिएं। अब मुझे विश्वास आया। 'ये मेरे पिता हैं,' मैंने अपने-आपसे कहा, 'और मेरे पास बैठे हैं।' लेकिन मुझे चर्खे की घूं-घूं का अभाव खटका, इसलिए मैंने पूछा, "मां कहां है?"

"वह अभी आएगी, बेटा।" उन्होंने उत्तर दिया, "तुम दोनों दूध पीकर छोटी मां गुरदेवी के घर जाकर खेलो। वह तुम्हें 'कुछ' खाने को देंगी। चलो, मैं छोड़ आऊं।"

तब वे उठ खड़े हुए। पीतल की बाटी एक ओर रख दी। उन्होंने मुझे गोद में उठा लिया और गणेश को साथ चलने के लिए कहा।

मुश्किल से चंद कदम चले होंगे कि हमने मां को देखा। उसकी गीली साड़ी शरीर से चिपकी हुई थी। मौसी अक्की के कपड़े भी गीले थे। वे गलियारे से घर में दाखिल हो रही थीं। उनकी आंखें लाल थीं और वे बहुत थकी हुई जान पड़ती थीं।

"तुम उन्हें गुरदेवी के घर से क्यों लाए?" मां ने पिता की भर्त्सना की।

"कोई बात नहीं!" मौसी अक्की ने उसकी थकी हुई देह को सहारा देते कहा।

"उन्हें मेरे पास मत आने दो," मां चिल्लाई, "क्योंकि मुझे मृत पृथ्वी की सूत ी हुई है।"

"आओ, सुन्दरई आओ, बैठकर आराम करो और उस बच्चे के बारे में सोचो जो तुम्हारे पेट में है।"

"मां को क्या हुआ है?" मैंने तीखे स्वर में पूछा जबकि गणेश जाकर उसकी टांगों से लिपट गया।

"तुम्हारी मां की तबीयत ठीक नहीं।" पिता ने कहा।

"मुझे उसके पास जाने दो, जाने दो।" मैंने कहा।

मैं उनकी बांहों से कूदकर मां से चिपट जाना चाहता था।

वह अपने-आप बरामदे में आ गई और मुझे अपनी गोद में ले लिया।

"ओह, पृथ्वी की मौत से घर कितना सूना लगता है!" वह चिल्लाई और मुझे अपने ऊपर लिटाकर माथा पीटने लगी।

अब अक्की ने अपनी छाती नंगी की और दोहत्थड मारकर चिल्लाई, "हाय, हाय वीरा !"

"यहां सियापा मत करो।" पिता ने उसे समझाया, "यह अमृतसर नहीं छावनी है और साहबों के बंगले करीब हैं।"

"अच्छा जीजा," अक्की ने कहा और आंखें पोंछ लीं, "यही ढारस है कि पृथ्वी तो चाहे चला गया पर उसके बाद शीघ्र ही दूसरा बच्चा होगा।"

मेरे पिता आरामकुर्सी में स्थिर बैठे अपनी मूंछों को बट दे रहे थे। उनमें और मेरी मां के गर्म शरीर में, जिसे मैं स्पर्श कर सकता था, कोई सम्बन्ध नहीं जान पड़ता था।

आओ गणेश, तुम्हें सदर बाजार में घुमा लाऊं।" पिता ने कहा।

"गणेश तैयार हो गया। आंगन के छते हुए भाग में चिड़ियों ने चूं-चूं का शोर मचा रखा था।

मां ने जब अपने आंसू रोके तो उसकी पलकें कांप रही थीं।

"भगवान उसकी आत्मा को शान्ति दे !" पिता ने चलते हुए कहा।

"आनेवाला बच्चा ही एकमात्र ढारस है।" मौसी ने सहानुभूति जताई, 'शायद यह लड़की हो।"

मुझे हवा गूंजती हुई महसूस हुई। मुझे पृथ्वी का शरीर अपने से अलग दीख पड़ा। वह सुप्त अवस्था में मेरे मस्तिष्क की आंखों के सामने घूम रहा था। मेरे लिए मृत्यु का अर्थ निद्रा था। जब मैंने महसूस किया कि मां की गोद में, जहां मैं लेटा हुआ हूं, वह अक्सर सोया रहता था और अब नहीं है, तो मुझे लगा कि मां मेरी अपनी मां नहीं है। मैं डर गया। मैंने अपनी आंखें बंद कर लीं, क्योंकि मुझे ऐसा लग रहा था कि पृथ्वी जिस दूर देश में गया है, उससे मेरी ओर आ रहा है, क्षण-क्षण आगे बढ़ रहा है, चूंकि मुझे विश्वास था कि वह आएगा। अंधेरा छा गया और फिर नींद ने सब कुछ लील लिया।

७

पृथ्वी की मृत्यु का समाचार सुनकर बहुत-से लोग हमारे घर आए। उनमें से दो का व्यक्तित्व तुरन्त मेरे मन पर अंकित हो गया। उनमें [illegible]

और दूसरी चाची देवकी थी।

वह एक शानदार जोड़ी थी। चाचा प्रताप उतने ही सुंदर थे जितनी कि चाची देवकी। उनके व्यक्तित्व ने मुझपर ऐसा जादू डाला कि वे सारी बुरी बातें भूल गईं जो उनके बारे में मैंने अपने घर में प्रचलित कथा-कहानियों द्वारा सुन रखी थीं। उन्होंने मुझे लेकर बड़ा हो-हल्ला मचाया। वे मेरे उपनाम का निरर्थक गीत बार-बार गाते, मुझे उछालते-चूमते, छाती से लगाते और वापसी पर अपने साथ अमृतसर ले जाने की बात कहते थे। दोपहर के खाने के साथ गोश्त पका और चाची देवकी ने उसमें से एक बोटी मुझे दी। तब तो मैं पूर्ण रूप से उन्हीं-का हो गया क्योंकि मां अपने हाथ से रसोई में कभी गोश्त नहीं बनाती थी। अब मैं उस समय की प्रतीक्षा करने लगा जब वे मुझे अपने अमृतसर के घर में रहने के लिए साथ ले जाएंगे—यह घर प्रकाश की जगमगाहट से परे स्वर्ण नगर के स्वर्ण मंदिर की भांति विशाल जान पड़ता था।

दोपहर बाद जब चाचा प्रताप सरसराते शीशम के पेड़ों की छाया में सड़क के किनारे सोया करता, मैं बार-बार यह पूछकर कि तुम कब जाओगी चाची, देवकी के नाक में दम किए रहता। मेरे मारे उसे खुद बात करने का भी अवसर न मिलता, इसलिए वह कह देती कि जाओ तुम तैयारी करो, हम शाम को चलेंगे अब मां की शामत आ जाती, क्योंकि मैं उससे अपने नये कपड़े मांगता ताकि जाने के लिए उनकी गठरी बांध लूं।

वह मुझे यह कहकर टालने का प्रयत्न करती कि जब तुम जाओगे तो मैं सारी चीजें दे दूंगी। जब मैं न मानता तो वह मुझे भीतर के कमरे में ले जाती और मुझे पृथ्वी के पंगूरे पर सुलाने का प्रयत्न करती। मैं न सिर्फ वहां लेटने से डर जाता बल्कि मुझे दिन में सोने की आदत ही नहीं थी और इसीलिए मां अक्सर कहा करती थी, 'इसकी आंखों में नींद ही नहीं!' फिर उस दिन तो सोने का सवाल ही पैदा नहीं होता था। मां जहां एक ओर देवकी को सुनाने के लिए लोरियां और थपकियां दे रही थी, वहां धीमे स्वर में उनकी निंदा करते हुए कहती थी कि वे तो हर रोज़ मांस खाएंगे, शराब पीएंगे और जाने किस-किसको अपने घर बुलाएंगे। उनके साथ गया तो मुझे दो दिन में नानी याद आ जाएगी। इससे चाची और चाचा के साथ जाने का मेरा निश्चय और भी दृढ़ हो जाता, क्योंकि मैं देवकी के पकाए हुए मांस की बोटी का स्वाद चख चुका था। तब मां मुझे पीटती

और गुदगुदाते हुए उस कोने में छोड़कर धमकी देती कि अगर रोओगे तो तुम्हारे पिता से शिकायत करूँगी। वे तुम्हें इतना पीटेंगे कि सारी जिद और बदमाशी निकाल देंगे।

मां ने मुझे जिंदगी में पहली बार पीटा था और मैं बहुत ही डर गया। मैंने अपनी सुबकियों को बहुतेरा दबाया क्योंकि मुझे पिता के हाथों उस निविट में पिटने का डर था जिससे उन्होंने एक दिन मेरे बड़े भाई को पीटा था, क्योंकि उसने सारा दिन मरदानियों के बच्चों से खेलकर समय नष्ट किया था; लेकिन मैं अपना रोना नहीं रोक सका।

चाची देवकी ने आकर मुझे अपनी गोद में उठा लिया और 'कुल्ली'' कुल्ली ''' गाते हुए इधर-उधर हिलाने-झुलाने लगी। तब चाचा प्रताप ने आकर दूध की लस्सी बनाई और गिलास भर मुझे भी पीने को दी। इससे मैं कुछ शांत हुआ। मैंने उखड़े स्वर में चाचा-चाची को वे सारी बातें बता दीं जो उनके साथ अमृतसर जाने से मना करते हुए मां ने मुझसे कही थीं। चाची तो ये बातें सुनकर हंसी, लेकिन लगता था कि चाचा प्रताप को अखरीं। चाहे मां ने बात बनाई और स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया, पर चाचा प्रताप ने दृढ़ मौन भाव धारण कर लिया, जो उसके चरित्र की विशेषता थी, जबकि चाची देवकी गाड़ी के छूटने के समय की बातें करने लगी।

सौभाग्यवश उसी समय पिता दफ्तर से लौट आए और उन्होंने उसी ऊपरी आनंद और प्रसन्नता का प्रदर्शन किया जो वे मेहमानों के आने पर सदा करते थे।

चाची देवकी ने मुझे अपराध से मुक्त करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली क्योंकि शायद मैं उसके लिए पिट सकता था। उसने घूंघट में से मेरे पिता को सुनाने के लिए मरवर कहा कि वह मुझे अपने साथ अमृतसर ले जाना चाहती थी, लेकिन मां ने 'नहीं' कह दिया है और इस बात का उन्हें बड़ा दुःख है।

पिता, जो मुझे प्यार करते थे और जिनके लाड़ ने मुझे बिगाड़ दिया था, चाची की बात सुनकर हंसे और मुझे अपनी बाहों में उठाकर बोले

"क्यों भो बदमाश, तुम चाचा-चाची के साथ जाना चाहते हो ?"

मैं मां की मार से इतना सहम गया था कि कुछ भी [illegible] का साहस न [illegible] लेकिन मेरे भाई गणेश ने साहस का परिचय [illegible] [illegible] नाम से कि अगर आप लोग आज्ञा दें तो मैं चाचा-चाची [illegible] जाने

तैयार हूं।

"यह तुम्हारा है। इसे जहां भी चाहो ले जाओ।" पिता ने गणेश को चाचा प्रताप की ओर धकेलते हुए कहा।

"इसकी वह उम्र भी हो गई है जब इसे अपना धंधा सीखना चाहिए।" चाचा प्रताप ने कहा।

मैं बाकी दिन की उस मधुर स्मृति में डूबे रहना चाहता हूं जब चाची ने मुझे अपनी गोद में भरकर थपथपाया और घूंघट में से अपना गोरा-चिट्टा अंडाकार मुख झुकाकर कहा कि वह गणेश की बजाय दरअसल मुझे अपने साथ ले जाना चाहती थी। पर अब पिता का आदेश मानना होगा, जिसे उसके पति ने भी स्वीकार कर लिया है। मैं उसके सौंदर्य के प्रकाश में नहा उठा और उसे हृदय से प्रेम करने लगा। मुझे लगा कि मां की दूध-चीनी की, मौसी अक्की की दही की और छोटी मां गुरदेवी की सूखी सौंधी घास की सुगंध, चाची देवकी की मोतिया और मौलसिरी की मिश्रित सुगंध की तुलना में कुछ भी नहीं है। जबकि बड़े पृथ्वी के सम्बन्ध में शोकपूर्ण बातें कर रहे थे मैंने चाची देवकी से गुप्त संधि की कि वह एक दिन मुझे अमृतसर अवश्य ले जाएगी। जब उसने मुझसे वादा किया तो उसका स्वर शीशम की टहनियों में समीर से उत्पन्न होनेवाली सरसराहट की तरह मधुर था; अपने साथ सटाकर जब उसने मुझे पुचकारा तो उसकी छातियां आमों की तरह कठोर थीं; उसके चुम्बनों में मेंह की शीतल बूंदों का आह्लाद। और जिस अंदाज से वह मेरे ऊपर झुकी हुई थी, उस दृश्य को मैं कभी नहीं भूल सकता।

८

चाहे मुझे अपने भाई गणेश से कुछ भी प्यार नहीं था, फिर भी उसके चाचा प्रताप और चाची देवकी के साथ चले जाने से मुझे अपनी दुनिया सूनी-सूनी लग रही थी। कारण, पृथ्वी की मृत्यु के बाद मेरा कोई खेल का साथी नहीं रह गया था। गणेश कम से कम सुबह के उन घंटों में तो मेरे साथ खेल लेता था, जब छोटे मुलाज़िमों के लड़के अपने माता-पिता का हाथ बटाने में व्यस्त रहते थे।

मुझे याद है कि मुझपर एक विचित्र उदासी छाई रहती—एक ऐसी उदासी

जो कभी खत्म न होनेवाले समय के शून्य और हमारे घर के बाहर रहटवाले कुएं के झुरमुट से परे फैले हुए खेल के मैदान की विशाल रिक्तता जैसी भयंकर थी। उन दिनों के अनुभव से मैं कह सकता हूं कि बचपन इतना मधुर और सुखद नहीं है जितना कि बड़ी उम्र की विपत्तियों को भुलाने के लिए भावुकतावादियों ने उसे बना दिया है। अगर उनके लिए कोई नर्सरी किंडर-गार्टन या झूला न हो और साथ खेलनेवाले बच्चे न हो, तो इसमें भी वह दीर्घ एकाकीपन होता है जब बच्चे वहीं की दुनिया से निर्वासित अपनी ही सूक्ष्म भावनाओं में बंदी रहते हैं और मन बहलाने के उपाय सोचते हैं। यह सच है कि इन परिस्थितियों में एक अकेले बच्चे में स्वस्थ चिंतन का विकास होता है और वह अपनी प्रसन्नता के लिए कल्पना का सहारा लेता है। यद्यपि अन्त में इससे लाभ होता है, पर इस *प्रारम्भिक प्रयास का बोझ उसके लिए असह्य है, जब उसकी कोमल आत्मा को* पुष्प-कुंज के स्वप्निल अस्तित्व से बार-बार वास्तविकता की उस दुनिया मे जाना पडता है जहा माता-पिता के भोजन और दोपहर की नींद के अतिरिक्त कुछ नहीं।

एकान्त के दुख के अतिरिक्त मुझे इस जमाने से एक लाभ भी हुआ और वह यह कि मेरे स्वभाव मे एक विचित्र शक्ति आ गई। मैंने अपनी ही दुनिया में रहना सीख लिया। इस दुनिया मे झुरमुट के घने पेडों की छाया थी जहां मैं घूमा करता था; साहबों के बगीचों की घास और फूल थे, जहा मैं कभी-कभी चला जाता था और सडक का क्षण-क्षण बदलनेवाला जीवन था—सडक, जिसे मैं हवा से सरसराते शीशम के पेडो की एक कतार की आड से पार करके दूसरी तक जाता था; सड़क, जिसकी धूल में मैं लोटा करता था; सड़क, जहां मैं पशुओं, पक्षियों और इंसानों से बातें करता था; सडक, जो अपने अज्ञात भूत और अबूझ भविष्य के साथ मेरे समस्त जीवन पर छाई हुई थी। चाहे उस रहस्यमय निस्तब्धता से, जिसमें मुझे बताया गया था कि उन लोगों की, जो स्वर्ग में नही जा सके, प्रेतात्माएं मडराया करती हैं, मुझे कुछ भय लगता था, फिर भी अपने गिर्द फैले हुए मौन का मैं एक अग बन जाता था। मैं तोते की भांति वे शब्द दोहराता जो मैंने सीख लिए थे, चूहे की तरह उन नालियों पर घूमता, जिनमें रहट का पानी बहता था और गीली धरती खोदकर केंचुए पकड़ता। बेरीढ़ के ये लचकदार जीव मुझे बहुत ही अजीब लगते, जो माली रामदीन की खुरपी की चोट से

टुकड़े-टुकड़े हो जाने पर भी चलते रहते और मुझे याद आता कि माली ने उन्हें अपनी वंसी के सिर पर लगाकर कितनी मछलियां पकड़ी हैं।

इन क्षणों में मैंने आंगन में बिछी चारपाई पर लेटे-लेटे नीले आकाश के वादलों की परिधि में देवताओं, भूतों और जिन्नों के अस्पष्ट रूप देखना सीखा। उस समय ऊपर से धरती पर जो ठंड उतर रही होती वह मुझे अत्यन्त कोमल जान पड़ती और लगभग ठोस रूप धारण कर लेती, जैसे कोई अप्सरा मेरी मां की प्रार्थना सुनकर चली आ रही हो। मां एक दैवी आकृति की तरह मंडल के पास चौकड़ी मारे वैठी माला जपा करती। वह मेरे निकट होते हुए भी दूर...वहुत दूर और भयप्रद जान पड़ती।

इस एकान्त में कोई प्रसन्नता नहीं थी, पर कोई साथी न होने के कारण मैं विवश था। आखिर इस अभाव के कारण मुझे चुप रहने की आदत पड़ गई। यह आदत मेरे चंचल स्वभाव के सर्वथा विपरीत थी। मैं तो वड़ा ही नटखट था और हमेशा ऊधम मचाता था। उन दिनों मुझे पुरुषों के चेहरे गम्भीर और स्त्रियों के स्वर उदास जान पड़ते। उन दिनों आकाश और धरती फैले हुए लगते, मेरी पलकों पर भारी-भरकम परछाइयां छा जातीं और आंखों के सामने भूत नाचते।

९

एक दिन डमरू वजाता हुआ एक मदारी उधर आ निकला। उसके पीछे एक कद्दावर काला रीछ आ रहा था और कंधे पर झोली लटकी थी। मैं अपने घर के दरवाज़े पर खड़ा उसे देख रहा था।

"ओह, नच के दिखा दे लधिया!"

इस आशा में कि मैं तमाशा देखूंगा, वह अपनी मोटी आवाज़ में गाने लगा। जब देखा कि मैं भागा नहीं तो वह भी ठहर गया और अपनी झोली उतारकर रख दी। अव वह ज़ोर-ज़ोर से डमरू बजा रहा था, और तव तक रीछ को लाठी चुभोता रहा जब तक कि वह पिछली टांगों पर खड़ा होकर नाचने नहीं लगा।

रीछ जब भद्दे और मनोरंजक ढंग से शरीर हिलाता और ऊपर-नीचे कूदता था तो उसके पांव के घुंघरू वजते थे। रामदीन माली और सिपाहियों की एक भीड़ तमाशा देखने जमा हो गई।

मदारी अपने साथी से बेसिर-पैर की संगीतमय बातें कर रहा था :

"ओह, इन्हें नाच दिखाओ, देवताओं का नाच, लधिया ! देखो, झुरमुट में पत्ते कितने हरे हैं और पेड़ों में से छन-छनकर प्रकाश तुमपर पड़ रहा है, स्वर्ग का प्रकाश !

"ओह मेरे लधिया, ओह मेरे भालू, नाचो, नाचो, हवलदार तुम्हें अपना पुराना कोट देंगे ! वे अपने पाप उतारने के लिए अपने सिरों पर से वारकर मुझे तेल देंगे, और वे मुझे बासी रोटियां देंगे जिन्हें कोई दूसरा नहीं खाता ! धोबिन के लहंगे पर तिरछी निगाहें मत डालो, वह बड़ी कर्कश है। मैं तुम्हें दुल्हन ला दूंगा जो तुम्हारी तरह काली-कलूटी होगी और जिसके शरीर पर बाल होंगे, उसकी थूथनी भी तुम्हारी तरह सूअर जैसी लम्बी होगी।

"ओह, नाचो, लधिया नाचो। अपनी टेढ़ी नजर भंगिन से दूर रखो और मुझे सरकारी फौजी वर्दी कमा लेने दो। ओह, अपनी गंदी हंसी बंद करो··· "

ये शब्द इतने अजीब थे कि मुझे याद हो गए और मैं उन्हें दोहराने लगा हालांकि उनमें निहित धूर्तता को मैं बिलकुल नहीं समझता था।

मैं उसके भारी-भरकम शरीर और धौंकनी की तरह चलती हुई सांस के नीचे घुघरियों की छन-छन और मजबूत नन्ही टांगों का नाच देख रहा था। पर होशियार मदारी ने, जो पूरा तमाशा दिखाने से पहले अपनी आमदनी निश्चित कर लेना चाहता था, सहसा डमरू बजाना बन्द कर दिया। रीछ भी नाच बन्द करके चारों टांगों पर खड़ा हो गया और धरती पहले की तरह हमवार दिखाई देने लगी।

"सूम जाएं और सखी खड़े रहें, जो फकीर साईं को रोटी, कपड़ा और पैसा दें !" मदारी ने स्पष्ट स्वर में कहा।

कुछ सिपाही चले गए।

"सूम जाएं !" मदारी ने 'सूम' शब्द पर विशेष बल दिया।

एक सिपाही, जो जा रहा था, पलटकर खड़ा हो गया और क्रोध में भरकर बोला कि अगर मदारी दोबारा ऐसी गुस्ताखी करेगा तो मैं अर्दली से कहूंगा कि वह उसे गर्दन से पकड़कर यहां से बाहर निकाल दे।

मदारी ने इस धमकी का उत्तर गालों में दिया। उनमें लड़ाई हो जाती, मगर उसी समय मां आटे से भरा प्याला हाथ में लिए बाहर आई। मदारी अपनी झोली फैलाए इस ओर दौड़ा।

चूंकि रीछ भी उसके साथ आया, इसलिए मैंने सहमकर मां की साड़ी पकड़ ली और उससे चिपट गया।

"गुरू गोरखनाथ आपका और आपकी संतान का भंडार भरा रखे!" मदारी ने आशीर्वाद दिया।

"साईं, बताओ क्या गुरु गोरखनाथ हमसे प्रसन्न हैं?" मां ने साड़ी को सिर से आंखों पर खींचते हुए पूछा।

मुझे यह सब नीरस लगा इसलिए मां से कहा कि वह मदारी से रीछ नचाने को कहे।

"ठहरो, बेटा!" उसने मुझे एक ओर हटाते हुए कहा।

इसी समय पिता दफ्तर से लौटे। उन्हें देखकर मैं चिल्लाया, "पिताजी, मदारी आया है। उसे कहो भालू को नचाए।"

और इनाम पाने की आशा में मदारी ने फिर तमाशा शुरू किया। वह डमरू बजा रहा था और अंट-शंट गा रहा था:

"आ, लधिया आ, इन्हें अपना नाच दिखा। तू पर्वतों की सांसों पर पला और जंगली फूलों के डंठल खाकर जवान हुआ है। तेरे क्या कहने, तू तो देवलोक का जीव है! तुझे गुरू गोरखनाथ ने सिखाया है। तू अपना नाच दिखा!..."

रीछ ने फिर अपनी अगली टांगें ऊपर उठा लीं। उसकी नन्ही आंखें अजीब से झपक रही थीं, उसका भारी शरीर इधर-उधर हिल रहा था, बाल घास नाईं सरसरा रहे थे और मुझे धरती-आकाश एक दिखाई दे रहे थे।

"आ, लधिया आ, अपना नाच दिखा क्योंकि तू पुरुषों के दुख-दर्द हरता और स्त्रियों के हृदय जीत लेता है।

"नाच, नाच! क्या हुआ अगर तेरा शरीर काला है, माथा तो सफेद है और दिल भी सफेद है!

"हां, नाच, लधिया नाच! बदी को भगाकर नेकी ला, सूमों को भगा दे और सखियों को रहने दे...क्योंकि तू पशुओं में शहजादा है, काला शहज़ादा!"

भालू नाच रहा था। उसका दम उखड़ गया था पर थकने का काम नहीं था; वह पसीने से तरबतर था, पर अघाता नहीं था और उन्माद की स्थिति में धरती रौंद रहा था। मैं उसके नाच से इतना मुग्ध हुआ कि पृथ्वी की मौत के बाद दिल खोलकर हंसा।

बचपन ! ओह बचपन ! आदमी बचपन में कितनी जल्दी प्रसन्न और कितनी जल्दी उदास होता है ! क्या बचपन जैसा आह्लाद और पल-भर में भागनेवाला विषाद वही होगा ? उन दिनों में कौन-सा जादू था जो अब नहीं ?··· क्या यह आत्मा की निरीहता थी या शरीर की दृढ़ता ?

१०

मुझे दिन के प्रकाश में नींद नहीं आती थी। इसलिए दुखद एकांत से बचने के लिए मैंने मैदान के उस पार बसनेवाले छोटे मुलाजिमों के लड़कों में साथी खोजने शुरू किए।

मैं जाने कितने दिन तक कुएंवाले झुरमुट की छाया में खड़ा विस्तृत मैदान के उस पार क्षितिज की ओर ताकता रहा, जहां छोटे मुलाजिमों की कच्ची झोपड़ियां बनी थीं और जिनपर उन दो सुर्ख चिमनियों से उठनेवाले धुए के बादल छाए रहते थे, जिनमें सिपाहियों के पाखाने की सूखी गिलाज़त जलाई जाती थी। जब मैं वहां खड़ा क्षितिज की ओर देखा करता था और कभी झुरमुट से झींगुर की आवाज़ सुनता था, तो मैं जानता था कि मुझे किसी साथी का इंतज़ार है।

एक दिन मैंने अली को देखा। वह पलटन में नफीरी बजानेवाले अब्दुल का बेटा था। वह धीरे-धीरे पाखानों से परेवाले टीले की ओर बढ़ा और कीकर के पेड़ तले लेट गया। मैं माली की आंख बचाकर अली की ओर भागा और मैंने मुड़कर झुरमुट की ओर नहीं देखा। जब मैं उसके पास पहुंचा तो वह एक ढेले से मिट्टी खा रहा था। उसकी नाक बह रही थी और उसने जो सुर्ख तुर्की टोपी पहन रखी थी उसमें से पसीना निकल-निकलकर उसकी लम्बी गर्दन और गालों पर बह रहा था। उसने पुरानी धारीदार कमीज़ और मैली सलवार पहन रखी थी।

"लो, यह खाओ।" उसने धीरे से कहा। आवाज़ उसकी सोने जैसी सर्दी नाक में से निकल रही जान पड़ती थी जिसकी गिलाज़त लगभग उसके होंठों पर आ गई थी।

मैं बहुत खुश हुआ क्योंकि अली मेरे भाई गणेश का मित्र था और उसने यह शर्त लगा रखी थी कि जब वे दोनों खेलते हों तो मैं उनके पास [illegible]टक। मैंने

ढेले से एक ग्रास लिया और मुझे उसका मीठा भुरभुरा स्वाद अच्छा लगा; जैसे मेरे स्वाद से उसका विशेष सम्बन्ध हो।

"बेवकूफ, बैठ जाओ वरना मेरी मां हमें देख लेगी।" उसने मेरा कमीज पकड़कर मुझे खींचते हुए कहा।

मुझे भी यह चिन्ता थी कि कहीं मेरी मां मुझे न देख ले। इसलिए उसकी बात मानकर चुपचाप बैठ गया।

"वादा करो, किसीको नहीं बताओगे कि मैंने तुम्हें मिट्टी खिलाई।" उसने कहा।

"मैं वादा करता हूं।" मैंने उत्तर दिया।

और जिस ढेले को वह चूहे की तरह कुतर रहा था उसमें से एक ग्रास मुझे और दिया।

"चलो, अब हम थूहर खाएं। ठोस मिट्टी के बाद उसका रस बड़ा अच्छा लगता है।"

जब वह थूहर के पेड़ की ओर चला तो मैं भी उसके साथ था। जबकि वह टांगों और हाथों के बल घिसट रहा था, मैं उठ-उठकर फुदक रहा था।

"लेट जाओ, मैं जो तुम्हें कहता हूं।" उसने मुझे खींच लिया और मुंह पर ज़ोर की चपत दी।

मैं रोने लगा।

उसने मेरे मुंह के आगे अपनी हथेली रख दी और धीरे से कहा, "खुदा के ए रोओ मत, बुल्ली, वरना मैं पिट जाऊंगा। देखो, मैं तुम्हें क्या देता हूं।..."

और उसने अपने बायें हाथ से बैंगनी लाल रंग का एक फल तोड़ा, कुछ देर उसे धरती पर रगड़ा और फिर उसकी टूटी खोली। फल में से गहरे लाल रंग का रस निकलना शुरू हुआ। वह उसे चूस रहा था और आनन्द में झूम रहा था जैसे आम चूस रहा हो।

"मुझे भी तो दो!" मैंने कहा। और उसने तुरन्त फल मुझे चूसने को दिया।

वह स्वादिष्ट और गर्म था यद्यपि दांतों को कुछ तेज़ लगा।

"पसन्द आया?" उसने पूछा।

"हां।" मैंने उत्तर दिया।

और दूसरे ही क्षण मैं झुंझलाया हुआ अपने होंठ मल रहा था और जो रस पीया था उसे थूक रहा था।

"पागल ! गधा !" अली चिल्लाया, "तुमने उसके छोटे कांटे भी निगल लिए हैं ?"

मैं भय के मारे घबरा गया और जोर-जोर से चीखने लगा।

"चुप रहो, साले !" उसने गाली दी।

लेकिन मुझे चैन नहीं था क्योंकि छोटे-छोटे कांटे, जिन्हें वह धरती पर मल नहीं पाया था, मेरे होंठों और जीभ पर चुभ रहे थे।

"लो, एक घूट और लो।"

हालांकि उसके क्रोध की अपेक्षा मैं कांटों से अधिक डर गया था, फिर भी तुरन्त उसका कहा माना। मैंने फल दोबारा चूसा तो उसके तेज कांटे सूइयों की तरह चुभ गए और मैं पहले से भी अधिक रोने और चीखने लगा। इतना तो मैं कभी उस समय भी नहीं रोया था जब मेरी मां मेरा दूध छुड़ाने के लिए अपने स्तनों पर लाल मिर्चों का लेप कर लिया करती थी।

अली के पास अब इसके सिवा कोई चारा नहीं था कि वह मुझे अपनी झोंपड़ियों की ओर घसीट ले चले।

जब मेरा कोमल शरीर मैदान की तपती और खुरदरी मिट्टी पर रगड़ खाता था, तो मैं पहले से भी अधिक चीखता था।

मेरी आवाज सुनकर भंगी का लड़का बक्खा हमारी ओर दौड़ा आया; क्योंकि वह एक लाल चिमनी को फावड़े के साथ कूड़ा-करकट से भर रहा था।

"तुम इस बेचारे को ऐसे क्यों घसीट रहे हो ?" उसने अली से कहा।

"यह साला मेरी मां को जगा देगा और मैं उसे सोते देखकर घर से खिसक आया हूं।" अली ने कहा, "देखो तो सही, मैंने इसे थूहर का रस पीने को दिया और उसका इनाम मुझे यह मिल रहा है।"

"साले, इसे चोट लगी है !" बक्खा ने कहा, "नन्हे, मुझे बताओ, बात क्या हुई ?"

मैंने दायें हाथ की पांचों अंगुलियों से मुंह की ओर संकेत करते हुए कहा "कांटे !"

"तुम साले बेवकूफ !" बक्खा ने अली की बगल [illegible] दा।

मारते हुए कहा। उसका भारी पग्गड़ खुल गया था, खाकी कमीज़ और निक्कर धूल और पसीने से चिक्कट थी और वह बाजेवाले के लड़के पर गुर्रा रहा था।

"मैं तुम्हें उठा नहीं सकता।" उसने मुझसे कहा, "लेकिन तनिक रुको, मैं छोटा और रामचरण को बुलाता हूं।"

"इसने मुझे मिट्टी भी खिलाई।" मैंने कहा; लेकिन उस समय जब बक्खा चला गया था।

"चुप रहो, साले!" अली चिल्लाया और मुझे एक और ज़न्नाटे की चपत रसीद की।

मैंने चीखकर आसमान सिर पर उठा लिया।

बक्खा ने ठहरकर छोटा और रामचरण को पुकारा जो कच्ची झोंपड़ियों की छाया में कंचे खेल रहे थे। लौटकर उसने अली को कान से पकड़ लिया और कहा कि इससे पहले कि तुम्हारी मरम्मत की जाए, नाक साफ करो। अली ने चूंकि आदेश का पालन नहीं किया इसलिए बक्खा ने उसकी टोपी उतारी और उससे नाक पूंछ डाली।

बंसरी बजानेवाला छोटा और गुलाबो धोबिन का लड़का रामचरण, अली की मरम्मत होते देख बड़े खुश हुए।

"साले, अली के बेटे, बक्खा का कहा मानो।" छोटा दूर ही से चिल्लाया।

"ठीक है।" रामचरण ने अपनी आंखों को तेज़ धूप से बचाते हुए कहा।

"हरामी, देखना," अली बोला, "मैं भी बदला लूंगा। पहले तो इस भंगी बदमाश ने मुझे छूकर नापाक किया है और फिर मेरी तुर्की टोपी से नाक पूंछकर मेरा मज़हब बिगाड़ा है···" वह बक्खा की गिरफ्त में तड़प रहा था और क्रोध के मारे उसके मुंह में झाग आ गया था।

मैं कभी हंसता और कभी रोता था। लेकिन थूहर की डौडी के कांटे जब जीभ में चुभते थे तो मैं ज़ोर से चीखता था।

"चुप रहो, साले!" छोटा ने कहा, "तुम्हें कोई हलाल तो नहीं कर रहा। रामचरण, इसे उठा लो।"

अब मैं ज़मीन में लोटने लगा और रामचरण के पास जाने से इनकार कर दिया क्योंकि उसकी नाक में गिलाज़त भरी थी और आंखें पीप-भरे फोड़े दिखाई देती थीं।

बक्खा ने खुद मुझे नहीं उठाया क्योंकि वह जानता था कि भंगी होने के कारण लोग उससे बिगड़ेंगे और विशेषकर जब मेरी मां को मालूम होगा तो वह बहुत नाराज होगी। आखिर वह अपनी भारी बूटों से थप-थप करता झोंपड़ियों की ओर बढ़ा और मुझसे कहा, "नन्हे, चुप रहो। मैं किसी दूसरे आदमी को बुलाता हूं, जो तुम्हें उठा ले।"

उसके जाने की देर थी कि अली चीते की भांति रामचरण पर झपटा। जब वे दोनों धरती पर गुत्थमगुत्था हो रहे थे तो छोटा उन्हें अलग कर देने का प्रयत्न कर रहा था। लेकिन जब अली ने उसे हाथ पर काटा तो वह भी लड़ाई में शामिल हो गया।

आखिर बक्खा बनेटन को साथ लिए लौटा। वह पलटन के बैंड में नफीरी बजानेवाला एक ईसाई था और कभी मेरे पिता का अर्दली भी रह चुका था। उसने मुझे गोद में उठाया और पुचकारते-दुलारते घर ले आया।

मेरी मां सो रही थी। वह कुंडी के खटके से हड़बड़ाकर उठी और जब मुझे मिट्टी में लथपथ रोते देखा तो चिल्लाई। और मैं जिन्दगी में दूसरी बार उसके हाथों खूब पिटा; सिर्फ एक अजनबी बनेटन ही था जो मुझे पिटने से बचा सकता था। जब उसका गुस्सा उतर गया तो उसने मुझे नहलाया और बड़े प्रेम और धैर्य से पोंछा। अली, छोटा, रामचरण और बक्खा को उसने जी भरकर कोसा, जिन्होंने उसके नन्हे मुन्ने को मिट्टी खाने और धतूरे का रस पीने जैसे खतरनाक खेलों में उलझाया।

"देखो लोगो, दुनिया में कैसा अंधेर छा गया है!" वह बड़बड़ाई, "कमीने आसमान को छूने लगे हैं।"

और मैं मित्र भाव से झोंपड़ियों की ओर देख रहा था जो गोबर से अटी हुई थीं और जिनपर मक्खियां भिनभिना रही थीं। हवा में धुएं की कड़ुवाहट थी और ऊबड़-खाबड़ धरती पर धोबिनों और भंगिनों ने उपले थाप रखे थे जिनके बीच कुत्ते और बिल्लियां मरी पड़ी थीं।

११

इस घटना के बाद पिता ने गणेश को अमृतसर से बुला लिया। एक

बकशा ने गुद मुझे नहीं उठाया क्योंकि वह जानता था कि भंगी होने के कारण लोग उससे बिगड़ेंगे और विशेषकर जब मेरी मां को मालूम होगा तो वह बहुत नाराज होगी। आखिर वह अपनी भारी बूटों से धप-धप करता झोंपड़ियों की ओर बढ़ा और मुझसे कहा, "नन्हे, चुप रहो। मैं किसी दूसरे आदमी को बुलाता हूं, जो तुम्हें उठा ले।"

उसके जाने की देर थी कि अली चीते की भांति रामचरण पर झपटा। जब वे दोनों धरती पर गुत्थमगुत्था हो रहे थे तो छोटा उन्हें अलग कर देने का प्रयत्न कर रहा था। लेकिन जब अली ने उसे हाथ पर काटा तो वह भी लड़ाई में शामिल हो गया।

आखिर बकशा कनेटन को साथ लिए लौटा। वह पलटन के बैंड में नफीरी बजानेवाला एक ईसाई था और कभी मेरे पिता का अर्दली भी रह चुका था। उसने मुझे गोद में उठाया और पुचकारते-दुलारते घर ले आया।

मेरी मां सो रही थी। वह कुंडी के खटके से हड़बड़ाकर उठी और जब मुझे मिट्टी में लथपथ रोते देखा तो चिल्लाई। और मैं जिन्दगी में दूसरी बार उसके हाथों खूब पिटा; सिर्फ एक अजनबी कनेटन ही था जो मुझे पिटने से बचा सकता था। जब उसका गुस्सा उतर गया तो उसने मुझे नहलाया और बड़े प्रेम और धैर्य से पोंछा। अली, छोटा, रामचरण और बकशा को उसने जी भरकर कोसा, जिन्होंने उसके नन्हे मुन्ने को मिट्टी खाने और शूहर का रस पीने जैसे खतरनाक खेलों में उलझाया।

"देखो लोगो, दुनिया में कैसा अंधेरा छा गया है!" वह बड़बड़ाई, "कमीने आसमान को छूने लगे हैं।"

और मैं खिन्न भाव से झोंपड़ियों की ओर देख रहा था जो गोबर से अटी हुई थीं और जिनपर मक्खियां भिनभिना रही थीं। हवा में धुएं की कड़वाहट थी और ऊबड़-खाबड़ धरती पर धोबियों और भंगिनों ने उपले थाप रखे थे जिनके बीच कुत्ते और बिल्लियां मरी पड़ी थीं।

११

इस घटना के बाद पिता ने कनेत को अमृतसर से बुला लिया। एक तो मेरे

लिए साथी की ज़रूरत थी और दूसरे वे उसे स्कूल में डालना चाहते थे। जैसाकि मुझे बाद में मालूम हुआ, पारिवारिक धंधा सिखाना तो बहाना-मात्र था। चाचा प्रताप की अपनी कोई संतान नहीं थी; इसलिए पिता चाहते थे कि वे गणेश को गोद ले लें ताकि पूर्वजों की सम्पत्ति में से चाचा को जो हिस्सा मिला था वह लौट आए।

गणेश पहले से प्रसन्न और स्वस्थ लौटा। उसने शहरी लाला की तरह नई धोती और सदरी पहन रखी थी। कुछ दिन उसका व्यवहार मुझसे बड़ा अच्छा रहा और उसने मेरा मन जीत लिया। उदाहरणतः, उसने मुझे मलमल का एक रूमाल और कपड़े में बंधी हुई कुछ इकन्नियां रखने के लिए दे दीं। वह मुझे मिट्टी के उस घोड़े से भी खेलने देता था, जो उसके अपने कथनानुसार चाचा प्रताप ने एक दिन दरबार साहिब जाते हुए खरीद दिया था। इसके अलावा उसने मुझे बताया कि जब घर में मांस बनता था तो चाची देवकी बोटी खाते हुए मुझे अक्सर याद करती थी। अमृतसर में कूचा फकीर खां में हमारा जो घर था, उसके पास ही शाम को अपने घर के छज्जे में बैठे हुए चाची ने उसे बहुत-सी कहानियां सुनाईं। मेरी मां ने गणेश से खोद-खोदकर पूछा कि उनके घर कौन-कौन आता-जाता था। इस प्रकार उसे जो जानकारी प्राप्त हुई उससे निस्संदेह चाची के चरित्र के बारे में उसकी शंका दृढ़ हो गई।

हमारे घर का वातावरण एक नई चहल-पहल और चिड़ियों की चूं-चूं के शा एक संगीतमय कलरव से ओतप्रोत हो गया। पृथ्वी की मौत के बाद से वातावर कुछ घुटा-घुटा-सा रहता था। मैं और गणेश अपने-अपने खजाने, खाने की 'किसी चीज़' में अपने भाग के लिए अथवा खेल-खेल में कभी लड़े-झगड़े नहीं थे। इसके अलावा बड़े भाई हरीश ने अभी-अभी मैट्रिक पास किया था और वह हमें मिलने अक्सर घर आता था। फिर मां का शरीर भीतरवाले बच्चे से बढ़ गया था और जब वह मुझे अपने पेट से सिर सटाकर लिटा लेती थी तो मैं उसकी गतिविधि देख सकता था।

इस स्थिति में गणेश मेरे साथ खेलने को सहमत हो गया। उसके लिए और कोई चारा भी नहीं था, क्योंकि मेरे साथ जो घटना घटित हुई थी, उसके बाद माता-पिता ने उसे छोटे मुलाज़िमों के बच्चों के साथ खेलने से मना कर दिया था।

लेकिन हमारी इस दोस्ती का परिणाम मलीवाली दुर्घटना से कहीं भयंकर निकला।

हमारे घर में जो बिल्ली थी, उसने बच्चे जने। कई दिन तक उसने मेरी मां के अतिरिक्त किसीको अपने टोकरे के पास नहीं फटकने दिया। दूसरी ओर बिलूगड़ों को देखने और उनसे खेलने की मेरी उत्सुकता दिन-दिन बढ़ रही थी, क्योंकि मुझे बिल्ली के टोकरे के पास जाने से मना किया गया था। आखिर मेरे धैर्य का बांध टूट गया।

एक दिन बिल्ली कहीं गई हुई थी और मैं ऐसे समय की ताक में था। मैं झट टोकरे के पास गया और देखा कि कछुवे जैसे बिलूगड़े एक-दूसरे के ऊपर बैठे हुए हैं। तीन ने अपनी आखें खोल ली थीं और दो उनके नीचे अंधे, पंगु और विवश पड़े थे।

मैंने गणेश से संधि की कि तुम बड़े होने के नाते दो बिलूगड़े लो और मैं एक लेता हूं। और मैंने यह भी प्रस्ताव रखा कि हम उन्हें बगीचे में ले जाकर माली को दिखाएं।

माली तो वहां दिखाई नहीं दिया, हम उन्हें इधर-उधर भगाकर खेलने लगे।

चूंकि ये अभी चलने-फिरने में समर्थ नहीं थे, इसलिए हमने तय किया कि उनके गलों में अपने रूमाल बांधकर इस तरह खींचें जिस तरह साहबों के अर्दली पट्टे वाले कुत्ते और कुतियों को खींचते हैं। लेकिन बिलूगड़े खींचने से चलने के बजाय पीड़ित स्वर में म्याऊं-म्याऊं करने लगे।

तब हमने तय किया कि कुएं पर जाकर बिलूगड़ों को उनके प्रतिबिम्ब दिखाएं।

हम कुए के चबूतरे पर खड़े होकर और उसकी मुंडेर पर झुककर पानी में उनकी हिलती हुई परछाइयां देखने लगे। हमें कुए की गहराई में अपनी आवाज की प्रतिध्वनि भी सुनाई दे रही थी। इसलिए हम यह देखने के लिए चुप हो गए कि आया हम बिलूगड़ों की म्याऊं-म्याऊं की गूंज भी सुन सकते हैं। उनकी आवाज की प्रतिध्वनि अत्यन्त मंद थी।

सहसा गणेश ने मुझे उकसाया कि मैं अपने बिलूगड़े को कुए में फेंक दूं। "तब," उसने कहा, "हम म्याऊं-म्याऊं की प्रतिध्वनि साफ सुन सकेंगे।"

मैंने उससे कहा कि तुम अपने बिलूगड़े भी फेंकना क्योंकि अधिक म्याऊं-

म्याऊं होगी। वह सहमत हो गया। मैंने कहा कि पहले तुम फेंको, क्योंकि तुम्हारे पास दो हैं। लेकिन बड़ा भाई होने के नाते उसने आदेश दिया कि पहले मैं फेंकूं।

अधिक बखेड़ा न करते हुए मैंने अपना बिलूंगड़ा कुएं में फेंक दिया। वह चीखता हुआ नीचे गिरा और एक-दो बार उसने अपना सिर पानी से ऊपर उठाकर म्याऊं-म्याऊं किया और डूब गया।

अब गणेश चाहे तो डर गया और चाहे अपने बिलूंगड़े कुएं में फेंकने का उसका पहले ही इरादा नहीं था, वह तुरन्त वहां से भागा और घर आकर सारी घटना मां को बता दी।

मां घर से दौड़ती हुई आई और उसी प्रकार सियापा करने लगी जिस प्रकार पृथ्वी के मरने पर किया था और इस पाप के लिए मुझे कोसने लगी। उसने माली को बुलाकर कहा,. अगर सम्भव हो तो वह कुएं में उतरकर बच्चे को बचाए।

माली अपने हाथ में एक टोकरा लेकर रहट की जंजीर द्वारा कुएं में उतर गया। जब वह ऊपर आया तो मरा हुआ बच्चा टोकरे में था।

मालूम नहीं कि मैं पिटने से कैसे बचा, लेकिन इतना याद है कि मां मुझे बार-बार जताती रही कि एक मासूम नन्हे बिलूंगड़े को कुएं में डुबोकर मैंने हिन्दू धर्म के अनुसार कितना बड़ा पाप किया है। बिल्ली बेचारी ममता की मारी कई दिन तक दुःख से चिल्लाती और जो बच्चे शेष थे, उनकी सतर्क निगरानी करती रही। मेरी मां ने एक सोने का बिलूंगड़ा बनवाया और प्रायश्चित्त के रूप में उसे पंडित बालकृष्ण के मंदिर में चढ़ाया।

उस समय मैंने अपनी इस शरारत की भयंकरता को महसूस नहीं किया, लेकिन मैं बहुत दिनों तक पानी में डूब रहे बच्चे की म्याऊं-म्याऊं और बेचारी मां का करुण रुदन सुनता रहा। मैं अपने मस्तिष्क की अंधेरी रिक्तता में भगवान की आवाजें सुनता रहा और वह अपना दढ़ियल चेहरा मेरी ओर बढ़ाकर कहता था, 'देखना, मैं तुम्हें इस पाप का क्या दण्ड देता हूं।' इससे मेरी चंचलता को बड़ा आघात पहुंचा। कई साल बाद मैं यह समझ पाया कि किस तरह गणेश ने मुझे यह भद्दा काम करने के लिए उकसाया, और उसने मुझे जो धोखा दिया उसके लिए मैं उसे कभी क्षमा नहीं कर पाया।

१२

इस घटना के बाद मैं अपने-आपको विशेषकर अपनी मां की दृष्टि में बड़ा ही अपमानित अनुभव करने लगा। न सिर्फ यह कि उसके मन में मेरे पाप की ग्लानि थी, बल्कि यह भी क्षोभ था कि मन्दिर में बिलूगड़े की मूर्ति चढाने के लिए सोना खरीदना पडा। वह स्पष्ट तो कुछ नहीं कहती थी, लेकिन जब बिल्ली की म्याऊं-म्याऊं सुनती थी तो इस असावधानी के लिए मुझे डांटती थी।

मगर पिता का प्यार वैसा ही बना था। वे मुझे पहले की तरह पुचकारते, दुलारते और निरर्थक लोरी गाते हुए हवा मे उछालते थे; अपनी मूछें मुझसे खिचवाते और अंधविश्वास और रूढिवाद के लिए मा का मजाक उड़ाते थे। मुझे पिता के शब्द और मा के उत्तर याद हैं, यद्यपि मैं उनका अर्थ नही समझता था।

"तुम्हारी मां पागल है," वे कहते थे, "देखो तो सही, देवता की प्रसन्नता के लिए सोने का बिलूगड़ा खरीदा। निश्चय ही उस खिलौने मे पडित बालकृष्ण की जेब गरम हुई। बिलूगड़ा मर गया और बात खत्म हुई। बच्चे का कोई अपराध नही, क्योंकि उसे कोई समझ ही नहीं; और पगली सुन्दरई के मन मे आज तक पाप का संताप है।"

"तुम्हें इतना निश्चित नहीं होना चाहिए।" मा पिता के मजाक का प्रतिवाद करते हुए कहती, "भगवान की माया बड़ी विचित्र है और जो कुछ हम करते हैं वह सब देखता है। हम एक चींटी को भी सताए, वह तब भी देखता है और याद रखता है। मैं नही चाहती कि हम उसके कोप के भाजन बनें, विशेषकर तब जबकि वह पृथ्वी को छीनकर हमारे दुष्कर्मों का दण्ड दे चुका है। मैं अपने इन बेटों की और होनेवाले बच्चे की दीर्घ आयु चाहती हूं और मैं चाहती हूं कि तुम ठिठोली बन्द कर दो, क्योंकि तुम्हारे पाप का दण्ड मुझे मिलेगा।"

"अजीब दलील है!" पिता कहते, "वह भगवान कितना फिजूल है जो इतना प्रतिहिंसक है।"

"अशुभ मत बोलो," मा कहती, "मगर तुम सर्वशक्तिमान भगवान को इस प्रकार गाली दोगे, तो मुझे हर पूर्णमासी को एक पडित दस साल तक जिमाना पडेगा।"

पिता आंखें मिचकाकर हंसते और हम सबको इकट्ठा करके रहट पर नहाने ले जाते।

वे हमारे जीवन में दिनोंदिन अधिक दिलचस्पी ले रहे थे क्योंकि वे जानते थे कि मां बीमार रहती है और हमारी देखभाल नहीं कर सकती।

स्वभावतः हम बड़े प्रसन्न थे क्योंकि वे हमारे लिए किसी देवता से कम नहीं थे। पहले वे थोड़ी देर गुदगुदाकर और चोंचले करके हमें घर में छोड़कर चले जाते थे, जबकि खाने, पहनाने और नहलाने की बाकी सब जिम्मेदारियां मां पर थीं।

पिता का जो हंसाने-परचाने का ढंग था उसपर उनका कोई अधिक पैसा खर्च नहीं होता था। उदाहरण के लिए जब उन्हें सौदा खरीदना होता तो छावनी के बाजार में मुझे और गणेश को अपने साथ ले जाते। वहां हमें बनिये की दुकान पर भूंगे का गुड़, फलवाले से आम या सेब या हलवाई की दुकान से क्रीम-केक अथवा गुलाबजामुन मिल जाता और हम खुश हो जाते। पिता चूंकि पलटन में प्रभावशाली व्यक्ति थे, इसलिए दुकानदार ये चीजें सहर्ष देते थे ताकि वे दे भी दें और रिश्वत भी न जान पड़े। हम चीजें लेते और पिता चुपचाप आगे निकल जाते, उन्हें तो मानो पता ही उस वक्त लगता जब हम बाजार में पीछे छूट जाते। तब वे हमें फल और मिठाइयां अपने रुमालों में बांधने को कहते ताकि उन्हें कल या परसों के लिए 'श्रोह कुछ' सन्दूक में बचाकर रखा जा सके।

हमारे घर से सड़क के उस पार जब वे आफीसर-मेस में स्टोर के निरीक्षण को जाते तो हमें भी जान-बूझकर अपने साथ ले जाते; मगर जब स्टोर-कीपर हमारी झोलियां चाकलेट, टाफियों और पिपरमेंट से भरता तो वे दूसरी ओर देखा करते। उन्होंने हमें सिखा रखा था कि खाने की कोई भी चीज़ लेने से पहले हम तीन बार विनम्रतापूर्वक इनकार कर दिया करें। लेकिन जब सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा खानसामा, अल्लाहबख्श मेस की बेकरी से हमें गरमा-गरम केक या डबलरोटी देता तो वे खुद ही यह नियम तोड़कर हमें लेने को उकसाते। गाय का मांस खानेवाले मुसलमानों और ईसाइयों द्वारा पके हुए भोजन के प्रति मां के मन में जो विरोध था उसे वे बड़े ही दर्प से व्यर्थ की बकवास और मूर्खता कहकर झुठलाने का प्रयत्न किया करते।

चरतसिंह एक वार हमारे घर आया तो मैंने उससे दोस्ती गांठ ली थी और फिटिन में पहले-पहल उसी दिन सवार हुआ था। वग्घी में चढ़ना तो और भी अच्छा लगता था। रेजीमेंट के किसी भी उत्सव पर मेरा उपस्थित होना अच्छा शकुन माना जाता था, क्योंकि जब मैं पहली वार फिटिन में सवार होकर मैदान पहुंचा था तो पलटन की टीम सौभाग्य से जीत गई थी। जितनी जल्दी मैं एक अमंगलकारी वालक प्रसिद्ध हुआ था उतनी ही जल्दी मुझे सूरज का वेटा, सौभाग्यशाली, हंसता-चहकता, प्रफुल्लचित्त वालक समझा जाने लगा, जो वातें वनाने में तोता और उछलने-कूदने में लंगूर था।

१३

अधिक लाड़-प्यार से विगड़ा हुआ तो मैं था ही, अब मेरे दम्भ का ठिकाना न रहा। मेरी यही इच्छा रहती थी कि पिता मुझे अपने अधिक से अधिक मित्रों के पास ले जाएं और उनसे कहें कि इससे अच्छा और वेहतर लड़का कोई दूसरा नहीं है, ताकि मैं लौटकर छोटे मुलाज़िमों के ईर्ष्यालु लड़कों से कह सकूं कि देखो मैं कितना भाग्यशाली हूं जिसे तुम छोटा समझकर अपने साथ खिलाते तक नहीं। पलटन के लिए मंगलकारी वन जाने की एक हानि यह हुई कि खुद मुझे अनुशासित होना पड़ा। मुझे एक यांत्रिक खिलौने की भांति शरीर के अधिकांश भाग को स्थिर और अचल रखकर हाथ और सिर से कुछ संकेत करना सिखाया गया जसे मैं एक प्यारी चहेती गुड़िया हूं। फिर भी इस प्यार-दुलार का मैं इतना आदी हो गया कि हर सुवह माता-पिता से पूछता था, "आज मुझे कहां ले जाना है?" वे एक-दूसरे की ओर देखकर मुस्कराते और यद्यपि, पुरानी दुनिया के उन माता-पिता की भांति जो अपने वच्चों की प्रसन्नता में प्रसन्न होते हैं और वूर्जुआ ढंग से रहते हैं, मन ही मन एक विशेप आनंद अनुभव करते; पर मुख पर प्रौढ़ गम्भीरता लाकर मेरे वाल-सुलभ प्रश्न को टाल जाते।

धीरे-धीरे जब वाज़ार की दुकानों, आफीसर-मेस और हाकी-मैच का आकर्पण फीका पड़ गया तो मेरे मन में नई और अधिक शानदार दुनिया के अभियानों की कामना उत्पन्न हुई। इसलिए मैं वार-वार यह पूछने लगा कि सड़क के उत्तर

और दक्षिण में ऐसे कौन-से स्थान हैं, जहां जाया जा सकता है। हमारे आंगन में बैठकर स्त्रियां जो गपशप करती थीं उससे मैंने लाहौर में और उसके इर्द-गिर्द कुछ विचित्र स्थानों के नाम सुन रखे थे। वे मेरे कानों को इतने मधुर लगे कि उनके नाम शाहआलमी गेट, शाहदरा, नीला गुम्बज, अनारकली, शालीमार और शीशमहल आदि दिन-भर दोहराया करता था। मैंने इनमें से कोई भी स्थान नहीं देखा था, और चाहे मैं कितनी ही कोशिश करता, कल्पना-मात्र से उनकी विशालता और सौंदर्य को जान लेना सम्भव नहीं था। इससे मेरे मस्तिष्क में ऐसे ही रंग-बिरंगे चित्र उभरते थे जैसे बच्चों की दूरबीन अथवा सहरा में सूरज की चमक से उभरते हैं।

मुझे ख्याल आता है कि माता-पिता दोनों एक-दो बार चुपके-चुपके शहर गए और ये स्थान देख आए, लेकिन हमसे कह दिया कि वे रिश्तेदारों से मिलने गए थे। मैं अपने मन से कभी यह फांस नहीं निकाल सका कि वे मुझे अपने साथ क्यों नहीं ले गए। मां ने हमें मिठाई अथवा 'ओह कुछ' संदूक से कुछ फल देकर खुश कर लिया, जबकि पिता ने मुझे इस वादे से संतुष्ट किया कि जब उन्हें दफ्तर से छुट्टी होगी तो वे हम सबको भारत के तीर्थों की यात्रा पर ले जाएंगे। यह बात सुनकर मां की आंखों में तो एक खास चमक आ गई थी; लेकिन हमारे लिए इसका कुछ भी महत्व नहीं था। मैंने अब भी शाहदरा, अनारकली या शाली-मार देखने के लिए हठ की और इन शब्दों का उच्चारण इस ढंग से किया कि [illegible] ने प्रसन्न होकर स्वर्ग भूमि पर उतार लाने का वचन दिया। मैं [illegible] उछलने-कूदने और चक्कर लगाने लगा और पिता ने यह कहकर [illegible] बनने से रोक दिया कि ऐसी हरकतें गांव के घामड़ लड़के करते हैं, [illegible] का चूहा कहते हैं।

एक दिन पिता ने घोषित किया कि वह हम सबको [illegible] गुमरी हाल में होनेवाली प्रदर्शनी देखने ले जाएंगे। मां ने हमें [illegible] कर आंखों में सुरमा डाला और नज़र लगने से बचाने के [illegible] कालिख का टीका लगाया। हमें नये कपड़े तो [illegible] आभूषण नहीं ताकि कोई चुराकर न ले जाए। [illegible] प्रदर्शनी में पहुंचे, जो फूलों, बेलों और [illegible]

अजीब बात है कि प्रदर्शनी में मुझे जो

पड़ी, वह एक बड़ा भारी बूट था। मैंने इतना बड़ा बूट ज़िन्दगी में पहली बार देखा था। वह बरामदे में एक चबूतरे पर रखा हुआ था। मुझे और गणेश को उसके भीतर उतार दिया गया। मैंने अपने बड़े भाई को इस विचित्र राज्य से निकाल देने के लिए लड़ना शुरू किया। उसपर मैं अपना एकमात्र अधिकार समझ रहा था क्योंकि छावनी की बारकों से सड़क के इस पार उत्तर में जो अनूठी और सुंदर दुनिया थी, उसमें आने के लिए मैं ही आग्रह करता रहा था। इसके बाद मुझे याद है कि हम बड़े-बड़े कमरों में से गुज़रे, जिनमें विचित्र आभूषणों, खिलौनों और कपड़ों से भरे हुए संदूक थे। उनमें झांकने के लिए मुझे कभी-कभी ऊपर उठाया जाता था। अपनी पलटन के कुछ सिपाहियों से भी हमारी भेंट हुई। मां का कहना था कि इन चीज़ों को देखकर, जो कांगड़ा और होशियारपुर की शुष्क पहाड़ियों में नहीं होती थीं, उनकी आंखें फटी जा रही थीं। लेकिन मुझे बर्फ की उस कुल्फी का स्वाद अब भी याद है, जो मैंने बाग में मां की गोद में बैठकर पहली बार खाई थी।

खोमचेवाला अपने करीब पड़े हुए मिट्टी के मटके में हाथ डालकर आर्डर के अनुसार टीन की छोटी या बड़ी कुल्फी निकालता। ऊपर का आटा खुरच-कर वह ढकना अलग करता था और फिर कुल्फी को दबाकर बर्फ यों निका-लता था जैसे बकरी दुह रहा हो। बर्फ पीतल के प्याले में उंडेलकर वह उसपर थोड़ा-सा फलूदा डालता था और फिर एक गुलाबदानी से गुलाब छिड़ककर गाहक को थमा देता था। ओह, कुल्फी देखकर या कुल्फीवाले की आवाज़ सुन मेरा दिल हमेशा बल्लियों उछलने लगता था। ओह, मलाई की बर्फ की टिकिया देखकर मेरे मुंह में कैसे पानी भर आता था! उसकी तुलना में आधुनिक रसमलाई अथवा मालपुआ भी कुछ नहीं।

कुछ सिपाहियों ने कहा कि नुमायश में आने से पहले उन्होंने चिड़ियाघर देखा है और बच्चों को वह ज़रूर देखना चाहिए। अब मैंने रट लगाई की चिड़िया-घर देखने चलें।

मां ने अवज्ञा में भरकर कहा कि सिपाही तो अपने भाई-बंद बन्दरों को देखने गए थे। हम किसलिए उन्हें देखने जाएं?

पिता ने कहा कि नुमायश देखने के बाद हम बहुत थक जाएंगे और देर भी हो जाएगी, इसलिए चिड़ियाघर देखने हम फिर किसी दिन जाएंगे।

उनके इस वादे के बाद ही मैंने अपनी हठ त्यागी, वरना मैं धरती पर लोट रहा था और चीख-चीखकर चिड़ियाघर चलने को कह रहा था।

ठुड्डी के नीचे तनिक गुदगुदी लेने की देर थी कि मेरा चेहरा खिल उठा और मैं प्रसन्नता के पंखों पर नीले आकाश में उड़ने लगा।

१४

मैं पिता को उनका वादा याद दिलाता रहा। और एक दिन सवेरे-सवेरे हम सब फिटिन में बैठकर चिड़ियाघर देखने चले।

मां अब बहुत ही भारी-भरकम जान पड़ती थी और मुझे अपनी गोद में नहीं बैठा सकती थी। इसलिए मैंने कोचवान के साथ गद्दी पर बैठने के लिए हठ की, जहां से मैं इर्द-गिर्द की विस्तृत दुनिया देख सकता था।

हम तारकोल की उसी पक्की सड़क पर चल रहे थे, जो हमारे घर के सामने फैली हुई थी, जो मेरे लिए शुरू में चुनौती बनी हुई थी, क्योंकि मैं उसे पार नहीं कर सकता था और उसपर लगातार ऊंटों और गधों के कारवां और टांगे और बग्घियां गुजरा करते थे। अब मैं भी उसीपर यात्रा कर रहा था। कोचवान ने, जो एक रोबदार आदमी था और जिसकी राजपूती दाढ़ी ठुड्डी पर दो हिस्सों में बंटी हुई थी, मुझे बताया कि सड़क का जो भाग हम पार कर चुके हैं, उसे ग्रांड ट्रंक रोड कहते हैं, वह भाग जिसपर हम नहर पार करने के बाद से चल रहे हैं ठंडी सड़क कहलाता है।

दरअसल यह हिन्दुस्तानी शब्द ठंडा 'माल' के शुष्क विशेषण के बजाय, जो मुझे बाद में मालूम हुआ, सड़क के वातावरण को ठीक व्यक्त करता है, क्योंकि इस लम्बी सड़क पर उगे कीकर के पेड़ों की दो पंक्तियों से उसी शांति [illegible] होता है, जिसका सम्बन्ध छाया से है। और सड़क की दोनों ओर बने बंगलों के सुन्दर और बड़े-बड़े बागों की झाड़ियों पर से जो हवा तरल पदार्थ की नाईं बह कर आती है, उससे भी उन घरों और कुओं के विश्राम का भान होता है।

हमारे चिड़ियाघर पहुंचते-पहुंचते ट्रैफिक बढ़ गई, और जिन्दगी चौराहे घूम रही जान पड़ी। जब हम दरवाजे पर पहुंचे तो आवेश के कारण मेरा सिर घूम रहा था। गाड़ी से फिर उतरने पर अब भी मन [illegible] और पर बैठे [illegible]

सकता था। पिता ने मुझे नीचे उतारकर अपनी अंगुली थमा दी जबकि अपना दूसरा हाथ गणेश को थमाया।

तब हम एक तंग रास्ता पार करके छोटी-छोटी सड़कों पर चलने लगे, जिन-पर पशुओं और पक्षियों के जंगले बने हुए थे और जो पेड़ों और फूलों में दुबके बैठे थे। मैं कितना उल्लास में भरकर तमाम पशुओं और पिता के कथनानुसार अपनी 'बिरादरी' का स्वागत करता था ! ओह, आश्चर्य और कौतूहल में भर-कर चिल्लाना ! इस दुनिया को देखने का उत्साह बयान से बाहर है।

और मेरे माता-पिता यह देखकर हैरान रह गए कि मैं शेरों और चीतों के दहा-ड़ने से तनिक भी नहीं डरा; हाथी की पीठ पर चढ़कर दूसरे बच्चों के साथ हौदे में बैठ गया और बन्दरों को अपने हाथ से मूंगफली खिलाता रहा, जो उनके देवता हनुमान का कोप शांत करने के लिए मां विशेष रूप से अपने साथ लाई थीं। बन्दर उसीकी सेना समझे जाते हैं।

बन्दरों का एक परिवार था, जिसमें मां बच्चे के सिर से जुएं निकाल रही थी और बाप मां के सिर में जुएं खोज रहा था। इसमें मुझे कुछ भी अजीब नहीं ', क्योंकि झोंपड़ियों की भंगिनें इसी तरह एक-दूसरी के सिर में जुएं खोजा ी थीं।

गोरिल्लों को देख मैं कुछ घबराया। कारण यह है कि वे आदमी जैसे भी थे और आदमी से भिन्न भी थे। वे अपने भयंकर धड़ और कमानीदार टांगों के साथ कितने अद्भुत जान पड़ते थे और एक पिंजड़े से दूसरे पिंजड़े में चक्कर काट रहे थे। फिर वे पंजे फैलाकर और लाल-लाल भयंकर आंखों से यों झांकते थे जैसे अभी आक्रमण कर देंगे।

"क्या पशु भी वही भाषा बोलते हैं जो हम बोलते हैं ?" मैंने पिता से पूछा।

"नहीं, उन्हें बोलना नहीं आता," पिता ने उत्तर दिया, "सिर्फ तुम्हारे जैसे तोते ही 'कुतर, कुतर' बोल सकते हैं।"

"तो क्या तोते हमारी तरह बोलते हैं ?"

"हां, लेकिन वे जो कुछ कहते हैं उसे समझते नहीं।"

उनके इस जवाब से मैं बड़ा हैरान था और मैंने अपने निरीह मन में सोचा के दुनिया की प्रत्येक वस्तु किसी न किसी रहस्य में लिपटी हुई है और जिसे मैं जानता-समझता नहीं, वह अवश्य मुझपर प्रकट होगा। जो उत्तर नहीं मिलते

थे, उन्हें पाने के लिए उत्सुक मैं सोचता, अनुमान लगाता और जिन बातों को मैं नहीं समझता था उनके बारे में कल्पना करके सपनों के बादल बनाता रहा, जो मेरे सिर पर विभिन्न प्रकार की शक्लों में मंडरा रहे थे।

मैंने एक लम्बी गर्दनवाला जेबरा देखा और मुझे अपनी आंखों पर विश्वास नहीं आ रहा था।

एक कंगारू का जोड़ा था जिनके पेट पर की थैलियों में उनके बच्चे आराम से बैठे थे और बड़े अच्छे लग रहे थे।

रीछ मेरे जाने-बूझे पुराने मित्र थे क्योंकि मैं उन्हें मदारी के पास देख चुका था।

खरगोश और उसके बच्चों को मैं सहला सकता था।

नन्ही चिड़ियां जंगले में बन्द अपने बच्चों को चुग्गा दे रही थीं। वे जिस विचित्र ढंग से अपने मुंह की खुराक बच्चों के मुंह में डालती थीं, उसने मेरी आत्मा को एक अनूठी कोमलता से ओतप्रोत कर दिया। घने पेड़ों में से छन-छनकर आ रहे प्रकाश में भूरे रंग की चिड़ियों को जंगले के एक कोने से दूसरे कोने में फुर-फुर आते देखकर मैं आश्चर्य से झूमने लगा।

जब मैं चलते रहने और देखने से थक गया तो मां ने पिता से कहा कि वे मुझे फिर उठा लें। मां मुझे उस क्षण, जब उसने अपना पीला मुख मेरे सिर पर झुकाकर पूछा कि क्या मैं गोदी चढ़ना पसन्द करूंगा, कितनी सुन्दर जान पड़ी!

पर मैं नहीं माना और बराबर चलता रहा। जंगलों में बंद पशु, उनपर झुकी हुई बड़ की पुरानी टहनियां, जंगली फाख्ताओं की मधुर ध्वनि, तोतों की टें-टें और कोयल का सतत संगीत—सब कितना भला लग रहा था! उन दिनों मेरी आंखों में कभी न बुझनेवाली आग की ज्योति थी और मेरे नन्हे अस्तित्व में ज्वालामुखी पर्वत की शक्ति थी।

जब देखा कि चिड़ियाघर के लम्बे रास्ते पर चलते-चलते मैं वाकई थक गया हूं तो मेरे इनकार की परवाह न करते हुए पिता ने मुझे गोद में उठा लिया। मेरी आत्मा की घबराहट समझकर, जो उनकी चुप्पी के कारण थी और मेरे एक प्रश्न से अचकचाकर जो मैं बार-बार पूछ रहा था कि क्या मैं यहां 'बिरादरी' के साथ रहने आ सकूंगा, पिता ने मुझे एक कहानी सुनानी शुरू की।

"सुनो!" वे बोले, *"एक दिन जंगल के पशु-पक्षी एक मैदान में इकट्ठे*

हुए। जंगल के राजा शेर ने उन्हें बताया कि एक आदमी आकर उनमें रहने लगा है और वह निश्चित रूप से उन्हें हड़प जाएगा, अगर वे पहले उसे नहीं हड़प लेंगे।"

"वह उन्हें क्यों हड़प जाएगा ?" मैंने 'हड़प' शब्द से चौंककर पूछा।

"क्योंकि आदमी उन्हें बन्दूक से मार सकता और हड़प सकता है, जैसे तुम चोटी हड़प लेते हो।"

मैं 'हड़प' की आवाज़ से भयभीत हो गया।

लेकिन मैंने पूछा, "फिर क्या हुआ ?"

"जंगल के राजा की बात आदमी सुन रहा था।" पिता ने बात आगे चलाई, "बस, उसने अपनी बंदूक ली और सब पशु मार डाले। इसलिए अगर तुम्हें यहां आकर रहना है तो तुम्हें अपने साथ बन्दूक लानी होगी, वरना पशु तुम्हें हड़प जाएंगे।"

मैं सहसा रोने लगा।

"ऐसी कहानियां सुनाकर इसे डराओ मत।" मां ने कहा।

मैंने अपने दायें हाथ का अंगूठा सहजभाव से मुंह में डाल लिया और पिता की चाल के हमवार झकोलों ने मुझे थपथपाया। मुझे ऐसा लगा जैसे मैं बाग में नहीं शाम के समय किसी बड़े जंगल की कन्दराओं में हूं। स्त्रियों और पुरुषों के गिरोह एक विचित्र रेशमी धुंध में लिपटे हुए मेरे दोनों ओर आ-जा रहे थे। थोड़ी ही देर में सब कुछ सुनाई देना बंद हो गया, सिर्फ कभी-कभी पशुओं का दहाड़ना, गुर्राना और तोतों के चहकने का स्वर सुनाई देता था। तब शाम का धुंधलका मुझपर छा गया और उसने मेरी आंखें बंद कर दीं। मुझे लगा जैसे मैं ऊपर ही ऊपर उठता चला जा रहा हूं, जैसे पिता की लोरी ने मेरे भीतर जो शोला जगा दिया था, उसके विचित्र कर्कश संगीत ने मुझे आकाश से परे किसी शहर में पहुंचा दिया हो।...

१५

मुझे ठीक मालूम नहीं कि हमने मियां मीर कब छोड़ा। लेकिन इतना याद है कि जब हमारी पलटन चलने की तैयारी कर रही थी और उसका सामान

स्थानीय खच्चर कोर की लोहे की गाड़ियों में लादकर लाहौर छावनी के स्टेशन पर पहुंचाया जा रहा था, तो मैं घण्टों सड़क के किनारे खड़ा बराबर चलते रहनेवाली गाड़ियों को देखा करता था। अपने-आप ही एक अजीब ढंग से कुछ घटनाएं मानव-मस्तिष्क पर गहरी अंकित हो जाती हैं और बाद में कल्पना द्वारा विशेष भ्रान्तियों का रूप धारण कर लेती हैं। इसी प्रकार वह सड़क जो मेरी पहली स्पष्ट स्मृति और मियां मीर का अंतिम प्रभाव था, बाद में मेरे लिए एक स्थायी वास्तविकता बन गई। आखें बन्द करने की देर थी कि मैं उसका वह एक-एक कण देख सकता था जो गाड़ियों, ऊंटों, बकरियों, घोड़ों और इंसानों के पीछे उसपर उड़ा करता था। उसके मध्य की तपती धरती और किनारों पर की ठंडी धूल, जिसपर शीशम के पेड संगीतमय ढंग से सरसराते थे, महसूस करता था और उसपर क्षितिज से क्षितिज तक खा-दबा जिंदगी का अवलोकन करता था। इसके अतिरिक्त मेरे बाल-मस्तिष्क पर वे कथाएं और कहानियां तैरती रहती थीं, जो उसपर से गुजरनेवाले लोगों के बारे में मां ने मुझे सुनाई थीं।

एक बार सूर्य देवता इस मार्ग से धरती पर आया था। जब उसने धरती सुखा दी तो इन्द्र देवता ने जो मेंह बरसाया, तब नदियों के विभिन्न देवता इसके किनारों से उठे'''और तब पवन देवता ने चलना शुरू किया। फिर प्राचीन काल के राजा अपने रथों में सवार इधर से गुजरे। वे कौरव, पांडव, राम, कृष्ण, सिकंदर, राजा रसालू, विक्रमादित्य और अकबर बादशाह आदि थे। मुगलों की फौजें और लश्कर इसपर से गुजरे। इसके बाद काने सिख राजा रणजीतसिंह और उनका जनरल हरिसिंह नलवा आया। और इन सबके बाद में फिरंगी फौजें इसपर से गुजरीं। हमारी डोगरा पलटन भी सारजटों और हवलदारों की 'लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट' की ध्वनि पर चलती थी।'''

जब मुझे अपने घर के आंगन में सोने के लिए लिटा दिया जाता था तो इन पौराणिक पुरुषों के अस्पष्ट चित्र उन जिन्नों और भूतों के सदृश मेरी आखों में उभरते थे, जो मेरे सिर पर मंडरानेवाले बादलों के क्षण-क्षण रूप बदलने से बनते थे। कभी मैं स्थिर दृष्टि से ताकते हुए सोचता और इनकी एक सशक्त और निश्चल सेना से भयभीत हो जाता, जिसके सिर गाजर की गांठों अथवा लौकी जैसे होते। और इस सड़क पर से जो इंसान गुजरे थे, पांच वर्ष तक देखे गए दृश्यों और सुनी हुई ध्वनियों से उनके रूप बनते थे। इसके अतिरिक्त उनके

बारे में कल्पना का कोई मापदण्ड नहीं था।

ये सब बातें थोड़ी-थोड़ी उस समय मेरे मस्तिष्क में आतीं, जब मैं बड़ों की बातचीत सुनता अथवा कुएंवाले झुरमुट में खेला करता। तब मैं मां द्वारा गाई गई लोरी की धुन पर राज्य बनाता और ढाता। सड़क पर आने-जानेवालों का चाहे कितना ही शोर होता, मां पुकारती रहती, 'कृष्ण, तुम कहां हो, इधर आओ!' माली रामदीन चिल्लाता कि बेलों का सत्यानाश मत करो और पिता अपनी अंगुलियां ज़ोर-ज़ोर से चटखाते, पर मैं अपना अशब्द गीत गाने में मस्त रहता। उसमें कुछ भी बाधा न बन पाता। लगता कि सड़क का बड़ा जिन्न मुझमें आ घुसा है। और उन सब भूत-प्रेतों ने कब्जा जमा लिया है, जो कथा-कहानियों में आते थे और जिनका उल्लेख पारिवारिक बातचीत में हुआ करता था।...

और इन विचारों का प्रभाव मुझपर इतना गहरा था कि मैं रात को स्वप्न देखता। मृत भाई पृथ्वी का चित्र विशेष रूप से उभरता और मैं राक्षसों की लड़ाइयां देखते-देखते पसीने में सराबोर जाग उठता और नींद में बड़बड़ाता।

नौशहरा छावनी जाने की तैयारियां ज़ोरों पर थीं और सड़क जीवन से ओतप्रोत थी। धूल उड़ती। फौजी बूट और देसी जूते उसे रौंदते। आदर-सम्मान तो क्या होना था, सभी उसकी उपेक्षा करते। सिर्फ एक मैं था, जो श्रद्धाभाव से उसकी चहल-पहल देखता, जैसे सड़क मेरे भीतर हो और इर्द-गिर्द की दुनिया नीहारिका के सदृश दूर—बहुत दूर, मीलों तक फैली हुई हो।... मैं आश्चर्यचकित अंगुली मुंह में डाले खड़ा रहता और आंखें उस कौतूहल से पूरी खुली होतीं जो बाद में अच्छी वस्तुओं और सौन्दर्य के लिए भूख और तृष्णा में बदल गया।

निस्संदेह उन दिनों मैं राजा था, अपनी अनूठी कल्पना और विचित्र सपनों द्वारा निर्मित राज्य का एकमात्र शासक।

दूसरा भाग

दूसरा भाग

नदी

"....नदियों के सदृश जो पुरानी सीमाएं तोड़ देती हैं; बस्तियों, फसलों और मनुष्यों को अपनी बाढ़ में बहा ले जाती हैं; सिंचाई के लिए नई नहरें बनाती हैं और अब तक बंजर पड़े खेतों को हरे-भरे कर देती हैं और नई उर्वर मिट्टी फैलाकर वीरान जमीनों को समृद्ध बनाती हैं। ऐसे चमत्कारों की कोई निन्दा या प्रशंसा नहीं करता, सिर्फ उनके परिणामों को देखता और कारणों को समझने का प्रयत्न करता है।...."

—*अज्ञात*

गर्मी की दोपहर ढल रही थी। नौशहरा छावनी में हमारा जो क्वार्टर था, मां उसके बरामदे में बैठी चर्खा कात रही थी और मैं उसके पास लेटा हुआ था।

"मां, तुमने मुझे कहां से पाया? मैं कहां से आया हूं?" मैंने पूछा।

मां ने विनोदभाव से मेरी ओर देखा। वह मुस्कराई और अपने होंठ बजाकर अर्धहास्य और अर्धगम्भीरता से परियों की कहानी के अन्दाज में व्याख्या करनी शुरू की :

"तुम एक रहस्य की भांति मेरी आत्मा में निहित थे। तुम मेरे शरीर में थे, जैसे सीपी में मोती। तुम मेरी आंतरिक आकांक्षा थे। मैंने तुम्हें पाने का प्रयत्न किया। लेकिन मैंने तुम्हें बहुतेरा खोजा और तुम मुझे कहीं दिखाई नहीं दिए। इसलिए मैंने तुम्हें भगवान से मांगा। और भगवान बड़ा दयालु है। मेरी प्रार्थना पर उसने तुम्हें बनाया और हमारे पेशावरवाले घर के छोटे घिरौंचे में डाल गया।...."

"मां, भगवान को किसने बनाया है?" मैंने पूछा।

"मुझे मालूम नहीं, बेटा! लेकिन तुम्हारी दाई को मालूम है।" मां ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। पर वह कुछ विचलित हो उठी थी। फिर दूसरे ही क्षण भावातिरेक में डूबकर बोली, "तुम्हारी धर्ममाता, परी। भगवान ने उसे हमारे घर भेजा और उसने तुम्हें घिरौंचे से निकालकर मेरी गोद में लेटा दिया।"

"मेरी धर्ममाता परी! मेरी धर्ममाता परी!" मैं बालसुलभ गीत की लय में चिल्लाया, "मां, मेरी धर्ममाता परी कहां है?"

"बेटा, वह अपने घर वापस चली गई," मां ने उत्तर दिया, "वह समुद्र पार विलायत लौट गई।"

"मेरी धर्ममाता परी! मेरी धर्ममाता परी!" मैं उसके तकले से खेलता हुआ लगातार गाने लगा लेकिन थोड़ी ही देर में फिर जिज्ञासा जागी और मैंने चांद को पाने के लिए रोने जैसा मुंह बनाकर कहा, "मां, मैं अपनी धर्ममाता को देखना चाहता हूं। मैं उससे मिलना चाहता हूं।"

"अच्छा, अच्छा, एक दिन जब तुम समुद्र पार विलायत जाओगे, तब तुम उससे मिलोगे।" मां ने मुझे बहलाने के लिए कहा, "अब तुम सो जाओ; और अगर तुम्हें नींद नहीं आती तो जाओ, खेलो।"

मैं उठा और सोने का अभिनय करते हुए मां की गोद में बैठ गया। जब वह भोजन बनाती, खाती अथवा कात रही होती तो मुझे उसकी गोद में बैठना पसन्द था। और जब वह घर में दूसरे काम किया करती तो मैं उसकी साड़ी पकड़े साथ-साथ चलता। मैं उसके स्तन चूसना और उसे अपने साथ चिपटा लेना चाहता था। लेकिन पहले ही की तरह वह मेरे चिपटने से चिढ़ती थी। मैं जानता था कि यह छोटे भाई शिव के कारण था, जैसे पहले पृथ्वी के कारण होता था। एक कारण यह भी था कि मैं अब बड़ा हो गया था, पांच साल से ऊपर था। इसलिए उसने मुझे अपने से दूर रखने के लिए फिर अपनी छातियों पर लाल मिर्च और सिरके का लेप करना शुरू किया। यह उपाय सफल सिद्ध हुआ। लेकिन गोद से परे रखने का तो कोई उपाय नहीं था सिवाय इसके कि वह नाराज़ हो। कई बार वह नाराज़ भी हो जाती, पर अक्सर मुझपर दयालु रहती। अब जबकि उसने मुझे खेलने या सोने के लिए कहा था, मैं जानता था कि उसकी वास्तविक इच्छा यह नहीं कि मैं जाकर खेलूं, बल्कि वह चाहती थी

कि मैं उसकी गोद में पड़कर सो जाऊं क्योंकि उसे मेरी बातें पसन्द थीं।"'मैं लाड़ला बच्चा था। मेरी आंखों में नींद नहीं थी।

"बेटा, सो जाओ, सो जाओ।" उसने कहा और मुझे अपने साथ चिपटाकर लोरी गाने लगी।

कोमल-मधुर संगीत पहले धूप के सुगन्धित धुएं की तरह जहां-तहां से टूटा हुआ धीरे-धीरे उड़ने लगा, फिर लगा जैसे उससे सारा कमरा भर गया हो, दम घुट रहा हो, और वह खुले दरवाजे से बरामदे में और कच्चे घर के आंगन में जाने लगा हो।

मैं एकटक मां की ओर देखने लगा। मैं नहीं जानता कि आया वह मुझे सचमुच सुनाना चाहती थी या मेरे 'क्यों' और 'क्या' की बौछार से ऊब गई थी। उसके स्वर में कटुता और मृदुता का जो सम्मिश्रण था उससे उसके चिड़चिड़ेपन का ठीक-ठीक अनुमान लगाना सम्भव नहीं था। मैं आंखें फैलाकर और गाल फुलाकर बराबर उसकी ओर देख रहा था।

उसके धूमिल मुख पर एक विचित्र ज्योति थी, आधी चपल और आधी गंभीर, जो उसकी तिकोनी छवि को अत्यन्त आकर्षक बना देती थी। उसकी मुस्कान बड़ी कुटिल थी, जो निचले होंठ के बजाय सीधी नाक पर होती थी, जो गालों के बजाय दृढ़ ठोड़ी पर नाचा करती थी और जिससे मैं अपने प्रति उसके स्नेह का अन्दाजा लगाया करता था। जब वह क्षुब्ध होती तो मुझे उसका सावला-नुकीला चेहरा अच्छा न लगता; उसके बजाय देवकी का गोरा अंडाकार चेहरा दृष्टि में उभर आता। पर जब वह आनन्द की मुद्रा में होती तो मेरी मां एक स्निग्धता थी जो मुझे पसन्द थी। फिर उसके अंगों में एक सुगन्ध बसी थी, जो नन्हे शिव जैसी थी और उसके व्यवहार में एक उदार स्वाभाविकता थी, जिसके कारण मैं अपने-आपको हमेशा उसके इतना समीप पाता जितना किसी और के नहीं।

जब उसका ऊंचा स्वर धीरे-धीरे हलका पड़ता तो लगता कि ढलती दोपहर की धूप ने उसे थका दिया है। अपना दायां हाथ फर्श की दरी पर रखे-रखे और बायें में पूनी थामे वह ऊंघ जाती।

मैं चाहता था कि अपने हाथ से उसकी आंखें खोल दूं। जब दिन में सोती थी तब भी मेरे मन में यही इच्छा होती थी, क्योंकि
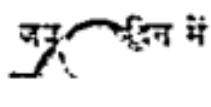
महसूस करता और चाहता था कि वह मेरे साथ खेले; पर आंखें बंद होने के कारण मैं उससे डर जाता था। मैं भयभीत-सा धीरे-धीरे उठता और कमरे से बाहर भाग जाता ताकि उसके भजन का भगवान अथवा उसके सिर का भूत मुझे पकड़ न ले और मेरा गला न दबा दे।

मैं बरामदे के उस कोने में चला जाता, जहां ईंधन रखा रहता था। मैं वह बांस उठा लेता जो पिता की मसहरी में इस्तेमाल होता था और उसे घोड़ा बनाकर दौड़ने लगता।

"कृष्ण !" सहसा मां की आवाज़ सुनाई देती।

मैंने अपने लकड़ी के घोड़े को बरामदे में दौड़ाना शुरू ही किया था और यों लग रहा था कि जैसे मैं उस सचमुच के घोड़े की सवारी कर रहा हूं, जिस-पर ४४वें घुड़दस्ते का अर्दली पिता को डाक देने आता था। मैंने उत्तर नहीं दिया।

"कृष्ण !" मां फिर चिल्लाई। उसके स्वर में चिन्ता और घबराहट थी क्योंकि जब उसकी आंख खुली तो मुझे वहां न देख उसे ऐसा लगा जैसे मैं हवा में उड़ गया हूं।

"मैं यहां हूं।" मैंने तीखे स्वर में कहा और उसकी ओर चला।

"अच्छा, अच्छा !" वह बोली, "मुझे पता नहीं था कि तुम कहां हो। जाओ, खेलो। धूप में मत जाना और नन्हे को न जगाना।..."

लेकिन अब तक मैं अपने कोतल घोड़े पर सवार आ पहुंचा था और जिस [illegible] दरी पर वह बैठी थी, उसपर अपने नंगे मैले पैरों के साथ चढ़ने ही वाला था।

"जाओ बच्चे, बरामदे में खेलो," उसने कहा, "और मुझे तुम्हारे पिता के लौटने तक कुछ देर चर्खा कातने दो।...जाओ, देखो कि तुम्हारे भाई और भाभी आ रहे हैं। उन्हें बाज़ार गए बहुत देर हो गई।"

लेकिन अब मैं घोड़े की सवारी का अधिक उत्सुक नहीं था बल्कि यह देखना चाहता था कि जब लकड़ी का पहिया घूमता है तो तकला चलने से मां के हाथ की पूनी में से धागा कैसे निकलता है।

"जाओ बेटा, खेलो।" मां ने तनिक चिढ़कर कहा।

अब मैं अपने घोड़े को एक चक्कर में इतनी तेजी से

कोड़े से चर्खे का तार टूट गया और मैं अपने पीछे मृत्यु और विनाश के चिह्न छोड़ता हुआ विजय-भाव से आगे बढा। मां मुझे कोस रही थी और टूटे हुए तार को पूनी के साथ अपने थूक से जोड़ रही थी।...

लेकिन मैं अपने रणक्षेत्र--बरामदे--में पहुंचा ही था कि ड्योढ़ी में, जो आंगन से परे थी, कदमों की चाप सुनाई दी। मैं अपना लकड़ी का घोड़ा फेंक-फांककर 'भापाजी ! भापाजी !' कहते हुए दौडा, क्योंकि मैं पहचान गया था कि हरीश और गणेश आए हैं।

लेकिन वे मुझसे मिलने के इतने उत्सुक नहीं थे जितना कि मैं था। मैं दौड़कर हरीश भाई की टांगों से लिपट गया; पर उसने चिढ़कर और नाक सिकोड़कर जो नीरस, शुष्क और अस्पष्ट शब्द कहे, उनसे मैं समझ गया कि उसके मन मे मेरे प्रति कुछ भी उत्साह नहीं है। पतले-दुबले और आंतरिक क्षोभ से नीले पड़े हुए हरीश के मुख की सिकुड़न दूर नहीं हुई। लेकिन उसके आंगन में आते ही मैं उसकी टांगो से लिपट गया था और उन्हें इतना कसकर पकड़ लिया था कि उसके लिए आगे बढ़ना सम्भव नहीं था।

"नन्हे, चलो, छोड़ो।" उसने क्रुद्ध भाव से कहा और जीभ से चटकारी लगाकर मेरे अनुराग की अवहेलना की, "नन्हे, आंगन तप रहा है और तुम्हारे पांव नंगे हैं !"

"भापा ! पहले वह मुझे दो जो तुम मेरे लिए लाए हो।" मैंने आग्रह किया। उसके क्रोध और पांव तले तपती हुई धरती की किसे परवाह थी, क्योंकि सवाल मिठाई का था जो वह मेरे लिए लाया होगा।

"आओ नन्हे, आओ।" मां ने कहा। वह झगड़े की सम्भावना से बरामदे में आ गई थी।

पर मैं नहीं माना।

यह सोचकर कि सिर्फ समझाने के बजाय लालच से काम बनेगा, उसने कहा, "आओ बेटा, आओ। भाई तुम्हारे लिए खिलौने और अच्छी-अच्छी मिठाइयां लाए हैं। वे तुम्हे तभी देंगे जब तुम उन्हें छोड़ोगे।"

इस आश्वासन पर मैंने हरीश को छोड़ दिया।

महसूस करता और चाहता था कि वह मेरे साथ खेले; पर आंखें बंद होने के कारण मैं उससे डर जाता था। मैं भयभीत-सा धीरे-धीरे उठता और कमरे से बाहर भाग जाता ताकि उसके भजन का भगवान अथवा उसके सिर का भूत मुझे पकड़ न ले और मेरा गला न दबा दे।

मैं बरामदे के उस कोने में चला जाता, जहां ईंधन रखा रहता था। मैं वह बांस उठा लेता जो पिता की मसहरी में इस्तेमाल होता था और उसे घोड़ा बनाकर दौड़ने लगता।

"कृष्ण !" सहसा मां की आवाज़ सुनाई देती।

मैंने अपने लकड़ी के घोड़े को बरामदे में दौड़ाना शुरू ही किया था और यों लग रहा था कि जैसे मैं उस सचमुच के घोड़े की सवारी कर रहा हूं, जिसपर ४४वें घुड़दस्ते का अर्दली पिता को डाक देने आता था। मैंने उत्तर नहीं दिया।

"कृष्ण !" मां फिर चिल्लाई। उसके स्वर में चिन्ता और घबराहट थी क्योंकि जब उसकी आंख खुली तो मुझे वहां न देख उसे ऐसा लगा जैसे मैं हवा गया हूं।

यहां हूं।" मैंने तीखे स्वर में कहा और उसकी ओर चला।

"अच्छा, अच्छा !" वह बोली, "मुझे पता नहीं था कि तुम कहां हो। जाओ, ो। धूप में मत जाना और नन्हे को न जगाना।..."

लेकिन अब तक मैं अपने कोतल घोड़े पर सवार आ पहुंचा था और जिस नीली फौजी दरी पर वह बैठी थी, उसपर अपने नंगे मैले पैरों के साथ चढ़ने ही वाला था।

"जाओ बच्चे, बरामदे में खेलो," उसने कहा, "और मुझे तुम्हारे पिता के लौटने तक कुछ देर चर्खा कातने दो।...जाओ, देखो कि तुम्हारे भाई और भाभी आ रहे हैं। उन्हें बाज़ार गए बहुत देर हो गई।"

लेकिन अब मैं घोड़े की सवारी का अधिक उत्सुक नहीं था बल्कि यह देखना चाहता था कि जब लकड़ी का पहिया घूमता है तो तकला चलने से मां के हाथ की पूनी में से धागा कैसे निकलता है।

"जाओ बेटा, खेलो।" मां ने तनिक चिढ़कर कहा।

अब मैं अपने घोड़े को एक चक्कर में इतनी तेज़ी से घुमा रहा था कि मेरे

कोड़े से धर्म का तार टूट गया और मैं अपने पीछे मृत्यु और विनाश के चिह्न छोड़ता हुआ विजय-भाव से आगे बढ़ा। मां मुझे कोस रही थी और टूटे हुए तार को पूनी के साथ अपने थूक से जोड़ रही थी।...

लेकिन मैं अपने रणक्षेत्र—बरामदे—में पहुंचा ही था कि ड्योढ़ी में, जो आंगन से परे थी, कदमों की चाप सुनाई दी। मैं अपना लकड़ी का घोड़ा फेंक-फांक-कर 'भाभाजी ! भाभाजी !' कहते हुए दौड़ा, क्योंकि मैं पहचान गया था कि हरीश और गणेश आए हैं।

लेकिन वे मुझसे मिलने के इतने उत्सुक नहीं थे जितना कि मैं था। मैं दौड़कर हरीश भाई की टांगों से लिपट गया; पर उसने चिढ़कर और नाक सिकोड़कर जो नीरस, शुष्क और अस्पष्ट शब्द कहे, उनसे मैं समझ गया कि उसके मन में मेरे प्रति कुछ भी उत्साह नहीं है। पतले-दुबले और आतरिक क्षोभ से पीले पड़े हुए हरीश के मुख की सिकुड़न दूर नहीं हुई। लेकिन उसके आंगन में आते ही मैं उसकी टांगों से लिपट गया था और उन्हें इतना कसकर पकड़ लिया था कि उसके लिए आगे बढ़ना सम्भव नहीं था।

"नन्हे, चलो, छोड़ो।" उसने क्रुद्ध भाव से कहा और जीभ से चटखारी लगा-कर मेरे अनुराग की अवहेलना की, "नन्हे, आंगन तप रहा है और तुम्हारे पांव नंगे हैं !"

"भापा ! पहले वह मुझे दो जो तुम मेरे लिए लाए हो।" मैंने आग्रह किया। उसके क्रोध और पांव तले तपती हुई धरती की किसे परवाह थी, क्योंकि ख्याल मिठाई का था जो वह मेरे लिए लाया होगा।

"आओ नन्हे, आओ।" मां ने कहा। वह झगड़े की सम्भावना से बरामदे में आ गई थी।

पर मैं नहीं माना।

यह सोचकर कि सिर्फ समझाने के बजाय लालच से [illegible]गा, उसने क[illegible]
"आओ बेटा, आओ। भाई तुम्हारे लिए खिलौने और [illegible]ी मिठाइ[illegible] लाए हैं। ये तुम्हें तभी देंगे जब तुम उन्हें छोड़ोगे।"

इस आश्वासन पर मैंने हरीश को छोड़ दिया।

महसूस करता और चाहता था कि वह मेरे साथ खेले; पर आंखें बंद होने के कारण मैं उससे डर जाता था। मैं भयभीत-सा धीरे-धीरे उठता और कमरे से बाहर भाग जाता ताकि उसके भजन का भगवान अथवा उसके सिर का भूत मुझे पकड़ न ले और मेरा गला न दबा दे।

मैं बरामदे के उस कोने में चला जाता, जहां ईंधन रखा रहता था। मैं वा बांस उठा लेता जो पिता की मसहरी में इस्तेमाल होता था और उसे घोड़ा बनाकर दौड़ने लगता।

"कृष्ण!" सहसा मां की आवाज़ सुनाई देती।

मैंने अपने लकड़ी के घोड़े को बरामदे में दौड़ाना शुरू ही किया था और यों लग रहा था कि जैसे मैं उस सचमुच के घोड़े की सवारी कर रहा हूं, जिस-पर ४४वें घुड़दस्ते का अर्दली पिता को डाक देने आता था। मैंने उत्तर नहीं दिया।

"कृष्ण!" मां फिर चिल्लाई। उसके स्वर में चिन्ता और घबराहट थी क्योंकि जब उसकी आंख खुली तो मुझे वहां न देख उसे ऐसा लगा जैसे मैं हवा में उड़ गया हूं।

"मैं यहां हूं।" मैंने तीखे स्वर में कहा और उसकी ओर चला।

"अच्छा, अच्छा!" वह बोली, "मुझे पता नहीं था कि तुम कहां हो। जाओ, खेलो। धूप में मत जाना और नन्हे को न जगाना।..."

लेकिन अब तक मैं अपने कोतल घोड़े पर सवार आ पहुंचा था और जिस नीली फौजी दरी पर वह बैठी थी, उसपर अपने नंगे मैले पैरों के साथ चढ़ने ही वाला था।

"जाओ बच्चे, बरामदे में खेलो," उसने कहा, "और मुझे तुम्हारे पिता के लौटने तक कुछ देर चर्खा कातने दो।...जाओ, देखो कि तुम्हारे भाई और भाभी आ रहे हैं। उन्हें बाज़ार गए बहुत देर हो गई।"

लेकिन अब मैं घोड़े की सवारी का अधिक उत्सुक नहीं था बल्कि यह देखना चाहता था कि जब लकड़ी का पहिया घूमता है तो तकला चलने से मां के हाथ की पूनी में से धागा कैसे निकलता है।

"जाओ बेटा, खेलो।" मां ने तनिक चिढ़कर कहा।

अब मैं अपने घोड़े को एक चक्कर में इतनी तेज़ी से घुमा रहा था कि मेरे

कोड़े से पर्स का तार टूट गया और मैं अपने पीछे मृत्यु और विनाश के चिह्न छोड़ता हुआ विजय-भाव से आगे बढ़ा। मा मुझे कोस रही थी और टूटे हुए तार को पूनी के साथ अपने थूक से जोड़ रही थी।...

लेकिन मैं अपने रणक्षेत्र—बरामदे—में पहुंचा ही था कि ड्योढ़ी मे, जो आंगन से परे थी, कदमों की चाप सुनाई दी। मैं अपना लकड़ी का घोड़ा फेंक-फांक-कर 'भापाजी ! भापाजी !' कहते हुए दौड़ा, क्योंकि मैं पहचान गया था कि हरीश और गणेश आए हैं।

लेकिन वे मुझसे मिलने के इतने उत्सुक नही थे जितना कि मैं था। मैं दौड़कर हरीश भाई की टांगों से लिपट गया; पर उसने चिढ़कर और नाक सिकोड़कर जो नीरस, शुष्क और अस्पष्ट शब्द कहे, उनसे मैं समझ गया कि उसके मन मे मेरे प्रति कुछ भी उत्साह नहीं है। पतले-दुबले और आंतरिक क्षोभ से नीले पड़े हुए हरीश के मुख की सिकुड़न दूर नहीं हुई। लेकिन उसके आंगन मे आते ही मैं उसकी टांगो से लिपट गया था और उन्हें इतना कसकर पकड़ लिया था कि उसके लिए आगे बढ़ना सम्भव नही था।

"नन्हे, चलो, छोड़ो।" उसने क्रुद्ध भाव से कहा और जीभ से चटकारी लगा-कर मेरे अनुराग की अवहेलना की, "नन्हे, आंगन तप रहा है और तुम्हारे पांव नगे हैं !"

"भापा ! पहले वह मुझे दो जो तुम मेरे लिए लाए हो।" मैंने आग्रह किया। उसके क्रोध और पांव तले तपती हुई धरती की किसे परवाह थी, क्योंकि सवाल मिठाई का था जो वह मेरे लिए लाया होगा।

"आओ नन्हे, आओ।" मां ने कहा। वह झगड़े की सम्भावना से बरामदे में आ गई थी।

पर मैं नहीं माना।

यह सोचकर कि सिर्फ समझाने के बजाय लालच से काम बनेगा, उसने कहा, "आओ बेटा, आओ। भाई तुम्हारे लिए खिलौने और अच्छी-अच्छी मिठाइयां लाए हैं। वे तुम्हें तभी देंगे जब तुम उन्हें छोड़ोगे।"

इस आश्वासन पर मैंने हरीश को छोड़ दिया।

मां ने देख लिया था कि मेरे पैर नंगे हैं और उसने हरीश से कहा, "नन्हे (हम सब उसके लिए 'नन्हे' थे और बड़े होकर भी रहे), इसे उठाकर छाया में ले आओ। तुम्हारी बीवी और छोटा भाई कहां हैं ?"

उसने मुझे अपनी बगल में लटका लिया और मां के सवाल के जवाब में सिर झुकाकर और होंठ भींचकर कहा, "आ रहे हैं।"

हरीश ने जब बरामदे में आकर मुझे निवाड़ के पलंग पर बैठा दिया तो मां ने विक्षोभ कम करने के लिए कहा, "मैं तुम्हारी बलिहारी जाऊं। क्या तुम चलते-चलते थक गए हो ?"

चारपाई के सिरे पर बैठते हुए हरीश ने नकारात्मक भाव से सिर हिलाया। उसकी मनोदशा समझने की मेरी उम्र नहीं थी ; लेकिन बड़ा होकर जो कुछ सीखा, उसीसे अंदाज़ा लगा रहा हूं।

मां ने स्नेह और करुणा से उसकी ओर देखा। वह जानती थी कि उसका बेटा बचपन ही से शांत और गम्भीर है। लेकिन बचपन और लड़कपन की एक प्रकार का दब्बूपन था, जो पिता के गाली-गुफ्ते, डांट-फटकार और फटों की मार से पैदा हुआ था। यह नई चुप्पी, जिसने बेटे को नीला-पीला बना दिया था, मां को अजीब लग रही थी। इसका कारण निश्चित रूप से आंतरिक क्षोभ था जो बाहर नहीं आ रहा था। 'यह क्या हो सकता है ?' वह सोच रही थी। लेकिन जैसाकि मुझे बाद में मालूम हुआ, वह वास्तव में इसे जानती थी। हरीश कहता था कि इसके लिए मां ही दोषी है, क्योंकि मां ने पन्द्रह वर्ष की उम्र में उसकी शादी कर दी और फिर सम्बन्ध भी अच्छा नहीं ढूंढ़ा।

उसकी पत्नी मूढ़ और अपढ़ थी। पत्नी के कारण ही उसे मेडिकल स्कूल की पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी। अब उसका उत्तरदायित्व कन्धे पर लादे वह घर लौट आया था और नहीं जानता था कि क्या करे।

मां इसमें अपना दोष नहीं समझ पाती थी। सात-आठ साल की उम्र में सगाई का रिवाज था। दरअसल एक समृद्ध परिवार में, जैसाकि हमारा था, लड़कों के पैदा होते ही रिश्तों का न पहुंचना लज्जा की बात थी। चौदह या पन्द्रह वर्ष की उम्र में ब्याह हो जाते थे, क्योंकि इससे नई-नवेली दुल्हनें घर-गृहस्थी संभालना और बड़ों की सेवा करना सीखती थीं। और बेटे-पोते ही तो घर की शोभा हैं, उनके बिना संसार में नाम नहीं चलता। अलबत्ता उसने यह भी सुन

जो इसने इस वस्तु को वहीं भस्म कर देती। इसके बजाय वह अपना गुस्सा कोयला की ओर चूंकि वह जल का पात्र नहीं बदलती थी, इसलिए उसे राख में बदल सकती थी।

भाभी ढेर का ढेर बरामदे में आ बैठी। शिष्टाचार के नाते उसने घूंघट निकाल रखा था।

मां ने उनकी ओर घूरकर देखा।

सास और बहू आमने-सामने थीं।…

पर शीघ्र ही मामला कुछ कम हो गया। तभी घर के बाहर पिता का गम्भीर, समृद्ध और परिचित स्वर सुनाई पड़ा। वे किसी से ठठोली कर रहे थे।

"तुम्हारे पिता आए हैं।" मां ने कहा।

मैंने उसी समय बल्कि मां से भी पहले पिता की आवाज सुन ली थी। मैं अब भी उनका लाड़ला बेटा था। उनकी आवाज कान में पड़ते ही मैं मां की गोद से निकलकर भागा और आंगन और ड्योढ़ी पार करके बाहर चला गया।

पिता के मुख से वही निरर्थक लोरी फूट निकलती और सारे पड़ोस में गूंज उठती :

बुल्ली, बुल्ली,
बुल्ली, मेरा बेटा,
बुल्ली, मेरा पिल्ला,
बुल्ली, मेरा सूअर,
बुल्ली, बुल्ली,
बुल्ली, मेरा बेटा, बेटा, बेटा…

मुझे अपने उपनाम का यह संगीतमय उच्चारण अच्छा लगता। पिता अब भी मेरे आदर्श नायक थे। मैं दौड़कर उनकी टांगों से लिपट जाता।

दयालु और आनन्द-विभोर पिता मुझे गोद में उठा लेते और अपनी बड़ी-बड़ी मूंछों के नीचे से चूमते हुए मेरे उपनाम का गीत अलापने लगते। जब वे घर के आंगन में प्रवेश करते तो खुद एक बच्चा जान पड़ते—बड़ी उम्र का एक निरीह और खिलवाड़ी लड़का।

बड़े होकर मेरे मस्तिष्क में उनका जो चित्र बनता था, उसके अनुसार वे उस समय अधेड़ उम्र से कम थे और गदर भी दरमियाना था। वे एक खुली सूती

निठुरता उत्पन्न कर दी थी, जो उन्हें अनुभूति के प्रारम्भिक साधारण स्तर से काफी देर तक ऊंचा न उठने देती। मुझे विश्वास है कि उन्होंने हरीश की उदासी को भांप लिया था; पर इससे अधिक कुछ नहीं। वे बेटे की भावनाओं का विश्लेषण करने में असमर्थ थे, क्योंकि जिन परिस्थितियों में जीवन बीत रहा था, उनमें वे अपना ही विश्लेषण नहीं कर पाते थे। एक ओर उन्होंने अंग्रेजी दफ्तरी ज़िंदगी के आचार-व्यवहार को अपना लिया था और दूसरी ओर ठठेरा बिरादरी के रीति-रिवाज और उन मान्यताओं को अपनाए हुए थे, जो उन्हें विरासत में मिली थीं। दोनों का समन्वय नहीं कर पाए थे।

यह सच है कि वे शिक्षित समुदाय में रहते थे और नौशहरा आर्यसमाज के प्रधान थे। यह संस्था विधवा-विवाह, जातिवाद हटाने और ब्याह की उम्र बढ़ा देने आदि के पक्ष में थी। लेकिन उस समय के अधिकांश शिक्षित व्यक्ति अपनी जाति और बिरादरी के जाल में फंसे और अशिक्षित सम्बन्धियों की भावनाओं में जकड़े होने के कारण कहते एक बात थे और करते दूसरी थे। ऐसे व्यक्ति, जो प्रगतिशील संस्थाएं बनाते थे, वे चुहलबाज़ी के केन्द्र, उठने-बैठने के क्लब और कई बार तो जुए, शराबखोरी और दुराचार के अड्डे बनकर रह जाते थे, जहां पेशेवर लोग प्रतिष्ठित अवसरवादी अपने बड़े परिवारों और बड़ी ज़िम्मेदारियों से क्षणिक छुटकारा ढूंढ़ते थे। छावनी और आर्यसमाज के अधिकांश मित्र पिता को 'चाचा' कहकर पुकारते थे। इस शब्द से उनके चरित्र की विशिष्टता व्यक्त होती थी। इसलिए चाहे वे 'ट्रिब्यून', 'सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ेट' और आफीसर-मेस के पुस्तकालय से अंग्रेज़ी उपन्यास लाकर पढ़ते थे, लेकिन इसका उद्देश्य दफ्तर की उकताहट के बाद मनबहलावा-मात्र होता था। जब परिवार और जाति-बिरादरी की कोई बात होती, तो वे अपने आनन्दमय जीवन और धर्म के सारे सिद्धान्त ताक पर रख देते।

हरीश के बारे में उन्हें अगर कोई चिन्ता थी तो यह कि वह शादी के कारण मेडिकल स्कूल की पढ़ाई जारी नहीं रख सका और डिग्री से वंचित रह गया। जब से लार्ड मैकाले ने हिन्दुस्तान को 'लेज़ आफ एंशंट रोम' का उपहार दिया था और शिक्षा-प्रणाली का उद्देश्य अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे बाबू तैयार करना बन गया था, दूसरे लोगों की तरह मेरे पिता भी डिग्री ही को शिक्षा समझते थे। डिग्री हो तो किसी सरकारी विभाग में नौकरी पा जाना सहज था। पिता

हरीश से इसलिए नाराज थे कि उस पद और प्रतिष्ठा की सम्भावनाएं समाप्त हो गईं, जो तीन साल तक पढने और बाबू या डाक्टर बनने से प्राप्त होतीं। मगर वे इसके लिए उसे कुछ नही कह सकते थे। लडके के विवाह की अनुमति देकर उन्होंने जो भूल की थी, वह कही न कही उनके मस्तिष्क मे निहित थी। वे उसे सामने लाना नही चाहते थे। इसलिए उन्होने हरीश की उदासी को देखा-अनदेखा कर दिया।

"क्या लड़कों ने कुछ खाया ?" वे मा से मुखातिब हुए।

'कुछ' शब्द सुनते ही मेरा चेहरा खिल उठा।

"मुझे 'कुछ' दो, मुझे 'कुछ' दो।" मैंने कहा।

"नन्हे, ठहरो," मा ने परोसने के लिए उठते हुए कहा, "पहले अपने बड़े भाइयों को खा लेने दो। वे सारा दिन बाजार में व्यस्त रहे हैं।"

"क्या मैं व्यस्त नही रहा ?" मैंने मुह बनाकर कहा।

पिता हसे और मेरी ओर पलटकर बोले, "तुम, बदमाश ! इधर आओ। तुम काहे में व्यस्त थे ? क्या करते रहे ?"

"यह मुझसे अजीब-अजीब सवाल पूछता रहा।" मा मुस्कराई, "इसने मुझसे पूछा कि यह कहां से आया है ? हमने इसे कहा पाया ?"

"हो-हो...हा-हा-हा !" पिता खिलखिलाकर हसे और लपककर मुझे पकड़ लिया।

"तुम छटे हुए बदमाश हो, शैतान हो और एक छोटे-से गधे हो।"

"बड़ा ही खराब लड़का है। यह सवाल पूछकर सारा दिन मेरा सिर खाता रहा और मेरा चर्खा छेड़ता रहा।" मां ने शिकायत की और साथ ही मुझे क्रीम-केक, किशमिश और मूगफलियां खाने को दीं।

"हरीश की मां, तुमने क्या उत्तर दिया ?" पिता ने कहा।

"मैंने बताया कि एक मेम इसे लाई थी।" मां ने कहा, "पर यह बडा जिद्दी है। कहने लगा कि मैं उसे देखूगा; इसलिए मैंने इससे फिर कहा कि तुम उसे तब देखोगे जब समुद्र पार विलायत जाओगे।"

"यह एक सौभाग्यशाली लड़का है जिसकी अग्रेजी धाय है।" पिता ने सगर्व कहा, "तुम्हें याद है, इसके जन्म पर हमने कितनी [illegible]ावत दी थी। पेशावर के सब खान, सरदार और साहब आए थे। यह [illegible] [illegible]ारी बालक

है। यह विलायत जरूर जाएगा…"

"हां, यह मंगलकारी बालक है।" मां ने कहा, "तुम्हें याद है, आगा खां उस समय पेशावर में थे। जब मैं इसके जन्म से ग्यारहवें दिन उनके दर्शन को गई तो उन्होंने इसे गोद में लेकर चूमा और आशीर्वाद दिया। वे कहते थे कि यह मेरा सच्चा चेला होगा और किस्मतवाला बनेगा…"

आगा खां का नाम सुनते ही पिता ने नाक सिकोड़कर मुंह दूसरी तरफ फेर लिया। आर्यसमाजी बन जाने के कारण वे अब आगा खां को बिरादरी के अपने भाई-भतीजों की तरह धार्मिक गुरु नहीं समझते थे।

"मां, आप भी अजीब बातें करती हैं।" हरीश भी बड़बड़ाया। उसने दयानंद एंग्लो वैदिक स्कूल, लाहौर में शिक्षा पाई थी, जहां आर्यसमाज का प्रभाव सबसे अधिक था। "आगा खां के आशीर्वाद को महत्त्व देना बिलकुल बेकार है।" उसने त्योरी चढ़ा सिर झुका लिया।

अपने अहं को संतुष्ट करने के लिए विलायत जाने की बात माता-पिता बार-बार दोहराते थे, इसलिए वह असंगत जान पड़ती थी। लेकिन मेरे जैसे ल और महत्त्वाकांक्षी बालक के लिए वह भविष्यवाणी थी और जब लोग तो मैं इसे ध्वनित-प्रतिध्वनित होते सुन रहा था। यह एक ऐसा क्षण था एक शब्द, एक विचार, एक विचित्र भावना, चाहे वह कितनी ही तुच्छ हो, कल्पना को पंख लगा देती है और मनुष्य एक दूसरी ही दुनिया में उड़ने लगता है, जो हमारी इस दुनिया से भिन्न होती है। इस समय की निरीह और असंगत मनोभावना सारे जीवन को प्रभावित करती है। उस निर्णयकारी दिन की जहां मुझे और बातें याद हैं, वहां विलायत जाने की बात खास तौर पर याद है। यह मेरे बाद के जीवन-इतिहास की कुंजी है। जैसे-जैसे मैंने बचपन की दहलीज को पार करके स्कूल, कालेज और विस्तृत संसार में प्रवेश किया, मेरी आंखें पश्चिम पर लगी रहीं। यह देखना ऐसा नहीं था जैसे कोई शुष्क, नीरस और परिचित परिस्थिति से घबराकर 'स्वर्ग द्वीप' की ओर देखता है, बल्कि अपनी सरलता में मैं यूरोप का जो चित्र बनाता था, उसमें हैट, टाइयां, हाकियां, बल्ले, निकरें, पतलूनें, साइकलें, सिगरेटें, पुस्तकें, पिस्तौलें और ऐसी ही चीजें थीं जो पश्चिम का उपहार थीं और आधुनिक भारत में खूब पुजती थीं।

"क्या बहू ने खाना खा लिया ?" पिता ने मेरी मां से पूछा।

"मेरे कोई दस हाथ तो नहीं।" स्नेहमयी मां ने कर्कश सास का रूप धारण करते हुए कहा, "लड़के निपट लें तो वह भी खा लेगी।"

घर में निस्तब्धता छा गई। यह घृणा की निस्तब्धता थी, जो वहां होती है जहां गज भिड़े हुए हों।

पिता ने नन्हे शिव को छोड़ दिया जिसे वे पंगूरे में थपक-थपककर सुला रहे थे और नहाने चले। वे सुबह और दोपहर बाद दो बार शौच जाते थे और उनकी यह आदत थी कि पाखाने में कम से कम आध घंटा बैठते थे। वहां बैठे वे पिछले दिन का 'सिविल एंड मिलिटरी गज़ट' पढ़ते, जो डाक-चपरासी उनके लिए माफीगर-मेस से लाता था और शायद बवासीर के बावजूद वे शौच-क्रिया में आदिमयुगीन सहज आनंद भी महसूस करते थे।

जितनी देर वे पाखाने में रहे, घर में निस्तब्धता'''नितांत निस्तब्धता छाई रही। मुझे नींद आ रही थी, इसलिए मां मेरे पास आकर मुझे थपकने लगी। हरीश हमेशा की तरह मूक था। गणेश अपनी स्कूली प्राइमर पर झुका तत्परता दिखा रहा था, यद्यपि वह खाली-खाली और सहमी-सहमी दृष्टि से चोरी-छिपे इधर-उधर देख लेता था। मेरी भाभी द्रौपदी अपने आंचल में लिपटी हुई कोने में उस पंगूरे के पास बैठी थी, जिसपर शिव सो रहा था।

अब पिता बाहर आए।

"हरीश, अगर तुम थक नहीं गए हो, तो आओ, हाकी-मैच देखने चलो।" उन्होंने कहा, क्योंकि वे जानते थे कि हरीश को हाकी देखने का बड़ा शौक है। "चलो," उन्होंने बात जारी रखी, "यहां बड़ी गर्मी है और तुम्हें ताज़ा हवा चाहिए।"

"अच्छा जी!" हरीश बड़बड़ाया, अपनी जगह पर तनिक हिला, ऊपर देखा और घूमकर फिर चुप हो रहा।

पीतल के लोटे में पानी लेकर पिता अपने हाथ और अंगुलियां मिट्टी से मल-मलकर धोने और स्याही के धब्बे उतारने लगे, क्योंकि उन्हें प्राकृतिक साधनों पर विश्वास था, इसलिए साबुन बहुत ही कम इस्तेमाल करते थे। जब वे हाथ-मुंह धो चुके तो उन्हें तौलिये से पोंछा; फिर अपनी चांदी की मूठवाली मोटी छड़ी उठाई, हरीश को पुकारा और चल पड़े।

सामान्य स्थिति में मैं भी साथ चलने को कहता, मगर वे न ले

र जिद करता, परन्तु आज की नितांत निस्तब्धता ने मुझे भयभीत कर दिया र मैं हिला तक नहीं।

लेकिन गणेश धूर्त कुत्ते की भांति, जो पूंछ टांगों में दबा लेता है, उनके पीछे खिसक लिया।

जब पिता के हास-परिहास की ध्वनि-प्रतिध्वनि सुनाई देना बंद हो गई तो मां उठी। उसने मिठाई और फलों का एक थाल सजाया और द्रौपदी के आगे यों रख दिया जैसे वह मेहमान हो। तब मां हिल रहे नन्हे के पास गई और उसे दूध पिलाने लगी। मैं चारपाई पर उठ बैठा और 'सिविल एंड मिलिटरी गजेट' को ऐसी पूरी स्वतंत्रता के साथ, जिसे बाद में भी मैं अक्सर पाना चाहता रहा हूं, नीली पेंसिल से रंगने लगा।

थोड़ी देर बाद जब मां ने शिव को दूध पिलाकर और थपककर फिर सुला दिया तो उसने बहू की ओर झांककर देखा कि द्रौपदी स्थिर बैठी है और उसने छुआ तक नहीं।

"बहू, तुमने खाया क्यों नहीं ?" मां ने फटकारा और अवज्ञा भाव से कहा, "क्या हमारा यह भोजन तुम्हारी नाक तले नहीं आया ?"

द्रौपदी ने 'हां' या 'ना' कुछ भी नहीं कहा। इससे मां और भड़क उठी। वह जाकर थाल उठा लाई।

"इधर खुली हवा में आ जाओ, बहू। वहां कोने में बड़ी गर्मी है। तुम बीमार पड़ जाओगी।" इस बार मां ने स्वर में स्नेह भरकर कहा।

द्रौपदी न अपने स्थान से उठी और न उसने उत्तर दिया।

"बात क्या है ? तुम इतनी ढीठ क्यों हो ?" मां गुर्राई, "मुझे बताओ ; मैं तुम्हारी सास हूं और मैं तुम्हारी सहायता करूंगी।"

"कुछ नहीं," द्रौपदी बोली, "मुझे मेरा पति चाहिए, मैं कालेज की पढ़ाई पूरी होने तक इंतजार नहीं कर सकती। उन्हें कोई नौकरी ढूंढ़ दो और मुझे दे दो।"

मैंने मां से जले-कटे शब्द सुने, यद्यपि मैं उनका अर्थ नहीं जानता।

लेकिन बड़े होकर मैंने महसूस किया कि सारे हिन्दुस्तान में किसी भी नई-

नवेली दुल्हन ने भी मुंह फाड़कर ऐसी बात नहीं कही होगी। मां ने जीवन-भर उस दिन के स्वप्न देखे थे जब घर में एक जवान बहू आएगी और वह उसपर शासन करेगी। इसी कारण तो हरीश की शादी इतनी जल्दी की थी। उसने उन सब बातों का ध्यान रखा था जो ऐसे विवाह-सम्बन्ध से पहले की जाती हैं। उसने लड़की देखने के लिए नाइन भेजी थी और उसकी जन्मपत्री मंगवाकर पंडित से पढ़वा ली थी। उसे यह ख्याल नहीं आया कि नाइन थोड़े-से धन के लालच में एक कुरूपा कन्या को अत्यन्त रूपवती कह सकती है और पंडित जन्म-पत्री में मंगल ग्रहों का योग बताकर उसे दुनिया-भर की सौभाग्यवती बहू घोषित कर सकता है। मां का पुरोहित में विश्वास था और पुरोहित का पुराने रीति-रिवाज की पवित्रता में। ये रीति-रिवाज प्राचीन ऋषियों ने बनाए थे, उनमें एक महर्षि मनु भी थे। उनका माननेवाला गलत नहीं हो सकता।

लेकिन द्रौपदी न सिर्फ सतयुग बल्कि त्रेतायुग के भी बहुत बाद कलियुग में पैदा हुई थी, जब यहां फिरंगियों का राज था। वह पढ़ना-लिखना नहीं जानती थी। वह पाश्चात्य जीवन से भी परिचित नहीं थी। लेकिन वह अपने हाथ पीयर्स साबुन से धोती थी, बालों में बढ़िया सुगंधित तेल लगाती थी और अंग्रेज औरतों की भांति मांग एक ओर को निकालती थी। उसका पिता भगतराम, जो मेरे पिता की भांति ठठेरा जाति का था, पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट के नहरी विभाग में बाबू था। वह भी एक बाबू से ब्याह करना चाहती थी, ताकि जहां उसकी नौकरी हो वहीं जाकर रहे। नौकरी के बारे में वह सिर्फ इतना ही जानती थी कि आदमी का 'एंट्रेंस पास' होना काफी है। 'इंट्रेंस' का अर्थ उसे नहीं आता था। उसने सिंधी की वर्णमाला सीखी थी। आगा खां सम्प्रदाय की धार्मिक पुस्तक इसी भाषा में लिखी गई थी और उसके घरवाले आगा खा को अपना धार्मिक गुरु मानते थे। मगर उसे इस भाषा में भी लिखना-पढ़ना नहीं आता था। वह माता-पिता की लाड़ली थी और वे लड़कियों को पढ़ाना अच्छा नहीं समझते थे। वह एक भावुक, नीरस, हठी और मूढ़ लड़की थी। अंग्रेजों के प्रारम्भिक शासन-काल में बेचारे बाबुओं की लड़कियां ऐसी ही होती थी। मेरी मां अगर यह आशा करती थी कि यह लड़की उसके सपनों की आज्ञाकारी बहू बनकर संयुक्त परिवार की मर्यादा का पालन करेगी, तो यह उसका भ्रम-मात्र था।

सांवली सुकोमल स्त्री, आंतरिक द्वेष और घृणा के कारण [illegible]

हमेशा क्षीण, वृद्ध और अप्रतिभ जान पड़ती, माथे पर चिंता की त्यौरियां, आंखों की ज्योति वुझी-वुझी और ठुड्डी में दृढ़ता का स्थान शिथिलता ने ले लिया था। उसका चेहरा एक ऐसे मुखोट से ढका रहता, जो सहानुभूति के तनिक स्पर्श से टूट जाता।

इन दिनों मां हमें अपने जीवन की कहानी भी सुनाया करती थी। उसका व्याह भी छोटी उम्र में हो गया था। अपने माता-पिता के ग्रामीण परिवार में वह उद्दंड लड़की थी और सबसे पहला वच्चा थी। वह तव तक नंगे सिर और नंगे पांव घूमती रही जव तक कि छोटे भाई-वहनों की देख-भाल की जिम्मेदारी उसपर न आ पड़ी। फिर उसे मां-वाप से विछोह का आभास हुआ, क्योंकि आठ साल की उम्र ही में उसकी सगाई मेरे पिता से हो गई। उन दिनों व्याह के लिए तैयार होने की जिम्मेदारी लड़कियों को वुरी तरह आ दवोचती थी, क्योंकि उन्हें आगे चलकर अपनी गृहस्थी संभालनी होती थी। पर वह चुपचाप अपने कर्तव्य का पालन करती रही, क्योंकि उसका जन्म एक धार्मिक परिवार में हुआ था। उस पिता पक्का सिख सुनार और भगवान का भक्त था। साधु-सन्त अक्सर के घर में आकर ठहरते थे। परिवार के सदस्य उन्हें खिलाते-पिलाते और सेवा करते थे। इसलिए मां ने वारह-तेरह साल की अवस्था ही में उनसे वहुत-सी अच्छी वातें सीख ली थीं। वातावरण ने भी वहुत कुछ सिखाया। दूध जैसे स्वच्छ आकाश के तले, हरे-भरे खेतों के पास वरामदों और आंगनोंवाले ऊंची चौकी के कच्चे मकान थे। पौ फटते ही गौएं दोहना, दूध विलोना, रोगनाशक गोवर से आंगन लीपना, भोजन वनाना-खिलाना, चर्खा कातना, वुनना और कपड़े धोना—इतना कठिन परिश्रम था कि उसका शास्त्रीयकरण ही उसे दासता, नीरसता और मलिनता के दलदल से ऊपर उठाता था।...

"सावित्री वनो," पिता मां को सीख देता, "गुरु की सतियों की तरह मरते दम तक पतिव्रता रहो।" उसकी मां उसे देवी-देवताओं और पतिव्रता स्त्रियों की कहानियां सुनाया करती थी। कर्तव्यशीलता की भावना जो नौजवान दुल्हनों को रीति के अनुसार सीखनी होती थी, वह उसे घुट्टी में मिली थी। उसे वताया गया था कि पति के घर को वह मंदिर समझे। जव वह दुल्हन वनकर विदा हुई तो

किसी न किसी बहाने गालियां देती और रसोई में जाकर काम करने को कहती। भोजन जो उसे मिलता था—एक रोटी, मसूर की दाल की एक कड़छी और चोरी-छिपे आम के अचार की फांक।

कठोर और निष्ठुर दादी मेरी मां और चाची से बज़ाज़ों के लिए फुलकारियां कढ़वाती और उसका जो पैसा मिलता, वह अपने पास रख लेती। हालांकि उसके पास हज़ारों रुपये पीतल की गागरों में भरे रखे थे, सैकड़ों अशर्फियां घर के कोनों में दबी रखी थीं और वह आधा दर्जन मकानों का किराया वसूलती थी।

मां ने अपने हाथ से जो सुंदर फुलकारियां काढ़ी थीं, उनका ज़िक्र वह अक्सर करती थी। उसे एक फुलकारी विशेष रूप से पसंद थी, जो उसने बहुत बढ़िया कपड़े पर विभिन्न रंग के रेशम से काढ़ी थी। वह इसे देना नहीं चाहती थी और साथ ही सास से यह कहते डरती थी कि वह उसे बज़ाज़ से खरीदना चाहती है। "आजकल लड़कियां फुलकारियों पर महीन कढ़ाई नहीं करतीं," मां सास के अभिमान में भरकर अपनी चपटी छोटी नाकवाली बहू के प्रति अवज्ञा व्यक्त करते हुए कहती, "अगर करती हैं तो कपड़ा विलायती डिब्बों के रंग से रंगा हुआ होता है।" वाकई वे दिन बीत चुके थे जब ग्रामीण स्त्रियां कपड़े को तेल में तर करती थीं और जाने किन-किन उपायों के द्वारा विभिन्न फूलों से तरह-तरह के रंग निकाला करती थीं। ज़माना सचमुच बदल गया था।

मां यह आशा और प्रार्थना करते हुए सास की निठुरता सहन करती रही कि कभी तो बुढ़िया के मन में दया आएगी। उसके मुख से शिकायत का कभी एक शब्द तक नहीं निकला। आखिर मेरे पिता ने 'इंट्रेंस' पास कर लिया और ३२वीं डोगरा पलटन में, जो नई बनी थी, हेड क्लर्क भर्ती होकर सियालकोट चले गए। जिस साल पिता ने नौकरी की, उसी साल हरीश का जन्म हुआ। मां को सास के निष्ठुर व्यवहार में कुछ अन्तर जान पड़ा। इसका कारण उसे मालूम नहीं था। उसने सिर्फ यही देखा कि दादी अब नर्म थी—बच्चे को प्यार करती, उसे नये-नये कपड़े और आभूषण पहनाती थी। इससे मां बड़ी प्रसन्न हुई। वह अब बड़े उत्साह से सास की आज्ञा का पालन करती, रात-रात-भर उसकी सेवा में रहती, क्योंकि दादी अब बराबर बीमार रहती थी। उसे बड़े बेटे के वियोग का दुःख था और छोटे बेटे के व्यसन और दुराचार ने जीवन कटु बना रखा था, क्योंकि वह एक के बाद एक वेश्या लाकर दुकान के चौबारों में रखता था, जबकि उसकी क्षयग्रस्त

चली घर के दरवाज़े पर बैठी चक्की पीसा करती।

आखिर कई महीने बीमार रहकर और कष्ट सहकर दादी मर गई। लोगों का कहना था कि उसने बीमारी से तभी मुक्ति प्राप्त की जब उसने अपनी गर्दना फूंक मारकर एक बिल्ली के कान में डाल दी। थोड़े दिनों बाद फुफी भी चल बसी। वह सास की निष्ठुरता और पति की उपेक्षा का शिकार हुई थी।

मां देवरी से प्रताप की शादी होने तक अमृतसर ही में रहीं। चाचा ने मेरे माता-पिता की इस भलाई का बदला यह दिया कि चुपके-चुपके सारी पैतृक सम्पत्ति पर कब्ज़ा कर लिया और उसका अधिकांश भाग एक साल के भीतर शराबनोशी और रण्डीबाज़ी में उड़ा दिया।

जब मां पिता के पास फीरोज़पुर छावनी में गईं, जहां पलटन बदल दी गई थी, तब गणेश का जन्म हुआ। दो साल बाद मैं पेशावर में पैदा हुआ। पृथ्वी, जो मेरे एक साल बाद पैदा हुआ था, चार साल का होकर लाहौर में मर गया। नन्हा निप सबसे छोटा था।

"क्या तुम्हारी सास फिर बच्चा जननेवाली है?" द्रौपदी की मां ने उससे पूछा और आगे कहा, "इससे सम्पत्ति में तुम्हारे पति का भाग कम हो जाएगा।"

अगर गप्पें सच हैं तो वे मां और उसके परिवार के बारे में गप्पें हांकती और कहती कि क्या उसके बच्चे गलतियों का नतीजा हैं, क्योंकि जब वे पैदा होनेवाले थे तब वह गर्भपात नहीं करा सकी। "कुतियां—जलती हैं।" मां कहती, 'गन्दी कुतियां! आखिर मैं अपने कुछ लड़के तो चाहती ही थी। ये जो हर साल गोल का गोल जन देती हैं! क्या उनकी संतान उनके पतियों की शराबी उमंग का नतीजा नहीं है? ढोरों की गन्दी बिरादरी! मेरी बातें इसलिए करती हैं कि हम अमीर हैं। क्या करूं, मैंने अपनी बच्चेदानी निकलवा दी है!"

वो मन की भड़ास निकालने के बाद भीतर के चोर पर दृष्टि पड़ती। अड़ोस-पड़ोस के बच्चों की भांति उसके अपने बच्चे भी प्रमाद का नतीजा थे। दरअसल उसने बच्चेदानी का आपरेशन यही सोचकर कराया था कि पति के बार-बार के तक़ाज़ों का भय और दण्ड न भुगतना पड़े।

"वे मेरे बच्चों के बारे में सब कुछ कहकर तो देखें," वह चण्डी का रूप धारण करके कहती, "मैं उनको कच्ची चबा जाऊंगी।" और वह कुटिल [illegible] ंसा करके और गुज़र परिस्थितियों को बढ़ा-चढ़ाकर अपने लिए सम्[illegible]

बनाने का प्रयत्न करती, क्योंकि वह परिवार की उन्नति और समृद्धि चाहती थी। यह भावना सद्बुद्धि का परिणाम थी और इसके लिए एक दृढ़ आधार भी था, क्योंकि एक ओर पिता को रुपया जुटाने की लगन थी और दूसरी ओर मां एक बड़े परिवार में रानी बनकर रहना चाहती थी। उन दोनों ने तलाक की बात कभी सोची तक नहीं थी, क्योंकि उन दिनों हिन्दू कानून में तलाक था ही नहीं। बेमेल से बेमेल जोड़े विवाह को भाग्य का विधान समझकर ज्यों-त्यों निर्वाह कर लेते थे। मेरे माता-पिता ने उस पिंजड़े को स्वीकार कर लिया था जिसमें उन्हें बंद कर दिया गया था। उनकी शादी इतनी बेजोड़ भी नहीं थी। मां अपने पति और स्वामी की आज्ञा का पालन करती थी और पिता ने उसकी आराधना स्वीकार कर ली थी क्योंकि और कोई चारा नहीं था। यों उसे दासी की स्थिति से उठाकर एक प्रकार के कल्पित सिंहासन पर बैठा दिया गया था।

पति तो नाम ही के स्वामी थे। घर में मां का शासन था—नाममात्र ही को सही। पिता घर के चपल देवता थे। जब कभी मां धृष्टता दिखाती तो वे बिगड़ खड़े होते और उनका क्रोध भयंकर कलह का रूप धारण कर लेता। यों वे अपना ।न बदलते रहते थे। कभी पिता अपने आदेश का पालन करवाते और कभी । अपनी बात मनवाती। अगर उनकी ज़िंदगियों का पूरा लेखा-जोखा किया जाए तो अक्सर पिता ही एक बच्चे की भांति नम्र पड़ जाते। संसार में पुरुषों की कोई जाति इतनी जोरूभक्त नहीं होगी जितनी कि हिंदू जाति।

अब इस बहू, द्रौपदी, ने समय से पहले आकर घर की सारी योजनाएं अस्त-व्यस्त कर दी थीं। मां छोटी उम्र की शादी को एक तरह की सगाई समझती थी। फेरे हो जाने के चार साल बाद तक पति-पत्नी में शारीरिक सम्बन्ध स्थापित नहीं होता था। और उस समय तक हरीश ने मेडिकल स्कूल की शिक्षा समाप्त कर ली होती। लड़के और लड़की में भावनात्मक सम्बन्ध के अभाव की बात तो उसने कभी सोची ही नहीं थी। इसलिए वह इस शादी के बारे में कुछ भी तय करने और सोचने के बारे में असमर्थ थी। वह अपने संकीर्ण ग्रामीण विचारों की परिधि से बाहर नहीं निकल सकती थी। जब वह विचार करती तो उसे द्रौपदी अपने गांव की लड़कियों से अधिक मूढ़ और छिछली जान पड़ती। इससे अपने-आपमें और अपने परिवार की श्रेष्ठता में उसका विश्वास दृढ़ हो जाता।

"इस लड़की के आने से मेरा परिवार टूट रहा है।" वह कहती। और वह सोचने लगती कि अगर अपने लड़कों के विवाह कहीं न कहीं अपने ही परिवार में कर सकी तो अवश्य करेगी, क्योंकि तब उसे बहुओं के लिए दूसरे लोगों के घर नहीं जाना होगा। बहुओं से वह और कुछ नहीं सिर्फ लड़के चाहती थी—लड़के जो उसके अपने पोते होंगे। बहुओं का अपना कोई महत्त्व नहीं था। दुनिया में लड़कियों की क्या कमी थी, मांगीं और मिल गईं। उन्हें दुःख सह-सहकर ज़िंदगी को समझना होता है। क्या उसने दुःख नहीं झेले? और अब सब ठीक हो गया था क्योंकि वह लड़कों की मां थी। अब उसका कुल फूलेगा-फलेगा। निस्संदेह, गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए दुःख झेले, निष्ठुर व्यवहार से उसके प्राणों पर आ बनी, लेकिन इसके अतिरिक्त प्रसन्नता क्या है?...

घनटन के मंदिर में आरती शुरू हुई। घंटे बज उठे थे और पुजारी मंत्रों का उच्चारण करने लगे थे। आकाश कुछ टिमटिमाते हुए तारों से आलोकित था।

मां बरामदे के पास आंगन के एक कोने में एक छोटे-से आसन पर बैठी रसोई तैयार कर रही थी। पीतल के बर्तन इधर-उधर बिखरे पड़े थे और उनमें डूबते हुए सूरज की किरणें प्रतिबिम्बित हो रही थीं। मंदिर के घंटे की आवाज़ सुनते ही उसने आंखें बंद करके सिर झुका लिया और हाथ जोड़कर कोई प्रार्थना गुनगुनाने लगी।

मैं चिढ़ गया, क्योंकि लगता था कि वह मुझसे अलग होकर दूर चली गई है, जैसे दोपहर को सोते समय चली जाती थी। कुछ देर मैं चारपाई पर पड़ा-पड़ा रूई के गालों की तरह तिरते हुए बादलों के टुकड़ों को मनुष्य और पशुओं के रूप धारण करते देखता रहा। लेकिन फिर उसने उकताकर मां की ओर देखा। वह अब भी आंखें बंद किए और सिर झुकाए बैठी थी।

"मां!" मैं नींद और थकान से चिल्लाया।

मां ने कोई उत्तर नहीं दिया; लेकिन दूर से फिर पिता की आवाज़ आई।

मां की प्रार्थना भंग हुई और उसने यह देखने के लिए कि आया मसूर की दाल गल गई है या नहीं, पीतल की बड़ी कड़छी मिट्टी की हांडी में डाली। उसने एक दाना अंगुलियों में मसलकर देखा।

वनाने का प्रयत्न करती, क्योंकि वह परिवार की उन्नति और समृद्धि चाहती थी। यह भावना सद्‌बुद्धि का परिणाम थी और इसके लिए एक दृढ़ आधार भी था, क्योंकि एक ओर पिता को रुपया जुटाने की लगन थी और दूसरी ओर मां एक वड़े परिवार में रानी वनकर रहना चाहती थी। उन दोनों ने तलाक़ की वात कभी सोची तक नहीं थी, क्योंकि उन दिनों हिन्दू कानून में तलाक था ही नहीं। वेमेल से वेमेल जोड़े विवाह को भाग्य का विधान समझकर ज्यों-त्यों निर्वाह कर लेते थे। मेरे माता-पिता ने उस पिंजड़े को स्वीकार कर लिया था जिसमें उन्हें वंद कर दिया गया था। उनकी शादी इतनी वेजोड़ भी नहीं थी। मां अपने पति और स्वामी की आज्ञा का पालन करती थी और पिता ने उसकी आराधना स्वीकार कर ली थी क्योंकि और कोई चारा नहीं था। यों उसे दासी की स्थिति से उठाकर एक प्रकार के कल्पित सिंहासन पर वैठा दिया गया था।

पति तो नाम ही के स्वामी थे। घर में मां का शासन था—नाममात्र ही को सही। पिता घर के चपल देवता थे। जव कभी मां धृष्टता दिखाती तो वे विगड़ खड़े होते और उनका क्रोध भयंकर कलह का रूप धारण कर लेता। यों वे अपना वदलते रहते थे। कभी पिता अपने आदेश का पालन करवाते और कभी ां अपनी वात मनवाती। अगर उनकी ज़िंदगियों का पूरा लेखा-जोखा किया जाए तो अक्सर पिता ही एक वच्चे की भांति नम्र पड़ जाते। संसार में पुरुषों की कोई जाति इतनी जोरूभक्त नहीं होगी जितनी कि हिंदू जाति।

अव इस वहू, द्रौपदी, ने समय से पहले आकर घर की सारी योजनाएं अस्त-व्यस्त कर दी थीं। मां छोटी उम्र की शादी को एक तरह की सगाई समझती थी। फेरे हो जाने के चार साल वाद तक पति-पत्नी में शारीरिक सम्वन्ध स्थापित नहीं होता था। और उस समय तक हरीश ने मेडिकल स्कूल की शिक्षा समाप्त कर ली होती। लड़के और लड़की में भावनात्मक सम्वन्ध के अभाव की वात तो उसने कभी सोची ही नहीं थी। इसलिए वह इस शादी के वारे में कुछ भी तय करने और सोचने के वारे में असमर्थ थी। वह अपने संकीर्ण ग्रामीण विचारों की परिधि से वाहर नहीं निकल सकती थी। जव वह विचार करती तो उसे द्रौपदी अपने गांव की लड़कियों से अधिक मूढ़ और छिछली जान पड़ती। इससे अपने-आपमें और अपने परिवार की श्रेष्ठता में उसका विश्वास दृढ़ हो जाता।

"इस लड़की के आने से मेरा परिवार टूट रहा है।" वह कहतीं। और वह सोचने लगती कि अगर अपने लड़कों के विवाह कहीं न कहीं अपने ही परिवार में कर सकी तो अवश्य करेगी, क्योंकि तब उसे बहुओं के लिए दूसरे लोगों के घर नहीं जाना होगा। बहुओं से वह और कुछ नहीं सिर्फ लड़के चाहती थी—लड़के जो उसके अपने पोते होंगे। बहुओं का अपना कोई महत्त्व नहीं था। दुनिया में लड़कियों की क्या कमी थी, मारीं और मिल गईं। उन्हें दुःख सह-सहकर ज़िंदगी को समझना होता है। क्या उसने दुःख नहीं झेले? और अब सब ठीक हो गया था क्योंकि वह लड़कों की मां थी। अब उसका कुल फूलेगा-फलेगा। निस्सदेह, गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए दुःख झेले, निष्ठुर व्यवहार से उसके प्राणों पर आ बनी, लेकिन इसके अतिरिक्त प्रसन्नता क्या है?...

पलटन के मंदिर में आरती शुरू हुई। घंटे बज उठे थे और पुजारी मंत्रों का उच्चारण करने लगे थे। आकाश कुछ टिमटिमाते हुए तारों से आलोकित था।

मां बरामदे के पास आंगन के एक कोने में एक छोटे-से आसन पर बैठी रसोई तैयार कर रही थी। पीतल के बर्तन इधर-उधर बिखरे पड़े थे और उनमें डूबते हुए सूरज की किरणें प्रतिबिम्बित हो रही थीं। मंदिर के घंटे की आवाज़ सुनते ही उसने आंख बंद करके सिर झुका लिया और हाथ जोड़कर कोई प्रार्थना गुनगुनाने लगी।

मैं चिढ़ गया, क्योंकि लगता था कि वह मुझसे अलग होकर दूर चली गई है, जैसे दोपहर को सोते समय चली जाती थी। कुछ देर मैं चारपाई पर पड़ा-पड़ा रूई के गालों की तरह बिखरे हुए बादलों के टुकड़ों को मनुष्य और पशुओं के रूप धारण करते देखता रहा। लेकिन फिर उकताकर मां की ओर देखा। वह अब भी आंखें बंद किए और सिर झुकाए बैठी थी।

"मां!" मैं नींद और थकान से चिल्लाया।

मां ने कोई उत्तर नहीं दिया; लेकिन दूर से फिर पिता की आवाज़ आई।

मां की प्रार्थना भंग हुई और उसने यह देखने के लिए कि [illegible] दाल गल गई है या नहीं, पीतल की बड़ी कड़छी मिट्टी की हां[illegible] एक दाना अंगुलियों में मसलकर देखा।

'हो गई, अब इसमें छोंक और लगेगा।' मां ने स्वतः कहा।

उसने चूल्हे में से लकड़ियां तनिक बाहर निकाल लीं और गुंधे पड़े आटे की
ओर देखा।

भाभी अब भी घूंघट निकाले कोने में सिकुड़ी बैठी थी। शायद वह रो
रही थी।

पिता हंसते-बोलते मेरे दोनों भाइयों के साथ भीतर आए और आते ही
उन्होंने अपनी पाटदार आवाज़ में पूछा, "हरीश की मां, क्या भोजन तैयार है?"

"हां," मां ने शांत भाव से उत्तर दिया, "दाल तैयार है। मैं इसे छोंककर
रोटी उतारती हूं। तुम इतने नहा आओ।"

"अच्छा, हम नहाने जाते हैं।" पिता ने सिर हिलाकर कहा, "गणेश आओ,
हरीश आओ। हम बाहर कुएं पर नहाएंगे। कृष्ण, तुम कहां हो? मेरा शैतान
बुल्ली बेटा कहां है? तुम भी आओ...हरीश की मां! मैं बच्चों के लिए एक
बड़ा तरबूज लाया हूं। द्रौपदी इसे पसन्द करेगी। वह कहां है, लेकिन...! वह
वहां क्यों सिकुड़ी बैठी है, क्या तुम इतना नहीं कह सकतीं कि वह कोने से उठकर
खुली हवा में आ जाए। वहां गर्मी है और मच्छर भी होंगे।"

"वह नाराज़ है।" मां ने धीरे से कहा।

"तुम क्या कह रही हो?" पिता गरजे। वह वाकई गर्मी महसूस कर रहे थे,
द्रौपदी के बारे में परेशान थे और एक कान से कुछ ऊंचा सुनते थे।

"वह नाराज़ है।" मां ने दोहराया। हर शब्द पर बल देते हुए भी ऐसा उपेक्षा-
भाव अपनाया जैसे समझाते-समझाते तंग आ चुकी हो।

"नाराज़?" पिता ने झुंझलाकर कहा, "वह नाराज़ क्यों है?"

"वह कहती है कि मेरा पति मुझे दे दो।" मां ने उत्तर दिया।

अब जो बातें हुईं मैं नहीं समझ पाया, लेकिन मैंने शब्द सुने और वाताव
में तनाव अनुभव किया।

जब पिता रसोई में बोरी पर भोजन करने बैठे तो मां ने सब बातें उनसे
दीं जो घर में और घर से बाहर हुई थीं। वे द्रौपदी को बिना देखे अथवा उ
बिना बात किए ही जानते थे कि वह क्या चाहती है। जब बात धीरे-धीरे
दिमाग में बैठी और घर में फैले क्षोभ को अनुभव किया तो उनकी आंखें क्रो
लाल हो गईं।

"वह उसे ले ले !" पिता गरजे, "लेने से रोकता कौन है ? मैं तो बेटे के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर रहा था। उसे डाक्टर बनाना चाहता था। मगर उसकी पत्नी नहीं चाहती, तो न सही। मैंने तुम्हें बताया नहीं, जेल-विभाग के इंस्पेक्टर जनरल ने कर्नल साहब से कहलवाया है कि वह हरीश को नायब दरोगा की नौकरी दे सकते हैं। मैंने कह दिया है कि वह कर लेगा। तनख्वाह पैंतीस रुपये महीना है; लेकिन इस नौकरी में इज्जत बड़ी है।"

मां चुप रही।

"अच्छा हरीश, इस बारे में तुम्हारी क्या राय है ?" पिता ने क्रोध में उसकी ओर पलटकर पूछा।

हरीश सदा की तरह चुप था। वह हाथ पर हाथ रखे और सिर झुकाए बरामदे में चारपाई पर बैठा था। उसके कंधे सिकुड़े हुए थे, धड़ और टांगें अंधेरे में थीं।

"मैंने अपना फर्ज पूरा कर दिया।" कोई उत्तर न मिलता देख पिता ने हाथ झटककर कहा, "बहू के लिए चूंकि यहां रहना मुश्किल है और डाक्टरी की पढ़ाई समाप्त होने तक वह अपने मायके भी नहीं रह सकती; इसलिए बेहतर है कि वह अपने पति को लेकर लाहौर चली जाए। मैंने उसके लिए नौकरी ढूंढ़ दी है।"

सब चुप थे। वातावरण शांत था। घर के बाहर, जहां रसोई का पानी जाकर इकट्ठा होता था, पिता ने वहां क्यारी बनाकर सब्जी बो दी थी। इस क्यारी से आनेवाली झींगुर की आवाज और मेंढकों की टर्र-टर्र ही रात की निस्तब्धता को भंग कर रही थी।

"जाओ गणेश, जाकर नहा लो। पिता ने अपनी बैठक की ओर जाते हुए कहा, 'कृष्ण को जगा दो, वह भी नहा ले।" नहाने की बात सुनकर मैंने सोने का बहाना कर लिया था।

गणेश अगले दिन के लिए जल्दी-जल्दी अपना बस्ता तैयार कर रहा था क्योंकि गर्मी के मौसम में हम रात का खाना खाते ही सो जाते थे और सुबह मुंह-अंधेरे ही स्कूल जाना होता था।

पिता चलते-चलते एक क्षण के लिए उसके पास रुके और अपने उत्तेजित मन को शांत करने के लिए विषय बदलकर कहा, "सुनो बच्चे, अपने [illegible] कृष्ण

को भी अपने साथ स्कूल ले जाया करना । यह सूअर भी अब पढ़ने लायक हो गया।...''

२

जब मैं अपने दायें हाथ में गणेश की छोटी अंगुली पकड़े और बायें हाथ का अंगूठा चूसते हुए स्कूल जाने के लिए घर से निकला तो मैं बड़ा प्रसन्न था। मुझे बड़े चाव से नई सूती सलवार और ट्विल का खाकी कुर्ता पहनाया गया था। एक चमकीले रंग का पेशावरी रेशमी रूमाल मेरे गले में बंधा हुआ था, पांव में रबर के वे काले जूते थे, जो मैंने हरीश के व्याह पर पहने थे और उसके बाद खास-खास अवसरों पर पहनने के लिए रख छोड़े थे। ये जूते रास्ते के कङ्कड़-रोड़ों से मेरे पांवों की रक्षा कर रहे थे। मैं वाकई उत्साह और आवेश से भरा हुआ था।

पिछला सारा साल स्कूल जाना मेरे जीवन की अभिलाषा बना रहा। प्रत्येक दिन जब मैं बड़े भाई को स्कूल जाते देखता था तो मैं भी जाने की कामना करता । गणेश और पलटन के दूसरे लड़के स्कूल जाते हुए कैसे जंगली झड़बेरियों से तोड़कर खाते हैं, टिड्डे और तितलियां पकड़ते हैं और ऐसे खेल खेलते हैं, जिनके नियम सिर्फ उन्हीको मालूम है—मैंने यह सब सुन रखा था। जितना सुनता था, उतनी ही उत्सुकता बढ़ती थी और इन सब खेलों में भाग लेने के लिए मन ललचाता था। मैं कई महीने पिता का सिर खाता रहा कि वे मुझे स्कूल भेजें।

'बेटा, अभी तुम स्कूल जाने के लायक नहीं हो,' वे हमेशा कह देते, और मैं तर्क करता कि नहीं, मैं जा सकता हूं। पर जो वास्तविकता थी उसे मैं समझता था और मन ही मन में भगवान से प्रार्थना किया करता था कि वह किसी तरह मुझे गणेश जितना बड़ा बना दे। इसमें सिर्फ एक ही भय था कि अगर भगवान ने मेरी प्रार्थना स्वीकार करके मुझे एक ही रात में गणेश जितना बड़ा बना दिया तो कहीं मेरा शरीर भी गणेश की तरह तिकोना, नाक चपटी और कान भद्दे न हो जाएं। लेकिन मैंने जितनी प्रार्थना की उस अनुपात में मेरा कद नहीं बढ़ा। इसलिए मैं रोने लगा।

'अब तुम स्कूल जाने के लिए रो रहे हो,' पिता ने कहा, 'पर देखना, जब जाने लगोगे तो घर रहने के लिए रोया करोगे।'

मैं इसका कारण समझने में असमर्थ था। अपना मनोरथ साधने के लिए मैंने एक दूसरा ढंग अपनाया। गणेश जैसे घर पर अपना पाठ याद किया करता था, मैंने शाम को पिता के सामने उसकी नकल उतारनी शुरू की। मैं उसकी पुस्तकें, स्लेट और कापियां निकाल लेता और उसीकी तरह का प्रयत्न करता। जब तोते की तरह उर्दू का कायदा पढ़ता अथवा पहाड़े रटता तो पिता हंसते। जब कहीं गणेश भूल जाता तो मैं झट से तनकर वही बात दोहराता। पिता प्रसन्न होकर मेरी पीठ थपथपाकर मेरे झट को बढ़ावा देते।

आखिर पिता इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि मैं जितना पढ़ने के लिए उत्सुक हूं, उतना ही पाठ कंठस्थ करने में पटु हूं और उन्होंने मुझे घर पर पढ़ाना शुरू किया। चंद महीने में मैं कायदा खत्म करके भाई की दूसरी की किताबें पढ़ने लगा। अब गणेश की ईर्ष्या जागी और उसने मुझे अपनी पुस्तकें छूने से मना कर दिया। इसपर हम दोनों भाई खूब लड़ते-झगड़ते, नोचते-खरोंचते और रोते-चिल्लाते।

अब यही हो सकता था कि मुझे स्कूल भेज दिया जाए।

लेकिन जिस सुबह मैं घर से तैयार होकर निकला, बड़ा भाई मुझे साथ ले जाने के लिए कुछ अधिक उत्सुक नहीं था। वह मुझे बोझ समझता था और अप्रसन्न था।

"सूअर, जल्दी-जल्दी चल।" जब हम घर से थोड़ी दूर आ गए तो वह मेरे हाथ में अपनी अंगुली छुड़ाकर चिल्लाया, "बीमार, अपनी इन छोटी-छोटी टांगों और पैरों को ज़रा तेज कर। मैं पहले ही लेट हो गया हूं।"

मैं इस व्यवहार से चिढ़ गया। गालियों की परवाह नहीं थी, लेकिन गणेश का अंगुली छुड़ाना मुझे विश्वासघात लगा। मुझे यह महसूस हुआ कि वह मुझे पीछे छोड़े जा रहा है और मैं स्कूल नहीं पहुंच सकूंगा। स्कूल जाने की प्रसन्नता का स्थान आंसुओं ने ले लिया। मेरे कान जल रहे थे और मैं रोता-चिल्लाता बड़े भाई के पीछे भाग रहा था।

इस डर से कि कहीं पिता मेरी चीखें न सुन लें, गणेश एक क्षण के लिए रुका; लेकिन मुझे अपने पीछे आता देख फिर चल पड़ा।

मैं थोड़ी दूर दौड़ा, लेकिन गणेश को दौड़ते देख हताश ो गया और पिता को पुकारा, "बा'जी !"

गणेश ने पलटकर देखा कि हम घर से काफी दूर आ गए हैं

वहां नहीं पहुंच सकती।

मैं डाह से धूल में लोटनेवाला था; लेकिन गणेश कहीं नज़र नहीं आया, इसलिए धूल में लोटना व्यर्थ समझकर मैं पहले से तेज़ दौड़ने लगा।

मेरी सांस फूल गई और पसीना भी बहुत आया, पर मैं गणेश के पास पहुंचने में सफल हो गया।

"साले !" मैंने गाली दी और उसकी अंगुली पकड़ने का प्रयत्न करते हुए कहा, "तुम मुझे पीछे क्यों छोड़ रहे हो ?"

"छोड़ो, मुझे मत पकड़ो।" गणेश ने कहा। उसके गाल भय और क्रोध से तमतमा रहे थे, "अली और दूसरे लड़के जा चुके होंगे। अगर तुम न होते तो मैं भी उनके साथ जाता।" और उसने दोबारा अपनी अंगुली छुड़ाकर दौड़ना शुरू किया।

"ओह ठहरो, मुझे अपने साथ ले चलो !" मैंने रुंधे स्वर में कहा और प्रयत्न करके भागने लगा, क्योंकि मेरी खुली सलवार में हवा भर गई थी।

गणेश दौड़कर कोई पचास गज़ गया होगा कि उसने अली को, जो बाहर खड़ा धूप सेंक रहा था, अपने घर में घुसते देखा। इसलिए वह मुझे साथ मिलाने के लिए रुक गया।

मैं रोता हुआ एक छोटी गली के नुक्कड़ पर पहुंचा। गली की एक ओर बारकों की छोटी कच्ची फसील थी और दूसरी ओर एक कमरे के छोटे-छोटे घरों की कतार थी, जिनमें बाजेवाले, वे कुछ विवाहित सिपाही जिन्हें अपनी पत्नियां लाने की आज्ञा मिल गई थी और पलटन के धोबी, नाई, मोची और भंगी रहते थे।

"अली की मां, क्या अली स्कूल चला गया ?" गणेश ने वह टाट हटाकर पूछा जो कच्चे घर के दरवाज़े पर लटका हुआ था, क्योंकि मुसलमान बाजेवाले अपनी औरतों को पर्दे में रखते हैं।

"नहीं, वह हरामी अभी यहीं है।" भीतर से अली की मां का तीखा स्वर सुनाई पड़ा, "वह अभी सोकर उठा और बाहर धूप सेंकने चला गया। स्कूल का तो उसे ध्यान ही नहीं है। आओ और उस बदमाश को तैयार हो जाने दो।"

गणेश ने सुख की सांस ली। अली अगर साथ न हो तो अपनी मानसिक दुर्बलता के कारण उसे यह डर रहता था कि स्कूल में देर से आने के कारण

मास्टर से अकेले ही पिटना पड़ेगा। अगर पलटन के दूसरे लड़के भी पिटते थे तो वे एक-दूसरे की दृष्टि में कम लज्जित होते थे।

पहले गणेश भीतर गया।

एक अजनबी घर में घुसने से डरते और सकुचाते हुए मैं उसके पीछे चला। लेकिन अन्दर जाते ही मेरी नज़र एक सुन्दर मुर्गे पर पड़ी जो दीवार पर बैठा 'कुकड़ूं-कूं' बोल रहा था और आंगन में बने मुर्गीखाने में दर्जनों चूज़े देखे। बस, अब क्या था, मेरा सारा भय, सारी लज्जा दूर हो गई।

"देखो! देखो!" मैंने गणेश का कुर्ता खींचते हुए कहा, "इन नन्हे चूज़ों को देखो!" और मैं एक को पकड़ने के लिए दौड़ा जिससे घर में क्यामत मच गई, क्योंकि मुर्गियां फड़फड़ाती और चक-चक करती इधर-उधर दौड़ीं और उनके पीछे उनके चूज़ों की लम्बी कतार।

"अरे, उन्हें बैठे रहने दो।" अली की मां ने मुस्कराते हुए हिन्दुस्तानी में कहा, क्योंकि वे लोग अलीगढ़ के नज़दीक के रहनेवाले थे, "तुम हिन्दुओं को चूज़ों की हत्या नहीं करनी चाहिए, उन्हें हम मुसलमान ही खाते हैं।"

मैं बरामदे में खड़ा चूज़ों को देख-देखकर खुश हो रहा था, जो आंगन के दायें कोने में रखे हुए अपने डिब्बे से निकल-निकलकर इधर-उधर भाग रहे थे।

गणेश खड़ा अली से बातें कर रहा था, जो ज़मीन पर बैठा एक तांबे के लोटे से पानी लेकर अपने हाथ और मुंह यों धो रहा था, जैसे उसे पानी से डर लग रहा हो और डर का कारण यह था कि इस्लाम में नित्य स्नान धार्मिक नियम नहीं है।

"लड़को, अन्दर आ जाओ।" अली के बाप अहमद ने कहा। वह तेल से चिक्कट रज़ाई में लिपटा हुक्का पी रहा था और जिस बड़े पलंग पर वह लेटा हुआ था उसने आधा कमरा रोक रखा था। पांच प्राणियों का यह परिवार इसी छोटे अंधेरे कमरे में रहता था, यहीं सोता था, यही उनका रसोईघर और यही स्टोर था।

गणेश और मैं कमरे के भीतर गए और पलंग से लगकर खड़े हो गए।

अली अब अपनी बहन आयशा और छोटे भाई अकबर के साथ भोजन करने बैठा। उनके सामने रोटियों की एक टोकरी और शोरबे से भरा हुआ प्याला था। वे रोटी का एक ग्रास तोड़ते थे और उसे शोरबे में तर करके अपने मुंह में डाल

करती कि वे एक ही टोकरी और एक ही प्याले से इकट्ठे खाना खाते हैं। खाने से पहले वे हाथ भी नहीं धोते। लेकिन मैंने दीवार पर अली की मां की पीक देखी। पहले तो वह बिल्लौर की तरह लटकी रही और फिर धुएं से हिलकर चूल्हे के पास रखे हुए बर्तन के किनारे पर आ गिरी। मेरा निर्णय हो गया, यह बुरी बात थी। मेरी अपनी मां ऐसा नहीं करेगी। वह गुसलखाने में मंजन और कुल्ला करती थी और पिता सुबह घर से बाहर दातुन करते थे।

"रंडी के पूत, जल्दी कर।" अली की मां ने क्रोध से बेटे को कहा।

मैंने महसूस किया कि वह मेरे और गणेश के मिठाई न खाने से नाराज थी और गुस्सा बेटे पर निकाल रही थी। "यह लो," उसने एक छोटी-सी पुड़िया अली की ओर बढ़ाते हुए स्नेह भाव से कहा, "इन्हें आधी छुट्टी में खा लेना, ये हिन्दू तो नहीं खाएंगे। और यही तुम्हारा जेबखर्च है। तुम्हें देने के लिए आज मेरे पास पैसा नहीं है।"

मैं उसके प्रत्येक शब्द और संकेत को ध्यान से देख रहा था और अपनी मां उसकी तुलना कर रहा था। मां ने मुझे स्कूल भेजने से पहले कहा था कि तुम्हें आधी छुट्टी में कुछ खाने का स्वभाव नहीं डालना। उसने कहा था कि घर से बाहर मिठाई पर पैसे खर्चना अच्छी आदत नहीं है। जब तुम स्कूल से लौटकर आओगे तो मैं तुम्हें अपने सन्दूक से 'कुछ' दूंगी। पर उसने यह नहीं कहा था कि उसके पास देने को पैसा नहीं। मेरे पिता के पास पैसा बहुत होता था, विशेषकर महीने के अन्त पर, जब वे अपनी तनखाह लाते थे और उसे गिनकर मेज़ पर रख देते थे। क्या वे बाजेवालों, भंगियों और सिपाहियों और धोबियों को उनके चांदी के ज़ेवर गिरवी रखकर उधार नहीं देते थे? याद आया कि एक बार अली का बाप भी मेरे पिता से उधार मांगने आया था। मैंने सोचा, अली की मां गरीब होगी। लेकिन बेटे को पैसा देने में वह कितनी उदार थी और मेरे मां-बाप कितने कृपण थे, जो हमें कोई न कोई बहाना और 'कुछ' का वादा करके टाल देते थे। मुझे पैसा लेना पसन्द था, अगर न खर्चूं तो कम से कम अपने पास तो रख सकूं।

अली ने रोटी के कुछ टुकड़े उसी टोकरी में डाल दिए, जिसमें चपातियां पड़ी थीं और वह मिठाई की पुड़िया को अपने हाथ में थामे हुए उठ खड़ा हुआ। उसके छोटे-से सिर पर लाल तुर्की टोपी थी; सूती लम्बा कुर्ता और सलवार थी, जो भद्दी काट से स्पष्ट लगती थी; कि घर पर सिली है।

"जल्दी करो वरना तुम लेट हो जाओगे।" अली को सूनी आखों से इधर-उधर कुछ खोजते देखकर उसकी मा चिल्लाई, "तुम ढूढ क्या रहे हो ?"'क्या ? अपना बस्ता'''फिर वही बात ? नमकहरामी ! जब तुम स्कूल से लौटते ही अपना बस्ता फेंक देते हो, तब तुम क्या सीखोगे? हरामी, चारपाई के नीचे देखो !"

अली घुटनो और हाथों के बल झुककर एक-दो मिनट अधेरे में खोजता रहा। यह सब व्यर्थ था क्योकि उसने सिर बाहर निकाला और घूरकर मां की ओर देखने लगा। "ओहो," वह चिल्लाई, "पीछे कोनो मे देखो, चूहे खीच ले गए होंगे।"

वह फिर चारपाई के नीचे घुसा और पेट के बल लेटकर हाथ से धरती पर टटोला और दूसरे ही क्षण रूई का एक थैला निकाला, जिसमे किताबें, कापिया और स्लेट थी।

"चूहो ने इसे निगला तो नही ?" उसकी मां चिल्लाई। यह देखकर कि उसका कुर्ता और पायजामा मिट्टी से सन गया है, वह आपे से बाहर हो गई, "अरे, मैंने कपड़े धोए और तुमने उन्हे आज ही मिट्टी मे भर लिया ?"

अली लडने के लिए तैयार पशु की भाति उसका सामना करते हुए बोला, "चुप, कुतिया ! कंजरी !"

वह चूल्हे से एक जलती हुई लकडी लिए उठी और कोसती और गालियां देती हुई उसके पीछे दौड़ी। लेकिन वह उसकी पकड़ से दूर सहन में और दरवाजे के बाहर निकल गया।

गणेश और मैं उसके पीछे चले। इस कांड ने हमें सटपटा दिया ; फिर भी शिष्टता नहीं भूले। हमने अली के पिता को सलाम किया, जो इस बीच मे शांत और अविचलित बैठा रहा था और अली की मा को भी सलाम किया, यद्यपि कुछ सहमे-सहमे। "मेरे बेटो, तुम्हारी उम्र लम्बी हो।" अली की मां ने अपने उत्तेजित स्वर को हमवार करके कहा, और दुखी भाव से बोली, "मेरा —— हो गया।"

मैंने धूप में आकर सुख की सास ली। दरअसल अब मुझे

कि अब मैं स्कूल जा रहा हूं।

लेकिन काई से ढके हुए एक गंदे छप्पड़ के पास, जिसमें छोटे मुलाजिमों के घरों का पानी आकर गिरता था, कुछ बाजेवाले बैठे धूप सेंक रहे थे। इनमें हवलदार मौलाबख्श था, जिसे मेरे पिता स्नेह से 'काला देवता' कहते थे, क्योंकि वे दोनों पलटन में एक साथ भर्ती हुए थे। घसियारा जिम्मी था, जो ईसाई बन गया था और नफीरी बजाता था और काला धूत, हिजड़े जैसे मुखवाला क्लेटन था, जो पलटन के नाटकों में स्त्री बना करता था। वह हरीश का मित्र था और जब दफ्तर में उसकी अर्दली की ड्यूटी होती थी तो हमारे घर अक्सर आया करता था। उन्होंने मुझे पकड़ लिया और 'ओह बुल्ली, बुल्ली, बुल्ली, मेरा, बेटा!' गा-गाकर मुझे चिढ़ाने लगे। मैंने विरोध किया और अपने-आपको उनके हाथ से छुड़ा लिया। इस समय मैं अपने को बड़ी उम्र का प्रतिष्ठित व्यक्ति महसूस कर रहा था और मैंने ऐसा भाव बनाया जैसे मैं उन्हें जानता ही नहीं, यद्यपि इससे पहले मैं उनसे खूब खेलता था।

अली बैंडमास्टर के लड़के अब्दुल्ला को बुला रहा था, जबकि गणेश पलटन के दर्जी रमजान के बेटे अख्तर की ओर चला गया था। वे दोनों निराश लौटे, क्योंकि वे पहले ही स्कूल चले गए थे। इसलिए मुझे लेकर उन्होंने जल्दी-जल्दी कदम बढ़ाए।

कुछ दूर हम तीनों साथ-साथ चले।

लेकिन लगता था कि अली को मेरा साथ पसन्द नहीं था, क्योंकि मेरे रहते वह और गणेश बातें नहीं कर सकते थे।

शहर और पलटन के दरमियान नदी का जो पुराना तल था, वहां तक पहुंचते-पहुंचते मैं थक गया था और भाई की अंगुली के सहारे घिसट रहा था।

सूरज को ऊंचा चढ़ आए देख गणेश को लगा कि हम स्कूल के लिए लेट हैं। वह और अली ४४वें दस्ते के डाक्टर घसीटाराम के लड़के, प्यारेलाल और मिस्त्री सदरदीन के बेटों, रहमतुल्ला और इस्मतुल्ला के पैरों को निशान ढूंढ़ने लगे। अगर रास्ते की मिट्टी में निशान होंगे तो वे अभी गए हैं और हम लेट नहीं हैं और अगर निशान नहीं हैं तो वे अभी नहीं गए और निश्चित रूप से अभी समय है।

पैरों के निशान नजर नहीं आए, इसलिए उनकी चिन्ता बढ़ी और उन्होंने कदम और भी तेज कर दिए, लेकिन मेरे पाव धीरे-धीरे उठ रहे थे और मेरी दृष्टि पथरीले खड्डों से होती हुई स्वात पर्वतशृंखला की लाल-खुरदरी चट्टानों पर घूम रही थी। सूरज की चढ़ती धूप में क्रुद्ध बजर भूमि, जिसमे इक्का-दुक्का शाहतूत और थूहर का पेड़ उगा हुआ था, भयकर और सूनी-सूनी लग रही थी और मैं अपने-आपको छोटा और अकेला महसूस कर रहा था।

"गूअर, जल्दी चल !" गणेश कोई सौ गज आगे एक टीले पर से चिल्लाया, "क्या तुम नही जानते कि देर से पहुंचने के लिए हमे बेंतें लगेंगी ?"

"साले को पीछे रहने दो।" अली ने गाली दी। मेरे कोई बहन नही थी, जिससे शादी करके वह यह सम्बन्ध स्थापित करता, फिर भी मुझे गाली अखरी।

मैंने कदम तेज किए, लेकिन फिर कछुवे की तरह धीमे चलने लगा, क्योंकि जैसे-जैसे रेत, पत्थर, रेल का पुल, जिसपर से गाड़ी नौशहरा स्टेशन से पेशावर को जाती थी, कांटेदार पेड़ और झाड़िया मायावी चित्रों की भांति मेरी आखों के सामने से गुजर रही थी, शरीर पीछे पड़ता जा रहा था।

जब वे ईंटों की ढलवा छतवाली उस नई इमारत के पास पहुंचे, जो ईंधन की टाल के पास बनी हुई थी और एक-दो बार अर्दली की गोद में चढे नौशहरा सदर बाजार को जाते हुए जिसकी ओर सकेत करके पिता ने बताया था कि वह स्कूल है, तो सहम गए। कारण, स्कूल का अहाता खाली और शांत था जिससे वे समझ गए कि घंटी बज चुकी है और वे लेट हैं।

मैं नि.संकोच आगे बढ़ा।

अली यों भागा जैसे जान पर आ बनी हो।

गणेश ने पलटकर देखा कि मैं कितना पीछे रह गया हू। उसे रुकना पड़ा, क्योंकि उसे मुझे औपचारिक ढंग से स्कूल मे दाखिल कराना था।

"आओ नन्हे, जल्दी आओ !" उसने स्नेह से कहा।

मैं उसके इस स्नेह का कारण समझता था। मुझे दाखिल कराने के लिए पिता का पत्र हेडमास्टर को दिखाना था। अगर स्कूल मे देर से आने के लिए पिटने की आशंका हुई तो गणेश यही पत्र अपने मास्टर को भी दिखा सकता था। यों मैं बोझ होने के बजाय उसके लिए सहायता बन गया।

"तुमने मुझे पीछे क्यों छोड़ा ?" मैंने उसके पास पहुंचकर कहा और मैंने

ऐसी मुद्रा बनाई जैसे मैं हड़ताल करनेवाला हूं।

"आओ, आओ, क्या तुम मेरे नन्हे भाई नहीं हो?" उसने अपनी अंगुली मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा।

लेकिन मैं तो मां-बाप का लाड़ला बेटा था। अब, जबकि मैं स्कूल पहुंच चुका था, मुझे गणेश की कोई आवश्यकता न जान पड़ी और जबकि हेडमास्टर के नाम पिता का पत्र भी मेरी ही जेब में था।

"ओहो, मुझे माफ कर दो।" गणेश ने हाथ जोड़कर कहा।

तब मैंने उसकी अंगुली पकड़ी और वह मुझे साथ लेकर हेडमास्टर के दफ्तर के बाहर खड़े चपरासी की ओर चला।

गवर्नमेंट प्राइमरी स्कूल के नीले कोटवाले चपरासी बुंदे खां ने मेरे पिता का पत्र लिया और नंगे पांव चुपचाप दफ्तर में चला गए। भीतर अब्दुलगफार खां हेडमास्टर लिखने की मेज के पीछे एक ऊंची कुर्सी पर बैठा था।

दूसरे ही क्षण चपरासी लौटकर आया और हमें अपने पीछे आने का संकेत ।

गणेश ने जब हेडमास्टर को फौजी ढंग से सलाम किया, जो उसने सिपाहियों अपने अफसरों को करते देखकर सीखा था, तो वह कुछ भयभीत जान पड़ता ा। मेरी आंखें हिन्दुस्तान के उस नक्शे पर थीं, जो वहां दीवार पर लटक ़हा था।

"हेडमास्टर साहब को सलाम करो।" गणेश ने अपने स्वभावानुसार मु कुहुनियाकर कहा।

"सलाम मास्टरजी।" मैंने तब कहा, जब हेडमास्टर पत्र पढ़ने में व्यस्त थ

"सलाम।" उसने अपनी शानदार मूंछों को बल देते हुए प्रसन्न होकर क वह ऊंचे लम्बे कद का गोरा-चिट्टा पठान था। तुर्रेदार लुंगी, कलफवाली वार और कमीज़ और अंग्रेज़ी तर्ज़ की जाकेट में उसका बड़ा रोब और दब था।

लेकिन मैं उससे डरा नहीं, बल्कि निर्भीकता से उसकी कुर्सी के पीछे पर लगे हुए कलेण्डर पर वायसराय की तस्वीर देख रहा था।

"इस लड़के को मास्टर दीनगुल के पास ले जाओ," हेडमास्टर ने च से कहा, "और कहना कि वे इसका नाम रजिस्टर में लिख लें।" फिर

कहा, "नढे, तुम आधी छुट्टी मे आकर बाबू साहब के नाम मेरा जवाब ले जाना।"

गणेश ने सादर सिर हिलाया, दोबारा फौजी सलाम किया जिससे मैं चिढ़ गया, और चपरासी के पीछे बाहर चला।

हेडमास्टर दरवाजे पर आया और मेरे ऊपर झुककर मेरा गाल खींचते हुए बोला, "अरे, तुम बुजुर्गों का इतना अदब नही करते जितना तुम्हारा भाई करता है। मैं तुम्हारे वालिद को बताऊंगा।"

मुझे मालूम था कि अब्दुलगफार खां पिता को जानता है, क्योंकि वे नौशहरा के मुट्ठी-भर शिक्षित लोगों में थे।

अपने प्रति उसके इस विशेष अनुराग पर मैंने बडा गर्व अनुभव किया और मुस्कराता हुआ चपरासी के पीछे दौड़ा।

गणेश अपना बड़प्पन जताने के लिए दूसरी कक्षा के दरवाजे पर ठहर गया और मुझे कहने लगा कि तुम घबराओगे तो नहीं ? इससे उसका उद्देश्य मास्टर को यह दिखाना था कि वह बड़े महत्त्वपूर्ण काम में व्यस्त है। यों वह सिर्फ देर में आने के अपराध से बल्कि दिन में होनेवाली किसी और गलती से भी बच जाएगा।

चपरासी मुझे पहली कक्षा के कमरे मे ले गया। मास्टर दीनगुल, अली और कुछ दूसरे लड़कों को देर से आने के लिए बेंतें लगा रहा था। उसका सिर घुटा हुआ था; लेकिन चेहरे पर रुमदार मूछें थी, आखें गरुड़ जैसी थी, पर कबीले के अधिकांश व्यक्तियों की तरह नाक बाज जैसी नही थी। उसने खादी का कुर्ता और खादी की सलवार पहन रखी थी। वह भेड़ की ऊन के कम्बल मे लिपटा हुआ एक छोटी-सी दरी पर बैठा था और उसकी गाय की खाल की भारी-भारी नोकदार जूतियां, जिनकी एडियों मे खुरियां थीं, करीब ही पडी थीं। वह पेड की एक अनघड टहनी को छडी के तौर पर घुमा रहा था और उसे निर्दयता से लड़कों की हथेलियों पर मार रहा था।

कमरे मे नितांत स्तब्धता थी। लड़कों को पिटता देख सहसा मेरा मन भी भय से भर गया। अब अली की बारी थी। बेचारा दुबला-पतला लड़का हाथ बगलों में दबाए खड़ा था और छड़ी के निकट आने के [illegible] के मारे रो रहा था।

"कुत्ते के बच्चे, हाथ बाहर निकालो !" मास्टर चिल्लाया।

"मुझे बख्श दो, मुझे बख्श दो मास्टरजी ! माफ करो, मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूंगा।" अली ने रोते-रोते कहा। उसने अपने हाथ बगलों में और अधिक छिपा लिए और शरीर को यों सिकोड़ने का प्रयत्न किया जैसे किसी चमत्कार से अदृश्य हो जाएगा।

"हरामज़ादे, हाथ बाहर निकाल !" दीनगुल ने फिर कहा।

लेकिन लड़का डरते-डरते पीछे हट गया।

इसपर मास्टर अपने कम्बल को झटककर बाहर आया और अली को दायें-बायें, टांगों पर, कमर पर और कंधों पर—दरअसल जहां भी हो सका मारना शुरू किया। और साथ ही वह कह रहा था—गधे के बच्चे, हाथ बाहर निकालो !"

लड़के ने अंगुलियां बाहर निकालीं; लेकिन कठोर और निष्ठुर प्रहारों के भय से पीछे हट गया। इससे गुलदीन और भी निष्ठुरता से मारने लगा। आखिर उसने जबर्दस्ती अली की हथेलियां एक-एक करके बाहर निकालीं और उसकी अंगुलियों के सिरे अपने हाथ में थामकर ज़ोर-ज़ोर से बेंतें लगाईं।

"अब जाओ और अपना सबक याद करो !" मास्टर गरजा।

अली अपनी जगह की ओर मुड़ा। उसने हाथ बगल में दबा रखे थे, मुख पर वेदना अंकित थी और सूरत गीदड़ जैसी भद्दी थी; लेकिन अचरज यह था कि उसकी आंखों में आंसू नहीं थे।

"कल का सबक सुनाने की तैयारी करो !" दीनगुल ने जमात के सब लड़कों से कहा जो कमरे की दीवारों से लगे नंगी ज़मीन पर बैठे थे।

अब वह चपरासी और मेरी ओर पलटा।

चपरासी हेडमास्टर का सन्देश दीनगुल को देकर चला गया।

"इधर बैठ जाओ।" मास्टर ने अपने दाईं ओर इशारा करते हुए कहा। उसने एक हरे रंग का रजिस्टर खोला जो उसके सामने पड़ा था और फिर एक पुराने कलमदान से सरकंडे का एक कलम निकालकर मुझसे पूछा :

"तेरा नाम क्या है, ओय नढे ?"

"कृष्णचन्द्र।" मैंने उत्तर दिया।

दीनगुल ने नाम रजिस्टर में लिख लिया।

फासला था। लड़ाई में जो शत्रु थे, अब उनमें एक प्रकार की मित्रता स्थापित हो गई थी और एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति भी।

"तुम सब हरामियो, अपनी-अपनी किताबें बन्द कर दो!" मास्टर चिल्लाया, "और दोस्त मुहम्मद, खान के बेटे, तुम उठो और अपना कल का सबक सुनाओ! जल्दी करो, क्योंकि अगर तुम न सुना सके तो तुम्हारा तहसील-दार बाप भी तुम्हें मेरे डंडे से नहीं बचा सकेगा।"

कतार का पहला लड़का उठा। उसका मुख सहसा पीला पड़ गया और उसने कविता की पहली पंक्ति सस्वर दोहराई। लेकिन छड़ी के भय से दूसरी पंक्ति स्मृति से उतर गई। सिर हिला-हिलाकर पढ़ना एक उथली-पुथली क्रिया थी। उसके मस्तिष्क की भीतरी तह में कोई भी अगली पंक्ति नहीं थी जो सिर खुज-लाने से ऊपर आ जाती।

"गधे के तुख्म, इधर आकर कान पकड़ ले।" मास्टर दीनगुल ने शांत भाव से कहा। तब उसने दूसरे लड़के को संकेत किया कि वह सुनाए।

दोस्त मुहम्मद, लम्बे कद और अच्छे वस्त्रोंवाला लड़का, एक बछड़े के सदृश पंक्ति से बाहर आया और उन लड़कों के समीप जाकर उसने कान पकड़ लिए, जिन्हें बकरियों की तरह लड़ने का दण्ड मिल रहा था।

दूसरा लड़का उठा। वह आंखें फाड़े विमूढ़-सा खड़ा था। बोलने का बहुतेरा प्रयत्न किया, पर वह पहली पंक्ति सुनाने में भी असमर्थ रहा। लगता था कि उसने पाठ की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया। कुछ क्षण के बाद उसने प्रयत्न भी छोड़ दिया और मानो स्वेच्छा से दण्ड भुगतकर अपने अपराध को कम करने के लिए वह दीनगुल के सामनेवाली खुली जगह पर आया और कान पकड़ लिए।

अगला लड़का अपने-आप ही उठ खड़ा हुआ। उसने तीन पंक्तियां यों दोह-राई जैसे वह किसी प्रेत के प्रभाव में हो। लेकिन चौथी पंक्ति किसी तरह याद न आई। उसने भी बाहर आकर कान पकड़ लिए।

इसी प्रकार अगले, उससे अगले और उससे अगले—हरएक लड़के ने एक-दो पंक्तियां सुनाईं, अधिक से अधिक तीन और उसके बाद चुप हो गया। तीव्र स्मरणशक्तिवाला एक ही लड़का कविता की नौ पंक्तियां सुनाने में सफल हुआ, बाकी लड़कों में से कोई दूसरा इतना भी नहीं कर पाया। सिर्फ उस लड़के

को छोड़कर जिसने नौ पंक्तियां सुनाई थी, बाकी सबने आकर कान पकड़ लिए। जिन लड़कों ने शुरू में कान पकड़े थे, वे अब तक अपने ही धड़ों के बोझ तले कांप रहे थे और कुछ तो सुबक रहे थे, रो रहे थे और उनके आंसू पसीने में मिल रहे थे।

मुझे अपने सहपाठियों पर दया आ रही थी और निकट था कि आंखों में सहानुभूति के आंसू डबडबा आते। कारण दरअसल सहानुभूति नहीं, मास्टर का भय था।

"ओ बाबूजी के बेटे, मसूर की दाल खानेवाले, इधर आओ।" मास्टर ने मुझे सहसा चौंका दिया, "अगर तुमने कायदा घर पर पढ़ा है तो नज्म सुनाओ।"

जब से मैंने गणेश की नकल करना शुरू की थी, मां और बच्चे की यह कविता मुझे जबानी याद थी। जब से मैंने उसे पिता से कायदे में पढ़ा था, मैं समय-असमय प्रत्येक व्यक्ति को सुना चुका था। फिर भी मैं भय से इतना घबरा गया था कि मेरे मुंह से एक शब्द भी न निकला।

"बाबूजी, इधर आकर कान पकड़ो !" मास्टर ने हुक्म दिया।

यह सुनते ही मानो आत्मरक्षा की भावना से अनुप्रेरित होकर, मैंने मास्टर से कहा कि मुझे कविता आती है और मैंने सुनाने का प्रयत्न किया। एक बार शुरू होने की देर थी, फिर तो शब्द फर-फर मुंह से निकलते रहे और जैसाकि घर पर दोहराते रहने से आदत पड़ गई थी, मैंने कविता भावुकतापूर्ण संगीतमय स्वर में सुना दी। जल्दी-जल्दी पढ़ने के कारण मेरा उच्चारण ठीक नहीं था और तीन पंक्तियां भी छूट गई थी, जिनपर मास्टर ने ध्यान नहीं दिया।

मास्टर दीनगुल ने मुझे बैठने का इशारा किया। खुद वह उठा और लोहे की खुरीवाला अपना एक भारी जूता उठाकर कान पकड़नेवालों के बीच गया और गरजा, "ऊपर, ऊपर, अपनी कमरें, अपने चूतड़ ऊपर उठाओ, [illegible] कुत्ते के तुख्मो !" और जो ऊपर उठे हुए नहीं थे, उन्हें अपनी जूती से [illegible] मे ट- हुआ वह पंक्ति के एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूम गया। के

मैं बैठ गया, मन कुछ स्वस्थ था। थोड़ी देर मैंने बाहर कुछ [illegible] से अपनी सफलता में मग्न था और इस बात पर खुश था [illegible] डरा तीन पंक्तियां छूट गई थीं और जो अब मुझे याद आ[illegible]
ध्यान नहीं गया। सुबह से जो परेशानी उठानी पड़ी

और मेरा मन उत्साह और गर्व से भर गया।

"छोटे हिन्दू, इधर आ !" मास्टर ने पुकारा। मेरी तंद्रा टूटी और मैं आत्म-श्लाघा के जिस संसार में उड़ रहा था, वह नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

यह सोचते हुए कि अब क्या नई मुसीबत आनेवाली है, मैं भयभीत-सा हड़-बड़ाकर उठा।

"इन सबको पांच-पांच चपत लगाओ।" मास्टर ने घोषणा की और साथ ही लड़कों से कहा, "गधो, उठकर अपनी-अपनी जगह पर जाओ। यह मसूर की दाल खानेवाला छोटा-सा लड़का तुम्हें शर्मिंदा करेगा, ताकि तुम कल अपना सबक अच्छी तरह याद करके आओ।"

मैं असमंजस में पड़ गया। जहां लड़कों को चपत लगाकर अपना महत्त्व बढ़ जाने की खुशी थी, वहां दूसरी ओर डर भी था। इससे पहले मैंने किसीको चपत नहीं मारी थी, उलटा गणेश हमेशा मुझे चपत लगाता था और जब कभी मैं जिद करता था तो मां लगाती थी।

"जाओ और उन्हें चपत लगाओ।" मास्टर ने कहा।

मैं दोस्त मुहम्मद के करीब पहुंचा; लेकिन उसे चपत लगाने का साहस न कर सका। मेरे होंठ कांप रहे थे और मैं इधर-उधर देख रहा था।

"लगाओ !" दीनगुल गरजा।

मैंने पहले लड़के को एक, दो, तीन, चार चपत लगाए और जल्दी से आगे बढ़ा।

"पांच !" मास्टर चिल्लाया, "तुम्हें गिनती न आती हो तो मैं सिखाऊं।"

मैंने पलटकर दोस्त मुहम्मद के एक और चपत लगाई। तब मैंने अगले लड़के को पांच चपत लगाई और उससे अगला लड़का अली था, क्योंकि उन्हें कद के अनुसार बैठाया गया था।

"आहिस्ता लगाना।" अली ने मेरी ओर देखते हुए याचना और चुनौती के मिले-जुले ढंग से कहा।

मैंने उसे हलके-हलके चार चपत लगाईं और पांचवीं मेरी अपनी इच्छा के विपरीत उसकी आंखों पर लगी। तब मैंने उससे अगले लड़के को पांच चपत लगाई। अब मेरा अपना हाथ थक गया था और मैं लड़कों के चेहरों को अपनी हथेली से छू-भर देता था।

के बाद से मेरे प्रति द्वेष-भाव रखता है।

'गणेश जल्दी आ जाएगा और वह मुझे पिटने से बचाएगा।' मैंने सोचा।

फिर मुझे यह भी खयाल आया कि गणेश, अली का दोस्त है। अली का साथ छूट जाने के भय से उसने मुझे सुबह गाली दी थी।

'मुझे घर पहुंच लेने दे, फिर उसे मजा चखाऊंगा।' मैंने अपने मन में सोचा, 'मैं बा'जी को बताऊंगा कि गणेश ने मुझे गाली दी थी, अली मुझे पीटना चाहता था और मैं उन्हें मास्टर के बारे में भी बताऊंगा। हां, मैं इन सबके बारे में बताऊंगा। और अगर हर रोज इसी तरह पिटना है तो मैं फिर इस स्कूल में नहीं आऊंगा।...'

दो छोटे लड़के मुझसे हमदर्दी जताने आए।

"आओ, तुम हमारे साथ चलो।" एक ने मुझे तसल्ली देते हुए कहा।

हमदर्दी पाकर मेरे आंसू उमड़ आए।

इसी समय गणेश आ गया।

उसे देखते ही मैं सुबकने लगा।

"ओहो, क्या हुआ? क्या हुआ?" गणेश ने पूछा।

"मास्टरजी ने इसे तमाम लड़कों को चपत लगाने के लिए कहा, क्योंकि उन्हें सबक याद नहीं था।" एक छोटे लड़के ने बताया, "इसने चपत ज़ोर से नहीं लगाई, इसलिए मास्टर ने इसे पीटा। और अब लड़के अपना बदला लेना चाहते हैं।"

"चलो।" गणेश ने सहमे हुए कहा। वह घबरा गया था।

मैं गणेश की अंगुली पकड़कर उठा और चलते-चलते अपने बायें हाथ की मुट्ठी से आंखें पोंछ रहा था, जो रोते-रोते सूज गई थीं।

अली और उसकी मंडली कहीं नज़र नहीं आई।

गणेश ने यह कहकर कि अब कोई खतरा नहीं, मुझे जल्दी-जल्दी चलने को उकसाया।

हमदर्दी जतानेवाले दोनों लड़के अपने घरों की ओर चले गए।

गणेश और मैं अब्दुल रहमान का ईंधन का स्टाल पार करके पलटन को जानेवाली पगडंडी पर आ पहुंचे।

ज्योंही हम खुले मैदान में दाखिल हुए कि अली, दोस्त मुहम्मद और दो

दूसरे पठान लड़कों ने घात से निकलकर मुझे घेर लिया।

"तुमने हमें चपत क्यों लगाई ?" अली ने मुझे गणेश से छीनकर पूछा।

मैंने चिल्लाना और उससे छूटने के लिए हाथ-पांव पटकना शुरू किया।

अली ने मेरे मुह पर एक ज़ोर का चांटा रसीद किया। एक पठान लड़के ने एक चपत और लगाई।

मैंने अली की टांग पकड़ ली और उसमें अपने दांत गहरे गाड़ दिए जो नन्हे बुलडौग के तौर पर मेरी ख्याति के अनुसार थे।

अली ने पलटकर मेरे सिर पर ज़ोर का घूसा मारा और दोस्त मुहम्मद ने पेट में ठोकर जमाई।

ठोकर लगने की देर थी कि मैं चकराकर धरती पर गिर पड़ा।

"एक और लगाओ !" एक पठान लड़के ने कहा।

अली मेरी ओर बढ़ा, लेकिन गणेश ने उसे रोक लिया। "लगाओ, लगाओ, एक और लगाओ !" लड़के चिल्ला रहे थे जबकि अली खड़ा दांत पीस रहा था।

गणेश भय से पीला पड़ा मिन्नत-खुशामद कर रहा था।

दफ्तर का एक अर्दली मालकंड दस्ते की अंग्रेज़ी बारक, लालकुर्ती, से हमारी पलटन की ओर जा रहा था। उसने मेरी चीखें सुन ली और वह मेरी सहायता को दौड़ा।

अली और उसकी मंडली भाग गई।

अर्दली ने मुझे और गणेश को पहचान लिया, क्योंकि वह साहब का संदेश लेकर हमारे घर आया करता था।

उसने मेरे कपड़े झाड़े और मुझे उठाकर चला। गणेश पीछे-पीछे आ रहा था। उसने जब सारा किस्सा सुनाया तो सिपाही को मुझपर बड़ी दया आई।

हमदर्दी पाकर मैं पहले से भी अधिक रोने और सुबकने लगा और जब रोते-रोते थक गया तो सिपाही के कंधे से लगकर सो गया।

३

स्कूल में पहले ही दिन जो आघात लगा, उसे भुलाने में कुछ दिन लगे। लेकिन जब पिता ने मुझे अपने साथ दिल्ली ले जाने का वाद[illegible] यह

प्रक्रिया तेज़ हो गई। दिल्ली में बादशाहे-इंग्लिस्तान और शाहंनशाहे-हिन्दुस्तान जार्ज पंचम और उनकी मलिका मेरी की ताजपोशी का दरबार था और पिता उसमें ३८वें डोगरा दस्ते के साथ जा रहे थे।

मेरा स्कूल का अनुभव चाहे अच्छा नहीं रहा ; लेकिन पिता का खयाल था कि जब मैं इन महान व्यक्तियों को देखूंगा तो विलायत और साहबी के प्रति मेरा अनुराग और बढ़ेगा। जब से मां ने मुझे बहलाने के लिए कहा था कि मेरी धर्म-माता परी विलायत चली गई है, इंगलैंड के प्रति मेरा अनुराग दिनोंदिन बढ़ रहा था।

बच्चे का अस्थिर और चंचल मन किसी भी कल्पना का रंग ग्रहण कर लेता है। लेकिन छावनी का तो समूचा वातावरण ही ऐसा था कि उसपर ऊंचे पदों-वाले साहब लोग छाए हुए थे। वे सबसे अलग-थलग ठाट से रहते थे। चिकें और ऊंची-ऊंची झाड़ियां मक्खी, मच्छरों और देसी लोगों से उनके बंगलों की रक्षा करती थीं। वे चुस्त और बढ़िया कपड़ों में कभी-कभी बाहर निकलते और रहस्यमय ढंग से चुपचाप इधर-उधर घूमते थे। वे कुछ ऐसे विचित्र जान पड़ते थे क अर्दलियों, बैरों और दुकानदारों की गप्पों के अलावा उनके बारे में कुछ भी ाानना-समझना मुश्किल था। मैं ज्यों-ज्यों बड़ा हो रहा था, साहबी के ऊपरी ठाट-बाट को एक हठी और उद्दंड बालक की भांति ग्रहण कर रहा था।

हमारे घर से कोई पचास गज़ परे एक मैदान में फौजी बैंड सुबह, दोपहर और दोपहर के बाद अभ्यास किया करता था। पहले-पहल अंग्रेज़ी संगीत मुझे निर-र्थक कलरव-मात्र जान पड़ा ; लेकिन जब मैंने क्लेटन की उन पुस्तकों में चित्रों की लिखावट पढ़ना सीख लिया, जिन्हें देखकर वह बंसरी बजाया करता था और ड्रम-मेजर ने मुझे अपने हाथ से ढोल बजाने की छूट दे दी, तो अंग्रेज़ी नाच की धुनों पर मेरे पांव जंगली पशु की तरह थिरकने लगे और 'होम स्वीट होम' अथवा 'गाड सेव दि किंग' आदि गीतों पर शरीर झूमने लगा। फौजी बैंड की ये ही मुख्य धुनें थीं। तमाम नफीरियां और शहनाइयां और पीतल और आबनूस के दूसरे अजीबो-गरीब बाजे बड़े ही चमकीले और सुन्दर दिखाई देते थे। जब मैं हिन्दुस्तानी ईसाई बैंड मास्टर, मिश्ता जान को लोहे के स्टैंडों पर खुले पड़े पन्नों पर अपनी छड़ी इधर-उधर घुमाते देखता तो वह या तो इतना भद्दा होता और या फिर इतना श्रेष्ठ कि मेरी अपनी नकलों में किसी तरह ठीक न बैठता था। मैं

अपनी तेज चीखों, शोर-शराबे और खाली पीपे की खट-खट से सारा घर सिर पर उठाए रखता था।

इसके अलावा मैं अपने घर के पासवाले खुले मैदान में हर रोज सिपाहियों की परेड देखता था। परेड अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी अफसर कराते थे; लेकिन पलटन के साहब हर सुबह उसका निरीक्षण करने आते थे। सूरज की पहली किरन के साथ ही मैं बगलों में हाथ दबाए अपने घर के बाहर आ खड़ा होता और सिपाहियों की परेड और कवायद देखता। कुर्तों और नीकरोंवाले भद्दे रंगरूटों को छाती निकालकर और सिर ऊंचा करके खड़ा होने को कहा जाता। अगर वे कोई गलती करते तो घुटनों पर ठोकर पड़ती या मुंह पर चपत। अपनी आंखों के सामने यह अत्याचार होते देख मैं खरगोश की तरह सहम-सा जाता। सधे हुए सिपाहियों को अफसर के आदेश 'लैफ्ट-राइट-लैफ्ट', 'क्विक मार्च', ''स्टैंड-इटीज़' और 'आर्डर अप' का कठपुतलियों की तरह पालन करते देख मैं खुश होता और जी चाहता कि मैं भी सिपाही बन जाऊं। 'होलदार' लछमनसिंह और उसके शिष्य सफेद वास्कटें और पतलूनें पहने हुए व्यायाम के जो खेल दिखाते थे, वे बड़े ही आकर्षक और विचित्र थे। वे अपने अंग्रेजीपन के कारण सदर बाजार में होनेवाली देसी ढंग की कुश्तियों से कहीं बेहतर थे। उनका कौशल प्रोफेसर राममूर्ति की सर्कस मंडली के खेलों जैसा था, जो मैंने एक बार देखे थे और किसी सर्कस में भर्ती हो जाने की कामना की थी।

और उन साहबों से अधिक आकर्षक तो कुछ भी नहीं था जो साइकलों या फटफटियों पर आते थे। वे खाकी वरदियां और धूप-टोपियां या बढ़िया नीले-पीले सूटों और फेल्ट हैटों में आते, रेशमी रूमालों के साथ अपने माथों और गर्दनों से पसीना पोंछते और तम्बाकू की सुगंध में लिपटे होते। लाल चेहरे और नीली आंखें निकट से देखकर भय की मूल भावना दूर हो गई और उसका स्थान आश्चर्य और प्रशंसा ने ले लिया। धीरे-धीरे बोलते और मुस्कराते हुए-से वे मुझे सहृदय जान पड़ते थे। पिता ने हमें बता रखा था कि चूंकि उन्हें अशांत वातावरण पसंद नहीं है, इसलिए उनके सामने या उनके निकट जरा भी शोर करने के बजाय दूर से सलाम करके आगे बढ़ जाना चाहिए। मेरे माता-पिता, सिपाही, बाजेवाले, छोटे मुलाजिम, बाजार के बनिये और कस्बे के दुकानदार—अपने देसी लोगों की तुलना में अंग्रेज साहब इतने भिन्न और आकर्षक जान पड़ते थे कि

हमारे दिल्ली जाने की सारी तैयारियां पूरी हो चुकी थीं।

पिता अपने पद के अनुसार 'काले' हवलदार की वरदी पहन सकते थे; पर वे अपने इस अधिकार को बहुत कम प्रयोग में लाते थे। अब उन्होंने लाल आरेंट, नीला जाकिया और पट्टियां और ३८वें डोगरा दस्ते के पीले और नीले रंगों की पगड़ी निकालकर उन्हें हवा लगवाई। फिर जब उन्होंने यह वरदी पहनकर सब घरवालों को दिखाई तो वे इतने अच्छे लग रहे थे कि हम चाहते थे कि वे हमेशा यही वरदी पहनें। दिल्ली जाने के सम्बन्ध में सभी शकुन अच्छे थे।

पिता के ये ठाट देख मुझे बड़ा गर्व हुआ। जहां तक मेरा अपना सम्बन्ध है, मैं एक अंग्रेज लड़के का सूट पहनना चाहता था, लेकिन घरवालों के बहुत समझाने-बुझाने पर मैंने पेशावरी टोपी, जरीदार जूते और वह नीली मखमली अच-कन पहनना स्वीकार कर ली, जिसपर सुनहरी काम हुआ था और जो हरीश के ब्याह के समय बनी थी और अब छोटी पड़ती जा रही थी।

लेकिन रवानगी से एक दिन पहले पिता पलटन के हस्पताल में खांसी का मिक्सचर लेने गए और डाक्टर घसीटाराम ने उन्हें गलती से कोई जहरीली दवा दे दी। उसी रात वे इतने बीमार पड़ गए कि प्राण खतरे में पड़ गए। डोगरा दस्ता दूसरे दिन हमारे बिना ही रवाना हो गया।

सौभाग्य से मां ने उन्हें कै की दवा दे दी जो शरीर के समस्त रोगों की राम-बाण औषधि थी और सारा विष निकल गया।

इससे भी अधिक सौभाग्य की बात यह हुई कि मेरे पिता अधिक समय तक बीमार पड़े रहने के बजाय जल्द अच्छे हो गए और ताजपोशी से एक दिन पहले जिस स्पेशल गाड़ी में नौशहरा ब्रिगेड जनरल मार्टीमर कमांडिंग और उनका स्टाफ जा रहा था, वे भी दिल्ली जा सकते थे। मुझे नौकरों के डिब्बे में एक अर्दली के सुपुर्द कर दिया गया, क्योंकि जिस गाड़ी में 'जनैल' जा रहा था उसमें किसी हिन्दुस्तानी बच्चे का होना सैनिक अनुशासन के विरुद्ध था; इसलिए मुझे उसकी दृष्टि से ओझल रखना था।

मैं रात-भर सोता रहा। कारण यह था कि पिता की बीमारी के कारण मैं दम चिन्ता में घुलता जा रहा था कि शायद मैं दिल्ली न जा सकूं। फिर एक-दम थमने का फैसला हो गया। इससे मैं बहुत थक गया [illegible]
अर्दली ने मुझे एक कम्बल से ढाके रखा ताकि कोई साहब

लम्बी यात्रा की मुझे जो एक बात याद है, वह है 'जर्नलों' और 'कर्नलों' का भय।

दरअसल दिल्ली-यात्रा के बारे में मेरी जो स्मृति है, वह किसी न किसी प्रकार का भय-मात्र है।

मुझे वहां नहीं ले जाया गया, जहां हमारे दस्ते के सिपाही ठहरे थे। उनके लिए सफेद तम्बुओं का एक नगर बसाया गया था, जो दिल्ली के इर्द-गिर्द मीलों तक फैला हुआ था। पिता का खयाल था कि वहां रहने से मैं सबकी नज़रों में चढ़ जाऊंगा और शायद इतने शानदार उत्सव में एक विरोधी तत्व साथ लाने के अपराध में कहीं साहब उन्हें वहां से वापस न भेज दें। मैं देखता था कि कितने ही अंग्रेज़ बच्चे अपनी माताओं के साथ फिटनों में वहां जाते थे। लेकिन उस समय मुझे यह भी सिखाया गया था कि मैं हमेशा उनका छोटे साहबों के रूप में आदर करूं। उन्हें छूना मना था, क्योंकि छूने से उनके कपड़े मैले हो सकते हैं या कोई संक्रामक रोग लग सकता है। स्वभावतः यह सफेद नगर मुझे देवताओं का वासस्थान जान पड़ा, जहां सिर्फ बड़े गोरे साहब और उनके खास-खास आदमी ही ठहर सकते हैं। स्थूलकाय और भैंगी आंखवाले हवेलीराम को देखकर मुझे घिन आती थी। वह पिता का मित्र और सेक्रेटेरियट में एक क्लर्क था और मुझे उसीके सपुर्द किया गया था, क्योंकि डोगरा दस्ते के सिपाहियों के बजाय उसके बच्चों को मेरे लिए बेहतर संगति समझा गया।

ताजपोशी देखने के लिए मेरे मन में जो विशाल उत्साह और कौतूहल था उसका एकदम नष्ट होना तो सम्भव नहीं था ; पर इन अपरिचितों के साथ जो अजनबीयत महसूस हुई, उससे देखने का कुछ भी आनंद नहीं आया। जब मैं अपने अभिभावक के साथ साफ-सुथरी चमचमाती सड़क पर, जिसकी दोनों ओर गुलदाऊदी के फूलों और घास की क्यारियां थीं, तांगे में जा रहा था, तो मैं पूरी खुली आंखों से इधर-उधर ताक रहा था, देख रहा था, लोगों की भीड़-भाड़ थी, सर्दी की सुहानी धूप में चमकते हुए विशाल मंडप थे और राजाओं और रईसों के कैम्पों का इतना बड़ा शानदार और चमकदार दरवाज़ा था कि मैंने पहले कभी नहीं देखा था।

जब हम जा रहे थे तो कहीं से तोपों के अनगिनत धमाकों की आवाज सुनाई दी। बाबू हवेलीराम ने मुझे विश्वास दिलाया कि तोपें बादशाह की सलामी में छूट रही हैं।

"चचा, क्या उसी तरह जिस तरह नौशहरा में जर्नल साहब को [illegible] जाता है?" मैंने पूछा।

"हां, वैसे ही लेकिन यह ताजपूट दुनिया के सबसे बड़े [illegible] पंचम को दिया जा रहा है।" उसने उत्तर दिया और इसलिए कि कहीं मैं [illegible] न जाऊं, बात जारी रखी, "देखो, तोपें वहां किले में हैं।"

मैंने उस ओर देखा जिधर हवेलीराम संकेत कर रहा था। [illegible] के नगर पर और उससे परे धुंध छाई हुई थी और [illegible] के कारण कुछ दिखाई न देता था। पर सूरज ने जल्द ही [illegible] को छिन्न-भिन्न कर दिया और किला दिखाई देने लगा।

"मैं तुम्हारे भाइयों को वहां स्कूल के बच्चों में छोड़ [illegible] ने शहर के दरवाजे पर हरी, पीली और गुलाबी [illegible] हुए कहा, "मैं तुम्हें उनके पास छोड़ दूंगा और वे तुम्हें [illegible]"

तांगा रुकते ही बाबू हवेलीराम ने सवारी को [illegible] कर हांपते हुए एक गली में से चक्करदार सीढ़ियां चढ़ [illegible] बेटों के पास पहुंच गया। काले रंग का बारह वर्षीय [illegible] ऐनक लगाए हुए था और दूसरा मेरा हमनाम और [illegible] में कुरूप था।

मेरे मन में हवेलीराम के प्रति जो घिन थी, वह उसके बेटों के [illegible] घृणा में बदल गई, विशेषकर इसलिए कि अपनी गुलाबी [illegible] में वे मुझे एक ऐसा अजनबी समझते थे जो उनके [illegible] गया हो।

मैं वहां दक्षिण के बातूनी, चहचहाते और प्रसन्न बच्चों में [illegible] अपने आपको अकेला और दुखी महसूस कर रहा था। भूख और पिता के वियोग के कारण मैं अधीर हो उठा और इतने जोर से रोने-चिल्लाने लगा [illegible] कभी नहीं चिल्लाया था।

जुलूस पहले ही शुरू हो चुका था। [illegible] मास्टर आया और उसने मुझे [illegible] को खराब न करूं। [illegible] था, मैं और [illegible]

ऐसी जगह बैठा दिया जहां से मैं जुलूस को भली प्रकार देख सकता था; लेकिन मैं अब भी अकारण सुबक रहा था।

घंटों बाद देखते-देखते थकी हुई, आंसुओं से तर और भयभीत आंखों से मैंने विशाल जनसमूह को जुलूस के रूप में उन शानदार दरवाज़ों में से गुज़रते देखा, जो सुनहरे-सफेद महीन कपड़ों और कागज़ की रंगदार झंडियों से सजाए गए थे। सबसे आगे मार्च करते हुए सिपाही, फिर तोपखाना और फुरतीले घुड़सवार थे और फिर एक व्यापक कानाफूसी की भिनभिनाहट में एक फिटिन आ रही थी। मास्टर ने लड़कों से तालियां बजाने को कहा। लेकिन मुझे मालूम नहीं था कि स्वागत करने का उचित ढंग क्या है। और मैं जैसे-तैसे, कलगीदार हैटोंवाले अफसरों के दरमियान, जो सलूट के लिए हाथ उठाए हुए थे और जो लगामें खींचकर घोड़ों को धीरे-धीरे चला रहे थे, मैं दुनिया के सबसे बड़े जर्नेल बादशाह जार्ज पंचम को पहचानने का प्रयत्न कर रहा था। मैं उसे तो नहीं देख पाया, लेकिन मैंने सुन्दर सजीली अंग्रेज महिला, महारानी मेरी की एक झलक देख ली, जो रंगारंग के फूलों से लदी और टोकरी जैसा हैट पहने एक खुली फिटिन में बैठी थी। उसके पीछे फीरोज़ी पगड़ियों और लम्बे सफेद कुर्तोंवाले कई महाराजे और कोचवान थे, जो बर्फ जैसे सफेद चमड़े की काठियोंवाले काले घोड़ों पर सवार थे।

"यह हरामी कौन है ?" मास्टर ने जुलूस निकल जाने के बाद पूछा।

बाबू हवेलीराम के बेटे इतने घमंडी थे कि उन्होंने मेरी किसी प्रकार ज़िम्मेदारी नहीं ली। दरअसल जब मास्टर लड़कों को सीढ़ियों के नीचे जानेवाले उस दरवाज़े पर ले गया, जहां उन्हें मिठाइयां और कारोनेशन मेडल मिलना था, तो उन्होंने मुझे पीछे छोड़ दिया।

यों पीछे छूट जाने और लड़कों के संकेतों की लज्जा के मारे मैं फिर ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।

कुछ देर मैं वहीं खड़ा रोता रहा। तब मैंने महसूस किया कि अगर मैं चचा हवेलीराम के बेटों के साथ नहीं गया तो कभी घर नहीं पहुंच पाऊंगा।

मैं घबराया हुआ उनके पीछे दौड़ा।

मिठाई और मेडल बांटनेवाले ने मुझे भी मेरा हिस्सा दिया।

मैं लेकर जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतरने लगा। लेकिन मज़बूत लड़कों की

बगवद ने मुझे रोक दिया। मैं धीरे-धीरे उतरा। गुम्बज के अंधेरे में कोई मेरी मिठाई छीनकर ले गया। खाली दोना मेरे हाथ में रह गया और मैं रोने लगा। कुछ दूसरे लड़कों की मिठाई भी इसी प्रकार छिन गई थी और सब रो रहे थे। लेकिन एक मास्टर चिल्लाता हुआ आया और हम रोते-चिल्लाते और गिरते-पड़ते नीचे उतरे।

गली में पहुंचते ही मैंने इधर-उधर दौड़ना और लड़कों के चेहरे देखना शुरू किया, ताकि मैं मन्नू और कृष्ण को पहचान सकूं, जिन्हें मैंने कुछ ही देर पहले पहली बार देखा था। यह सम्भव नहीं था, क्योंकि हजारों लोगों की हलचल-भरी भीड़ में पाना कठिन था। काली टांगों और कठोर बगोंवाले दक्षिणियों की धक्कापेल से मैं एक अजनबी दुनिया में खो गया और फिर चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया।

पुलिस के एक सिपाही ने मुझे पकड़ लिया और पूछा कि मैं क्यों चिल्ला रहा हूं और किसका बेटा हूं। जो कुछ मैंने बताया, वह सब व्यर्थ था। चाहे हिन्दुस्तान का हरएक आदमी दूसरे हरएक आदमी को जानता है, पर इस सिपाही ने न तो '३०वीं डोगरा के बाबू रामचन्द' का और न ही 'दिल्ली और शिमला के बाबू हवेलीराम' का नाम सुना था। सिपाही मुझे अपने साथ ले गया। उसने मुझे रोटी और दलिया खिलाया, मेरे कपड़ों और जेवरों की प्रशंसा करके मुझे चुप कराने का प्रयत्न किया। तब वह मुझे एक मोटे और ठिगने सुनार के हवाले करके चला गया।

अब मैं थकान और दुःख से निढाल था और मैं सुनार की दुकान में दरी बिछे खुरदुरे तख्तों पर पड़कर सो गया।

दोपहर के बाद हवेलीराम मुझे 'ढूंढने' निकला और बाजार में पूछता हुआ सुनार की दुकान पर आया। मुझे उसे दे दिया गया। मैं अब भी आधा सोया हुआ था, और वह मुझे अपने कंधे पर उठाए हुए शाम के खाने के समय घर पहुंचा।

वहां आकर मैंने वह बढ़िया और स्वादिष्ट भोजन किया, जो दोपहर से मेरे लिए रख छोड़ा था। हवेलीराम की पत्नी घर में नहीं थी; इसलिए उसकी छोटी लड़की ने मेरा मुंह धोया, मुझे गोद में सुलाया।

थी।

अब हवेलीराम के लड़कों का व्यवहार भी मैत्रीपूर्ण था। वे मेरे बहलाने को बहुत-से खेल-खिलौने लाए। अब मैं बहुत थक गया था और मुझे नींद आ रही थी; इसलिए सांप और सीढ़ी के खेल ही में मेरी आंख लग गई, जो अगली सुबह खुली।

पिता को मिलने के चाव में मैं उठ बैठा; बिस्कुटों के साथ गर्म-गर्म चाय पी और चचा हवेलीराम और उसके बेटों के साथ दरबार देखने चल पड़ा।

मोटर बाजारों में से घूमती और चक्कर काटती हुई चली। रंग-बिरंगे कपड़ोंवाले दक्षिणियों को हटाने के लिए बार-बार हार्न बजाना पड़ रहा था। हम दरवाजों और मेहराबों में से गुजरे जो कल का जुलूस निकलने के बाद सूने और वीरान दिखाई दे रहे थे और तब हमने वह दृश्य देखा जो मेरे मस्तिष्क पर अंकित हो गया।

एक ऊंचे स्थान के आगे, जहां हम विशेष अधिकारयुक्त नागरिक धूप से गर्म मैदान में पंक्तियां बांधे बैठे थे, एक गोलाकार में दो बड़े मंच बने हुए थे। इसकी एक ओर एक शानदार शामियाना था, जिसके आगे सशस्त्र सिपाही खड़े थे।

सहसा बिगुल और ढोल बजने लगे। मैं उत्साह और जोश में भर उठा, क्योंकि ये ऐसी आवाज़ें थीं जिन्हें मैं बचपन से सुनता आया था। साथ ही पास के कैम्पों से पलटनें मार्च करती हुई निकलीं।

"मेरे बा'जी इनमें होंगे।" मैंने अपनी जगह से लगभग उछलते हुए गर्व से कहा।

लेकिन चचा हवेलीराम ने मुझे और अपने बेटों को, जो उत्सुकता से सवाल पूछ रहे थे, चुप करा दिया।

मेरे सामने घुड़सवार थे, जिनके भाले धूप में चमक रहे थे; पैदल दस्ते थे जिनकी पलटनों के झण्डे सुबह की हलकी-हलकी हवा में लहरा रहे थे औ शानदार और चमकदार वरदियोंवाले तोपची थे। नागरिकों की भीड़ में से आंखें फाड़े देख रहा था। मैं सेना की शान से प्रभावित था और मुझे यह गर्व थ कि मेरे पिता भी इसमें होंगे, और मैं इस निरीह विश्वास से उन्हें खोज रहा।

सा·

कि वह जो मेरी दृष्टि में हीरो था, दानवों में बड़ा दानव शीघ्र ही मुझे दिखाई देगा। मैं चाहता था कि जिस शामियाने मे अंग्रेज बच्चे हैं, मैं भी उसमें या उसके निकट होता; और अपनी सरलता मे मैं यह नही समझ पा रहा था कि मेरे पिता एक साधारण क्लर्क और काने हवालदार हैं, श्रेष्ठ साहबों में उनकी क्या गिनती !···

राजे-महाराजे बड़ी आकुलता से आए। उन्होंने मलमल और सिल्क की दरबारी पोशाकें पहन रखी थीं, जिनमें चमकदार हीरे, मोती और जवाहरात टंके हुए थे। लोग एक-दूसरे को बता रहे थे कि कौन कहां का राजा है और उसके रनिवास में कितनी रानियां और हथसाल में कितने हाथी हैं।

तमाम भारतीय सेना के बैंड मार्च की धुन बजाते हुए आए। सारी खुसर-फुसर बंद हो गई और लोग वायसराय के लिए सतर्क हो गए। वह देवता आया। उसके अंगरखे के सिरे राजकुमारों ने थाम रखे थे, जो अपने सुनहरी चोगों, कलगीदार पगड़ियों और चमकदार पोशाक मे इतने शानदार लग रहे थे कि ऐसे बच्चे मैंने पहले कभी नहीं देखे थे।

विचित्र उत्सुकता थी और प्रत्येक व्यक्ति सांस थामे प्रतीक्षा कर रहा जान पड़ता था।

चार घोड़ोंवाली एक शाही बग्घी हवा की तरह बिना किसी शोर के आई। घोड़ों पर और बग्घी के दायें-बायें लाल वरदीवाले सवार थे। जहां बड़े साहब, राजे-महाराजे और बड़े अफसर बैठे थे, धीमी-सी ताली बजी, लोग फुसफुसा रहे थे, "बादशाह और मलिका !"

"उनपर सोने का छतर है, जैसा प्राचीन युग के देवताओं पर होता था।" एक दर्शक ने कहा।

"उसने जवाहरात पहने हुए हैं।" दूसरा बोला।

"वह घुटनों से नीचे नंगा है।" तीसरे ने कहा।

लेकिन ये सारी बातें तोपों की गरज में डूब गईं और दो छोटी आकृतियां घेरे में प्रवेश करती दिखाई दीं। लोगों ने उठकर सलाम किया, जबकि प्रतिष्ठित जनों ने ताली बजाई।

बादशाह और उसकी मलिका ने झुककर दर्शकों के सलाम का जवाब दिया। वे मंच के पास आकर रुके, जबकि एक बड़ा यूनियन जैक रस्सों और चरखटियों

चढ़ाया गया, जो मुझे चमत्कार-सा लगा। झण्डा एक ऊंचे वांस पर हवा में
लगा। नंगी चांदी जैसी चमकती हुई तलवारों की सलामी दी गई और
लों के जत्थों ने मधुर संगीत छेड़ दिया।

"जब दूसरे साहव नहीं पहने हुए हैं तो उसने अपना हैट क्यों पहन रखा है?"
छा क्योंकि मुझे यह असंगति खटकी।

"शी..." वावू हवेलीराम ने होंठों पर अंगुली रखकर चुप रहने का संकेत
ा।

एकसाथ वहुत-सी नफीरियां वज उठीं, जिससे मैं और भी भयभीत हो
ा।

तव जो वैंड जमा थे उनके ढोल दड़ादड़ वजने लगे और ऐसा शब्द हुआ
ो मैंने नौशहरा में एक साहव की अर्थी पर सुना था।

वादशाह, जो बैठ गया था, वोलने के लिए उठा।

उसकी अंग्रेज़ी भाषा का मंद-सुरीला स्वर लोगों की समझ में नहीं आ रहा
और कानाफूसी शुरू हुई।

"उसके हैट में जो लाल पत्थर है, वह कोहनूर हीरा है।" एक सिख ने वावू
हवेलीराम से कहा, "जब अंग्रेज़ों ने अलीवाल में सिखों को हराया, तव से पहले
यह महाराजा रंजीतसिंह के पास था। वादशाह की दादी ने नन्हे महाराजा
दिलीपसिंह को धर्म का वेटा वनाया और उससे यह हीरा छीन लिया।"

"व्रिटिश ताज में यह सवसे चमकदार हीरा है।" वावू हवेलीराम ने कहा।

"क्यों?" मैंने पूछा।

"शी..." हवेलीराम ने मुझे चुप कराया क्योंकि वहुत से घुड़सवार, पुलिस
इंस्पेक्टर लोगों का ध्यान वादशाह के भाषण की ओर दिला रहे थे।

वादशाह का मधुर भाषण समाप्त हुआ। वड़े लोगों की तालियों के वाद मौन
का एक क्षण वीता।

अव राजे-महाराजे एक-एक करके उठने और अपने शाहनशाह को खिराज
पेश करने लगे।

लोग इस लम्वी रस्म से ऊव गए और वे आपस में वतियाने और वड़वड़
लगे। पुलिस-इंस्पेक्टर भी, जो अपने घोड़ों को इधर-उधर दौड़ा रहे थे, उ
चुप न करा सके।

सचमुच हिन्दुस्तानी बड़े ही असभ्य लोग हैं। मुझे बाद में बड़े होकर पता चला कि दिल्ली दरबार के अवसर पर भीड़ ने जो बदतमीज़ी दिखाई, अंग्रेज़ी सरकार पर उसका बड़ा खराब असर पड़ा। कहा जाता था कि न सिर्फ भीड़ ने बल्कि एक शासक, महाराजा बड़ौदा ने सम्राट का अनादर किया, क्योंकि नियम के अनुसार उसे शाहनशाह को सलाम करने के बाद दस गज़ तक उलटे पांव सिर झुकाए चलना चाहिए था; मगर वह पीठ घुमाकर और गर्दन अकड़ाकर लौटा। पिता ने बताया कि दरबार में अनुशासन का जो अभाव था, उसके कारण फौजी अफसर विशेष रूप से नाराज़ थे।

आखिर बादशाह शामियाने से निकलकर लोगों के सामने आया।

"दर्शन !" एकसाथ बहुत-से मुखों से निकला और लोगों में स्फूर्ति की लहर-सी दौड़ गई।

सब बैंड एकसाथ बज उठे।

बस, अब क्या था, वातावरण नफीरियों और ढोलों की आवाज़ से गूंज उठा।

फिर शहनाइयों की मधुर ध्वनि सुनाई दी।

तब किसीका भाषण हुआ।

"यह लाटसाहब बोल रहे हैं।"

"क्या ?" एक दर्शक ने सुनने का प्रयत्न करते हुए कहा।

वायसराय ने घोषणा की, "राजधानी कलकत्ता के बजाय दिल्ली होगी।"

"जागीरें ? उसने क्या कहा ?"

"वह क्या कह रहा है ?"

"सुनाई नहीं पड़ रहा !"

बातचीत, कानाफूसी और पूछताछ शुरू हुई और कुछ लोगों ने सिर और धड़ उठाकर दूसरों से आगे देखने का प्रयत्न किया और पीछेवालों ने प्रतिवाद किया। कौतूहल और उत्सुकता ने भीड़ के शिष्टाचार को परास्त कर दिया। मेरे जैसे बच्चे के लिए यह सब तमाशा था।

वायसराय का भाषण समाप्त हुआ तो बैंड पर 'गाड सेव दि किंग' की धुन बज उठी, जिसमें सारा शोर डूब गया।

"मेरे बा'जी वहां हैं, मैं उनके पास जाऊंगा।" मैंने कहा और मैं मैदान में चला गया।

पर इससे पहले कि मुझे गिरफ्तार किया जाता, बाबू हवेलीराम ने मुझे पकड़ लिया और मेरी धृष्टता से तंग आकर उसने मुझे मेरे पिता के कैम्प ले जाने का निश्चय किया।...ज्योंही उसने मुझे उठाया, उसकी भैंगी दृष्टि मेरी नंगी बांहों पर पड़ी। मैंने सोने के कंगन पहन रखे थे और पिता ने हवेलीराम से कह दिया था कि वह उन्हें उतारकर अपने घर पेटी में रख ले। लेकिन वह कल मुझे अपने बेटों के पास छोड़ते समय उतारना भूल गया था और वे गायब थे।

"तुम्हारे कंगन कहां हैं ?" उसने भय से कांपते हुए पूछा। अब वह मेरे कारण बहुत परेशान था।

मेरा दिल डूब गया और मुझे लगा कि पिता मुझे उसी तरह पीट रहे हैं जिस तरह हरीश को लाहौर में भंगी लड़कों के साथ खेलने के कारण पीटा था। मैं पिता के सामने जाने के क्षण को सोचकर रोने लगा। अब मैं उनके पास जाना नहीं चाहता था।

मगर मुझे जाना पड़ा, क्योंकि बाबू हवेलीराम को अपनी जिम्मेदारी का त्रास था।

मेरे लिए भयंकर बात यह हुई कि पिता दरबार में भाग लेने के कारण फूले हुए थे; वे मुझे देखकर बड़े प्रसन्न हुए और प्यार करते हुए 'बुल्ली, बुल्ली, बुल्ली, मेरा बेटा...' की निरर्थक लोरी गाने लगे। लेकिन जब बाबू हवेलीराम ने उन्हें अलग ले जाकर कंगन खो जाने की बात बताई तो उनका चेहरा उतर गया।

अपने दस्ते के साथ ताजपोशी में भाग लेने के कारण उन्हें जो अपनी इज्जत बढ़ जाने का हर्ष और गर्व था, कंगन खो जाने की खबर सुनते ही सब फीका पड़ गया। उन्हें मुझे साथ लाने का दुःख हुआ। उन्हें कुछ तो अपने खज़ांची, मेरी मां का डर था, जो उन्हें पैसे और ज़ेवर के बारे में पहले ही लापरवाह समझती थी; कुछ इसलिए कि वह एक थोड़ी आमदनीवाले व्यक्ति थे, जो अपनी इच्छाएं और आवश्यकताएं कम करके धन जोड़ते थे और फिर मैं शनि में पैदा हुआ बताया जाता था और वह अपनी तर्कबुद्धि के बावजूद इस दुर्घटना को इसी ग्रह का प्रभाव समझते थे। उनका खयाल था कि यह अशुभ घटना आनेवाली मुसीबतों की शुरुआत है।

इङ्गलैण्ड के बादशाह और हिंद के शाहनशाह की सेना का एक सदस्य होने के कारण पिता को जो इज्जत प्राप्त थी, वह बड़े काम आई।

उन्होंने मुझे मार-झिड़ककर मेरे गुम हो जाने के समय की सारी कहानी सुनी और ठीक उस आदमी का पता लगा लिया, जिसने मेरे कंगन चुराए थे। उन्होंने पलटन से सिपाहियों का एक दस्ता लिया और उस दुकान पर पहुंचे जहां संतरी मुझे छोड़ गया था, और दुकानदार से उसका नाम-पता पूछा। बनिया फौज के तीसरे दर्जे के तरीके तो शायद जानता था, पर अव्वल दर्जे के तरीकों से वह परिचित नहीं था। सवाल का जवाब देने से पहले ही सिपाही उसे पीट रहे थे। वह दोबारा गिड़गिड़ाया और बोला कि मैं पुलिस लाइन मे चलकर संतरी को पहचान देता हूं, क्योंकि शहर के दरवाज़े पर हमेशा ड्यूटी होने के कारण मैं उसे जानता हूं। हिन्दुस्तान में सेना पुलिस से अपना महत्त्व अधिक समझती है, विशेषकर इसलिए कि सैनिक की तनखाह सिपाही से अधिक होती है और पुलिस की वरदी भी कुछ खास नहीं होती।

संतरी, जो सम्पत्ति को अपने कब्ज़े में रखकर रक्षा करने का आदी था, फौजी सिपाहियों के दस्ते को सामने खड़ा देख सच्चाई और ईमानदारी का अवतार बन गया। उसने कहा कि मैं कंगन अमुक गली में अमुक सुनार को संभला आया हूं, क्योंकि दरबार के इस अवसर पर दिल्ली में इतने ठग, गुंडे और भिखारी हैं कि अपने पास रखने से उनके खो जाने का भय था। उसने और स्थानीय थानेदार ने हमारे साथ मेहमानों का सा व्यवहार किया और हमें दूध और मिठाई खिलाए बिना आने नहीं दिया। संतरी बड़ा ही विनम्र था और उसने कहा कि मैं सुनार से कंगन लाए देता हूं। लगता था कि सुनार ने गलती से तोड़-मरोड़ दिया है ताकि वह ज़ंग लगने से बच रहें।

"सोना," उसने मेरे पिता से कहा, "ज़ेवरों के बजाय डलियों में अच्छा रहता है।"

निश्चय ही इस सीख को मैंने कभी नहीं भुलाया, क्योंकि इसके बाद मैंने कभी सोने का ज़ेवर नहीं पहना।

४

अगर मेरी जन्मपत्री के अनुसार, जो पंडित वालकृष्ण ने ज्योतिप के सव लक्षण देखकर वनाई थी, मैं शनि के प्रभाव में था तो मेरे पिता उससे कहीं अधिक अशुभ ग्रह के प्रभाव में थे, मेरी मां उससे भी अशुभ के और मेरे भाई हरीश, गणेश और शिव वुरे से वुरे नक्षत्रों के प्रभाव में थे, क्योंकि उसके वाद घटनाओं पर घटनाएं घटित होती रहीं, जिन्होंने हमें व्यक्तिगत और पारिवारिक रूप से प्रभावित किया। सुख और शांति के वे दिन, जो मेरे माता-पिता ने कभी देखे थे, फिर लौटकर नहीं आए; चाहे मेरी मां कई साल तक मंगल के ग्रह को टालने के लिए हर मंगल के दिन नाई को तेल और शुक्र देवता को प्रसन्न करने के लिए शुक्र के दिन व्राह्मण को भोजन खिलाती रही।

हमारे दिल्ली से लौटने के कुछ दिन वाद मेरे पिता रसोईघर में दौड़ते हुए आए। वे अपनी आदत के अनुसार शाल में लिपटे हुए 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' पढ़ रहे थे। उन्होंने घवराए हुए स्वर में मेरी मां से कहा कि वहुत ही भयानक वात हुई है।

"वायसराय की कोठी के पास सड़क पर एक वम मिला है।" उन्होंने कहा, "उनका कहना है कि यह वहां फिरंगियों को मारने या घायल करने के उद्देश्य से रखा गया था।...इससे मरा सिर्फ एक हिन्दुस्तानी सिपाही है, जिसने उसे गेंद समझकर ठोकर मारी थी..."

"तुम्हारे खयाल में इसे किसने रखा होगा?" मां ने विना घवराए शांत भाव से पूछा।

"संदेह है कि षड्यंत्रकारी वंगालियों ने रखा है। वे कलकत्ता के वजाय दिल्ली को भारत की राजधानी वनाने के विरुद्ध हैं। सरकार का खयाल है कि भारत में अंग्रेज़ी राज समाप्त करने की वहुत वड़ी साजिश है।"

"तो?" मां वोली।

"अखवार ने लिखा है कि साजिश में वही लोग शामिल हैं, जिन्होंने लार्ड कर्ज़न के वंगाल-विभाजन पर आंदोलन चलाया था और आर्यसमाज के सदस्य।"

"इसमें भयंकर क्या है?" मां ने उपेक्षाभाव से कहा, "इन अंग्रेज़ों के साथ वैसा ही व्यवहार हो रहा है जैसाकि होना चाहिए। वे भी तो अपने आगे किसी-

को कुछ नहीं समझते। न उनका कोई धर्म है न मर्यादा। सिखों को कितना बुरं तरह मारा! जब उन्होंने देशद्रोहियों को इनाम बांटा तो मेरे पिता की आधं जमीन उनके अन्याय के कारण हाथ से निकल गई। नीच, खसमखाने!"

"तुम मूर्ख हो!" पिता ने चिढकर कहा, "समाज..."

"क्या कोई समाजी पकड़ा गया है?" मां ने पूछा।

"नहीं, उन्होंने सिर्फ एक बंगाली, रासबिहारी बोस, को पकड़ा है।" पिता ने उत्तर दिया, "लेकिन वे समाजियों को भी जल्द पकड़ेंगे।"

"हमसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं।" मा ने कहा, "तुमने कुछ नहीं किया। क्यों? किया है?"

"तुम नहीं समझतीं।" पिता ने त्यौरी चढ़ाकर कहा, "मैं आर्यसमाज का प्रधान हूं। ये पहाड़ी लोग, चत्तरसिंह और दूसरे हमेशा इस बात की ताक में रहते हैं कि साहब से मेरी चुगली लगाएं। वे मुझसे जलते हैं; इसलिए शायद साहब के कान भरें।"

"मुझे तो समाज में कोई खराबी नज़र नहीं आती।" मां ने कहा, "आखिर इन बाबू लोगों ने तुम्हें इसीलिए प्रधान बनाया है कि तुम उन सबको अधिक शराब पिलाते हो। तुम सब इससे अधिक बुरी बात कुछ नहीं करते कि तुम ताश या शतरंज खेलते और रण्डियों का मुजरा देखने जाते हो।...यह मत समझो कि मुझे इन बातों का पता ही नहीं..."

"पगली औरत! आर्यसमाज के आदर्श बहुत ऊंचे हैं, जो स्वामी दयानन्द ने इसे दिए हैं।"

"शराबखोरी और रण्डीबाज़ी, मेरा खयाल है..." मा ने व्यंग्य किया।

"नहीं।" पिता ने प्रतिवाद किया, "स्वामी दयानन्द हमें वैदिक काल में ले गए। वे एक ऋषि थे। उन्होंने हिन्दुओं से कहा कि मूर्ति-पूजा छोड़ो..."

"नास्तिक!"

"मूर्ख, तुम तो ऐसा कहोगी ही। वे अन्धविश्वास, छोटी उम्र के ब्याह और जाति-पांति के विरुद्ध थे, और वे चाहते थे कि हम प्राचीन आर्यों का गौरव वापस लाएं।"

"और मेरा खयाल है, वे फैशन के भी पक्ष में थे।"

हम हंसे क्योंकि और बातचीत तो चाहे हम सम

जानते थे कि मीटिंगों में जो बाबू इकट्ठे होते थे, वे कालर और नेकटाई लगाते थे।

"ऐसी मूर्खता की बातें बच्चों के मस्तिष्क में मत डालो।" पिता ने माता को झिड़का, "तुम्हें मालूम है कि मैं पलटन में और सदर बाजार के पढ़े-लिखे लोगों में अपनी पोज़ीशन बनाने के लिए आर्यसमाजी बना हूं। आखिर हम ठठेरों का नीच धन्धा करनेवाले हैं और इस बिरादरी का ठप्पा हमारे साथ लगा हुआ है। इसके अलावा अगर कोई दफ्तर से आकर किसी प्रकार के क्लब में न जाए तो वह क्या करे ?"

"अपने सफेद बालों को धन्यवाद दो।" मां ने कटुता में भरकर कहा। "इसीलिए तुम्हें सब 'चाचा' कहते हैं और तुम बाबुओं और सदर बाज़ार के दुकानदारों में अपनी लोकप्रियता की आड़ में शराबखोरी और रण्डीबाज़ी को छिपा लेते हो। उन्हें कैसा अच्छा नेता मिला है !"

"मूर्ख मत बनो !" पिता ने कहा, "सरकार समाज को षड्यंत्र और विद्रोह का अड्डा समझती है। तुम्हें मालूम है कि लाला लाजपतराय आर्यसमाजी हैं और 'पगड़ी संभाल ओ जट्टा' की ख्यातिवाले अजीतसिंह भी।"

मां ने शरारत से 'पगड़ी संभाल ओ जट्टा' क्रांतिकारी किसान-गीत गाना शुरू किया। यह किसानों से कहता है कि तुम सीधे खड़े हो जाओ और अपनी पगड़ी का ध्यान रखो, क्योंकि हिन्दुस्तान में पगड़ी ही प्रतिष्ठा का प्रतीक है।

मां से कोई सहानुभूति न पाकर पिता हताश लौट गए।

उन्होंने उस सुबह अपना डम्बलों का व्यायाम नहीं किया और बिना भोजन किए ही दफ्तर चले गए।

दोपहर बाद लौटे तो उन्हें बुखार की शिकायत थी और वे पांच दिन तक बीमार रहे।

यह अच्छा ही हुआ क्योंकि इस कारण वे बाजार नहीं गए और इस संदेह से बचे रहे कि वे किसी संदिग्ध संस्था अथवा उसके किसी सदस्य से बात करते हैं।...

लेकिन इस बम-कांड के बारे में पिता की चिन्ता अभी दूर नहीं हुई थी कि

एक और घटना घटित हुई, जिससे उनकी नींद हराम हो गई, स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया और घर पर, जहा हम बच्चों की चीखें और कहकहे, उनकी अपनी भारी आवाज और मां की मिन्नत-समाजत और झिड़कियां गूजती रहती थीं, आतंक छा गया।

कारण यह कि कुछ पठान ऐसा स्वांग भरकर कि वे गौओं और बकरियों के रेवड नजर आएं, हमारी बारकों से परे की छोटी पहाड़ियों पर उतरे। सुबह का समय था और बारकों और पहाड़ियों के दरमियान बहनेवाली नदी पर धुंध छाई हुई थी। कहा जाता था कि उन्होंने पहरा दे रहे सिपाहियों की मुश्कें बांध मुह में कपड़ा ठूस दिया और मैगजीन से सत्तर राइफलें लूटकर फिर पहाड़ियों में जा छिपे।

"ये ससमखाने कितने बहादुर हैं!" मा ने कहा।

"उनकी प्रशंसा मत करो, कोई सुन लेगा।" पिता ने उसे सतर्क किया।

"क्यों नहीं? वे मेरे साथ हमेशा भाइयों का बर्ताव करते हैं। मैं आधी रात को पुल के नीचे से गुजरी हू और उन्होंने कभी आख उठाकर भी मेरी ओर नहीं देखा।"

"मूर्ख! कोई सिपाही या भिश्ती सुन लेगा और फिर बात को फैलते देर नहीं लगती। क्या तुम नही जानतीं कि सरकार या तो बगाली बम से डरती है या फिर सीमाप्रान्त के कबायलियों के आक्रमण से?"

"तो फिर क्यों फिरंगी आकर दूसरों की धरती पर कब्जा जमाते हैं?" मां ने कहा। उसे लुटेरे विदेशियों के विरुद्ध अपने पिता की बात भूली नहीं थी, जिन्होंने उसकी जमीन उसके देशद्रोही भतीजे हरिजसिंह को दे दी थी।

"यह सच है कि उन्होंने दूसरे लोगों की धरती पर कब्जा किया है।" पिता ने कहा, "लेकिन तुम यह नही समझतीं कि जब उन्होंने कब्जा कर ही लिया तो अब मुश्किल हो से जाएंगे। वे जितनी देर यहा हैं, डरते हैं। यही कारण है कि हमारी पलटन यहा पत्थरों में पड़ी हुई है, और यही कारण है कि सीमा पर सड़क के चप्पे-चप्पे पर पुलिस का पहरा है। तमाम इलाका मेम, साहबों और उनके बच्चों के लिए बंद था, सिर्फ हाल ही में खुला है।"

"उन्हें डर किस बात का है?" मां ने किसान की सहज बुद्धि से कहा। "उनके पास फौज भी है और तोपें भी हैं। बेचारे पठानों के पास तो ले-देकर

एक-दो देसी बंदूकें हैं।"

"सुंदरई, तुम नहीं समझतीं। वे वजीरियों, मुसलमानों और दूसरे कबायलियों को दबाने में कभी सफल नहीं हुए।" पिता ने कहा, "फिर उन्हें रूस का डर है, जिसका बादशाह उनके कथनानुसार हमारे समृद्ध देश को हथियाना चाहता है।"

"रूस के बादशाह के बारे में मैं कुछ नहीं जानती। लेकिन यह उदार फिरंगी फरीदियों और वजीरियों को हमेशा गोलियों का निशाना बनाने के बजाय कुछ टुकड़े और वस्त्र दें। तुम जानते हो कि गरीब हमला तब करते हैं जब वे भूखे होते हैं, लेकिन अमीर अपनी शक्ति दिखाने के लिए उन्हें दबाते हैं?"

"यह ठीक है कि अगर उन्हें कुछ भी मौका दिया जाए तो बड़े अच्छे लोग हैं।" पिता ने कहा, "वे बड़े स्वाभिमानी हैं, अभी हिंसक और अभी विनम्र। वे मित्र के मित्र और शत्रु के भयंकर शत्रु हैं..."

"हां, फिरंगियों के भयंकर शत्रु; पर उनका शत्रु कौन नहीं है?" मां ने कहा।

"लेकिन तुम जानती हो और मैं भी जानता हूं कि वे पीढ़ी दर पीढ़ी लड़ते रहे हैं। फिर वे बड़े धर्मोन्मादी और पीर की बात पर मर मिटनेवाले हैं।"

"वे धर्म का आदर करते हैं और इसीलिए पीरों को मानते हैं।" मां ने प्रतिवाद किया, "लेकिन जब हमारे महाराजा रंजीतसिंह ने उनपर विजय पाई तो वे हमारे मित्र बन गए।"

"वे अपनी लुंगियों और तुर्रों से पागल एक उत्तेजित भीड़ हैं और अंधाधुंध गोलियां चलाते हैं।"

"वे रेशम कातते और बुनते हैं, इतना प्यारा रेशम!" मां ने कहा।

"अच्छा, अच्छा, यहां बैठकर उनकी तारीफ मत करो।" पिता चिढ़कर बोले, "इन पहाड़ियों में हम सबके लिए खतरा है। यह भिड़ों का छत्ता है। काश, इस मूर्ख जनरल ने मार्च का हुक्म न दिया होता! अंग्रेजी सरकार लोगों पर यह सिद्ध कर देना चाहती है कि दिल्ली में हिन्दुस्तान के शाहनशाह का अभिषेक हो चुका है और अब उन्होंने भिड़ों के छत्ते को छेड़ दिया है।"

"अब वे पठानों से अपनी शत्रुता का फल चखेंगे।" मां ने कहा और वह मसूर में से कङ्कर चनने लगी।

यों तराशे गए थे कि बकरी-दाढ़ी नजर आती थी, उनका पक्का मित्र बना रहा। बाबू की घबराहट देखकर वह उनके लिए गर्म चाय मंगवाता। वह उन्हें प्रसन्न करने हमारे घर आता, मुझे और मेरे भाइयों को पैसे और मिठाइयां देता और मां को फल और सब्जियां भिजवाता था।

दफ्तर से लौटते समय वे एक और अफसर हवलदार सुरजनसिंह से भी अवश्य मिलते थे। वह इतना मोटा था कि उसकी आंखें आधी बंद होतीं और उसकी सांस यों चढ़ी रहती जैसे अपना भारी पेट उठाए फिरने में उसे बड़ा कष्ट करना पड़ रहा हो। सुरजन पिता का 'पुराना नम्बरिया' यार था क्योंकि वे दोनों एक ही साल में भर्ती हुए थे। पिता जब मिलते तो उससे दूर ही से मजाक करते और फिर निकट आकर उसके पेट में अगुलियां खबोते या फिर घंटों खड़े गम्भीर स्वर में बातें करते। इसलिए वह उपयोगी था और पलटन में काफी लोकप्रिय था। यह लोकप्रियता कुछ तो उसे अपनी स्थूल काया के कारण प्राप्त थी और कुछ इसलिए कि जो लोग उसके पास आकर बैठते थे वे उसके हास-परिहास से प्रसन्न होते थे।

कई बार पिता सफाचट चेहरे और साफ-सुथरे कपड़ोंवाले पलटन के पुरोपंडित जयराम से भी बातें किया करते थे। लेकिन पुरोहित अपनी जाति के अधिकांश व्यक्तियों की भांति धूर्त और पाखंडी था। जाने क्यों, पिता के प्रति वह अपने मन में द्वेष रखता था। हिन्दुस्तानी अफसरों और दफ्तर के क्लर्कों से साज़-बाज़ करके उसने अंग्रेज अफसरों में उनके रसूख को कम करने का प्रयत्न भी किया था। कुछ हिन्दुस्तानी अफसरों को पिता से शिकायत थी कि उनके कागज आगे नहीं भेजे गए और क्लर्क इसलिए नाराज़ थे कि पिता हेडक्लर्क थे और जब तक वे दफ्तर से अवकाश प्राप्त नहीं कर लेते, उनकी तरक्की रुकी रहेगी; लेकिन चूंकि उनका सीधा पिता से काम पड़ता था, इसलिए वे खुल्लमखुल्ला उनका विरोध नहीं करते थे। पंडित जयराम को किसी पूर्वज के श्राद्ध पर न्योता देकर खुश किया जाता था और उसकी उपद्रवी प्रवृत्तियों को प्रतिषड्यंत्रों द्वारा वश में रखा जाता था।

पिता की रक्षा-अरक्षा दरअसल हमारे 'छोटे पिता' चत्तरसिंह, जिनका चेहरा दाढ़ी से ढंपा हुआ था, के रवैये पर निर्भर करती थी। माता-पिता की गुप्त बातचीत से, जो हमें उससे और गुरदेवी से अलग नहीं करना चाहते थे, हमने यह

समझ लिया था कि पिता को असल खतरा चत्तरसिंह से था, क्योंकि वह उन्हें निकालकर खुद पलटन का हेडक्लर्क बनना चाहता था। लेकिन उसकी यह अभिलाषा इसलिए पूरी नहीं होती थी, क्योंकि उसे अंग्रेज़ी भाषा पर अधिकार प्राप्त नहीं था, जिसका प्रत्येक शब्द उसकी दाढ़ी में खो जाता था। अमृतसर चर्च मिशन हाई स्कूल के हेडमास्टर श्री जेम्स फर्बर की शिक्षा के कारण मेरे पिता की अंग्रेज़ी बहुत अच्छी थी और उन्होंने गर्मियों में दोपहर के बाद और सर्दियों में शाम को अंग्रेज़ी पुस्तकें पढ़कर लिखने का भी अभ्यास कर लिया था।

फिर भी चत्तरसिंह बड़ा भारी खतरा था। पिता इस क्वार्टर-मास्टर क्लर्क के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाए रखने का प्रयत्न करते थे। वे उसे प्रेम से सी० एस० ओ० (चत्तरसिंह ओबराय नाम के प्रारम्भिक अक्षर) कहकर बुलाया करते थे। वे उसे अपने साथ सैर को ले जाते और पांच-सात साल में अपने अवकाश प्राप्त कर लेने की अस्पष्ट और निराधार बातें करते। मां उसकी पत्नी, गुरदेवी से घनिष्ठता बढ़ा रही थी, जो कभी-कभी उनसे दूर हट जाती थी। उसने न सिर्फ पति की अभिलाषा को अपनी अभिलाषा बना लिया था, बल्कि अपना कोई बच्चा न होने के कारण वह मां से डाह करती थी, जिसने चार लड़के पैदा कर दिए थे मगर वह आक्रमण के बाद से मां के पास बराबर आ रही थी और उसकी ओर से कोई खतरा नहीं था। और हम 'ओह कुछ' कभी मां से और कभी गुरदेवी से लेकर बहुत प्रसन्न थे।

पलटन में कुछ दूसरे लोग भी थे, जिन्हें प्रसन्न रखना जरूरी था ताकि वे घृणा न फैलाएं। एक पलटन का शस्त्रकार, सिराजदीन था, जिसे पिता तैमूर कहकर पुकारते थे, क्योंकि वह धर्मोन्मादी मुसलमान जिसकी दाढ़ी मेहंदी रंगी थी, तीसरे अफगान युद्ध में मोर्चे पर जाते हुए गाड़ी से गिर पड़ा था और तब से लंगड़ाकर चलता था। फिर पलटन के स्कूल का हेडमास्टर हनुमतसिंह था, जो लम्बे कद का गम्भीर नौजवान था और जिसकी सत्यप्रियता के कारण घनिष्ठता बढ़ाना सम्भव नहीं था। और फिर पतला-दुबला चुगलखोर बाबू घसीटाराम था, जो कम्पाउंडर से डाक्टर बना था। वह वास्तव में ४४वीं तोपखाना पलटन से सम्बन्धित था। अगर वह उस आदमी के विरुद्ध कानाफूसी शुरू करता...क आर्यसमाज में लोकप्रियता उसे खलती थी, तो पलटन में उसका

पड़ सकता था। इसके अलावा इस छोटी-सी दुनिया में, जहां प्रत्येक व्यक्ति साहब का कृपापात्र बनकर ज़्यादा इज़्ज़त पाने के लिए साज़िश करता था, बहुत-से 'घास के सांप' थे।

मेरे पिता उन सम्भावनाओं पर खूब विचार करते थे, जिनके कारण वे साहबों की दृष्टि में गिर सकते थे। भोजन करते समय वे बहुत ही गम्भीर और भययुक्त स्वर में इस विषय पर मां से बात किया करते थे। उनके सिर पर अपने पकड़े जाने की सनक सवार थी, जिसके कारण उनकी भौंह सिकुड़ी रहती थी और जिसके कारण वे हम बच्चों को कभी खूब प्यार करते और कभी क्रोध में डांटते।

बड़े दिन का क्रिस्मस का त्यौहार आया तो तनातनी कुछ कम हुई। उस दिन एक अर्दली फलों का एक टोकरा और एक रहस्यमय बक्स लेकर पहुंचा जो पलटन के आफिसर कमांडर ने ब्रूट, बुल्ली और बिट्टी को भेजा था।

मेरे पिता की खुशी का ठिकाना न था क्योंकि क्या यह उपहार 'कर्नल ब' के सद्भाव का संकेत नहीं था! वे मुस्कराते-हंसते आंगन में भाग रहे और पुकार रहे थे, "लड़को, आओ, और देखो कर्नल लौंगडन साहब ने तुम्हारे लिए क्या भेजा है।"

गणेश और मैं बैठक में बैठे स्कूल का काम कर रहे थे, सुनते ही तुरंत उठकर भागे। जब हमारे और शिव के नाम का बक्स खोला जा रहा था, तो हम उत्सुकता से एक-दूसरे को कुहनियां मार रहे थे। जब पैकेट खुल गया तो हम उसपर टूट पड़े। पिता ने गालियां देकर और चपत लगाकर चीज़ों को हमारे हाथ से बचाया। पर हम कब माननेवाले थे, खोलने में सहायता करने का बहाना लगाकर चीज़ों पर से घास उतारने लगे।

शीघ्र ही खिलौने हमारे उत्सुक हाथों में थे।

सबसे पहले एक रेलगाड़ी के हिस्से निकले जिन्हें पिता ने जोड़कर एक चाभी से चला दिया। यह दृश्य देख मैं खुशी से चीख उठा और शिव को जगा दिया। तब गुलाबी मुख और नीली आंखोंवाली एक सुन्दर गुड़िया थी, जिसके बारे में मां ने कहा कि वह मेरी भावी दुल्हन जैसी है और जिस कारण मैंने

उसे छाती से लगा लिया और गनेश को छूने तक नहीं दिया। इसके अलावा मिट्टी का एक हाथी, एक ऊंट और मोम की एक बतख थी।

ये खिलौने देवताओं के देवता, 'कर्नल साहब' ने भेजे थे ; इसलिए उन्हें महात्माओं की अस्थियों की तरह बाद में सादर संभालकर रखा गया। इस समय उन्होंने मुझे इतना प्रसन्न किया कि मैं गनेश से मिल्कियत के बारे में झगड़ पड़ा और यह खतरा पैदा हो गया कि वे आगे तनिक भी आनन्द नहीं दे सकेंगे। इस विषय में संदेह की गुंजायश नहीं थी, क्योंकि मैं लाड़ला बेटा अधिक उपद्रवी और अधिक 'फैशनेबल' था। लेकिन ज्योंही मैंने उन्हें भाई से छीना, मां ने आकर कहा कि वह उन्हें देवताओं की अर्चना की खास रस्म के लिए संभालकर रखेगी। यह रस्म वह इसलिए जरूरी समझती थी ताकि देवताओं के कारण घर में अधिक बरकत आए।

"मैं लूंगा, मैं लूंगा ! वे मेरे हैं।" मैं एक लाड़ले बच्चे की हठ से चिल्लाया और उन्हें मां के हाथ से छीन लेने का प्रयत्न किया।

"बको मत, चुप बैठे रहो। वे तुम्हें तुम्हारी मा की रस्म के बाद मिल जाएंगे।" पिता ने मुझे डांटा। वे खिलौनों को पवित्र करने के बारे में मां की योजना से सहमत थे। चाहे पिताजी आर्यसमाज के सदस्य थे, जो मूर्तिपूजा-विरोधी संस्था थी और शुद्ध और पवित्र पूजा का वैदिक युग वापस लाना चाहती थी, पर अधिकांश हिन्दुओं की भांति मेरे पिता की अपनी कोई मान्यता नहीं थी। एक निरीह ग्रामीण स्त्री की श्रद्धा से मां जो त्यौहार और रस्म मनाती थी, वे उसीमें सहमत हो जाते थे।

मैं निराश और हताश पीछे हटकर बैठ गया। जिस क्षण भाई पर विजय प्राप्त की, मैं उसी क्षण परास्त भी हुआ और मैंने अपने लकड़ी के घोड़े पर चढ़ना शुरू किया।...

उस शाम पिता ने 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' अलग फेंक दिया और वे आत्मतुष्टि में मुस्करा रहे थे। उन्होंने वह घर की बुनी दूध जैसी सफेद शाल टांगों पर डाल रखी थी, जो वे आम तौर पर थोड़ी सर्दी से बचने के लिए ओढ़ा करते थे। एक गावतकिया सफेदीपुता दीवार के साथ पड़ा था, पिता उसपर झुके आराम से बैठे थे और एक टीन के लैम्प का मद्धिम प्रकाश दरी-बिछे फर्श पर पड़ रहा था। वे शान्ति और विनम्रता की मूर्ति बने बैठे थे

उन चित्रों और कार्टूनों के बारे में सोच रहे थे, जो उन्होंने आफीसर-मैस के 'टैटलर' और 'बाइस्टैंडर' की पुरानी प्रतियों से काटकर दीवार पर चिपका दिए थे। इन चित्रों में सुन्दर स्त्रियां थीं जो लम्बी-लम्बी पोशाकें और सिरों पर मुकुट पहने हुए थीं और घोड़ों पर सवार शिकार की ड्रेस में लार्ड और लेडियां थीं, जिनके पीछे शिकारी कुत्तों की टोलियां थीं।

"कर्नल बहुत अच्छा आदमी है," उन्होंने मेरी मां से सगर्व कहा, "और उसने मुझे जो टोकरा भेजा है वह मेरे तमाम दुश्मनों के मुंह पर जूता है। अब जबकि साहब मेरी ओर है वे जहां चाहें चुगली करते फिरें। और आर्यसमाजी भी अपने समाज को रखें। मैंने अब तक सरकार की नौकरी की है और मैंने उसका जो नमक खाया है उसे हराम नहीं करूंगा।...लाओ कुछ फल खाएं।..." और उन्होंने टोकरे की ओर यों देखा जैसे ज़िंदगी में कभी ऐसे स्वादिष्ट पदार्थ न चखे हों। वैसे यह सच था कि उन्होंने कभी विलासिता नहीं देखी थी, क्योंकि बचपन में ओछी वृत्तिवाली बूढ़ी मां के कारण अच्छी चीजों से वंचित रहे और सतर्कता के कारण खुद भी कभी महंगे पदार्थ नहीं खरीदते थे। इसलिए हमारे घर में फल कभी-कभी ही आते थे; या तो उस समय जब मां खुद बाजार जाती और अधिक पके हुए सस्ते केले खरीद लाती थी या फिर जब कोई टोकरा उपहार में आता।

"तनिक रुको!" मां ने जैसे रसोई की जेल से निकलते हुए कहा, "तुम भी बच्चों की तरह बेसब्र हो जाते हो।"

वह एक चौकी लाई, जो उसके मन्दिर का काम देती थी और जिसपर विभिन्न देवताओं की पीतल की छोटी-छोटी मूर्तियां थीं। श्यामवर्ण कृष्ण भगवान थे, जिनके कारण मेरा नाम रखा गया था, जो टांग पर टांग रखे राधा के पास खड़े बंसरी बजा रहे थे। हाथी के सिरवाले बुद्धि और समृद्धि के विचित्र देवता गणेश थे, जिनपर मेरे बड़े भाई का नाम रखा गया था। विष्णु भगवान थे। लोहे की एक छोटी-सी सूली से लटके हुए ईसा मसीह थे, जिनकी ज़बान बाहर को निकली हुई थी। मां ने यह मूर्ति एक 'नन' से मांगी थी। कमल के आसन पर बैठे हुए पीतल के बुद्ध थे; और आगा खां का एक बड़ा चित्र था जो मां के कथनानुसार कृष्ण, विष्णु और राम के अवतार थे और अपने-आपको हज़रत मुहम्मद के वंशधर बतानेवाले इस्माइली सम्प्रदाय के पीर थे और जो हमारी

ठेरा बिरादरी के घरेलू भगवान थे। और दूसरे छोटे देवता थे। सबपर पानिदा था, सब पंक्ति में सजे हुए थे और उनके आगे जो धूप जल रही थी उसकी सुगंध में लिपटे हुए थे। भगवद्गीता, जपजी साहब, एक अंग्रेजी 'अजील' और कुरान की एक प्रतीक प्रति, सब एक-दूसरी से सटी पड़ी थी, बल्कि एक दूसरी को चौकी से धकेल रही थी क्योंकि कर्नल लौंगडन के भेजे हुए खिलौने भी अब मंडल में रख दिए गए थे।

"हो-हो'''हा-हा!" पिता ठहाका मारकर हसे। जब मांगने पर भी मन-चाही वस्तु न मिली तो उनकी आलोचक भावना भड़क उठी, "लड़को! देखो, देखो! तुम्हारी मां पागल हो गई।"

मा ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। वह धूपदान मूर्तियों के आगे और खिलौनों और फलों पर हिलाती और मन्त्र पढ़कर प्रार्थना करती रही। अन्त में उसने हाथ जोड़े और सिर झुकाकर देवताओं को प्रणाम किया।

"हा-हा!" पिता फिर हंसे। यह हंसी आधी शरारत और आधी परेशानी की थी। "यह वाकई पागल है। यह ईसू मसीह, विष्णु, कृष्ण, कुरान और जपजी को एकसाथ पूजती है। लड़को, यह पागल है, एकदम सौदाई।"

मा ने अपनी प्रार्थना जारी रखी। वह कभी मेरे पिता के उपहास से पीली पड़ जाती थी और कभी अंतर्चेतना से मुस्कराती थी। आखिर अपनी घायल सरलता से उसकी आंखें डबडबा आईं।

"क्या अपनी प्रार्थना शुरू करने से पहले तुम मुझे गर्म दूध और उस क्रिस्मस केक का एक टुकड़ा दोगी जो साहब ने भेजा है?" पिता ने कहा, "फिर तुम जो चाहो करती रहना।"

"अच्छा!" मा ने चिढ़कर कहा, "लेकिन भगवान से डरो। मेरी पूजा का उपहास करने के लिए कहीं तुम्हें देवताओं का शाप न लगे। अगर तुम्हारा [illegible] सिर्फ आर्यसमाज का प्रधान बनना है और जिसे तुम यह पता चलते ही [illegible] कहीं सरकार बुरा न मान जाए, झट छोड़ने को तैयार हो, तो दूसरे [illegible] अपनी प्रार्थना कर लेने दो!"

"तुम इसे धर्म बताती हो?" पिता ने कहा। "कुरान और [illegible] चढ़ाकर विष्णु की पूजा करती हो और हाथ ईसू [illegible] के आगे [illegible]"

"उन सबके पीछे भगवान तो एक है।" मा ने संकोच [illegible]

"मां, मैं भी अपना दूध ले लूं। मुझे नींद आ रही है। मैं सोना चाहता हूं।" गणेश ने पिता का पक्ष लेने के लिए धीरे से कहा।

"यह लो !" मां ने अधीरता से कहा। उसने दूध जल्दी से कांसे के कटोरों में डाला और प्लेटें फल और मिठाई से भरकर हमारे सामने रख दीं।

पिता ने सुड़ककर दूध पिया। उनकी मूंछें मलाई से भर गईं। उनकी आंखों में चमक और कंठ में कहकहा था। फल और मिठाई के हर ग्रास के साथ वे अपने शत्रुओं पर विजय सिद्ध करना चाहते थे।

मां बाहर रसोई में चली गई।

खाना समाप्त करके पिता ने कहा कि वे अब सोने जा रहे हैं।

गणेश उनके पीछे चला।

मैं अकेला बैठा खिलौनों से खेल रहा था, अब उनपर सिर्फ मेरा ही अधिकार था।

"कृष्ण, जाओ, तुम भी सो जाओ।" मां ने बरामदे से आकर रुंधे स्वर में कहा।

मैंने पलटकर देखा कि वह अपना चेहरा आंचल में छिपा रही है।

"मां, क्या बात है ?" मैं पूछना चाहता था; पर मेरी आंखों से आंसू उमड़ पड़े। मैंने अनुमान लगाया कि मां के रोने का कारण उसकी पूजा के प्रति पिता की अवज्ञा नहीं वल्कि उनके प्रति भय है। मैं नहीं जानता कि क्या था, पर उनमें किसी वस्तु का अभाव था, जो उन्हें अक्सर मलिन और क्रुद्ध बना देता था।

"मैं तुम्हारे बिना नहीं सो सकता, तुम भी आओ।" मैंने कहा चूंकि अब मैंने निश्चय कर लिया था कि पिता और माता के इस झगड़े में मुझे किसका साथ देना है।

इससे पहले मैं पिता को ही हमेशा हीरो समझता था और मां से कुछ डरता था, क्योंकि जब वह आंखें वन्द करके और तनकर प्रार्थना करती थी तो वह मुझे अपने से इतनी दूर और अलग जान पड़ती जैसे वह मेरी मां नहीं वल्कि कोई कुरूप और मृत स्त्री हो। उसकी मूर्तियां यों लगतीं जैसे उनमें देवताओं की दुष्ट आत्मा का वास हो जो मां को मुझसे छीन लेना चाहती हो। लेकिन अब मैंने महसूस किया कि उसमें और मुझमें एक प्रेम-सम्बन्ध है, जो सरल, सुन्दर, उदासीन और अविच्छेद्य है। जबकि वह चुपके-चुपके रो रही थी तो

मैंने उसके गले में बाहें डाल दीं और उसके सांवले आकुल मुख की स्निग्धता अनुभव की। देवताओं का कोई अस्तित्व ही नहीं था।...

५

हम सबके प्रति पिता के व्यवहार में अब मैंने एक विशेष परिवर्तन महसूस किया। वे कठोर और अधिक चुप रहते थे। किसी बात में कोई उनका विरोध करे तो चिढ़ जाते थे। शायद उन्हें अपने शत्रुओं द्वारा किसी नये षड्यंत्र का पता चला था, या इसका कारण अस्थायी मनोस्थिति थी। लेकिन अब वे घर से दूर रहते थे, जबकि पहले दोपहर का भोजन करके बैठ जाते और हमें पढ़ाया करते और रात के भोजन के अध्यक्ष बनते। सप्ताह के अन्त में वे कुछ दिन की छुट्टी लेकर पेशावर या अमृतसर चले जाते और मां अक्सर रोते-रोते सो जाती। और जब वे घर में होते तो काले बादल की घटा की तरह एक भय-सा छाया रहता।

मैं उस समय परिवर्तन का कारण नहीं समझता था। बाद में मालूम हुआ कि वायसराय की कोठी के पास बम की घटना के बाद से लोगों में और साहबों में जो तनातनी आ गई थी, इसका सम्बन्ध उसीसे था। पिता ने आर्यसमाज के सामाजिक जीवन से जो सहसा सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था, इसका उनके मन पर बड़ा बोझ था। हालांकि उनके विरुद्ध षड्यंत्र की सम्भावना अब भी बनी हुई थी, पर उन्होंने अपने ऊपर जो प्रतिबंध लगा लिए थे, उनसे वे बहुत खिन्न थे। तंग दिल अपढ़ हिन्दुस्तानी अफसरों की संगति और पेशावर में शराब और स्त्री से इसकी पूर्ति नहीं होती थी। सेना में छोटे दिल के लोगों की तुच्छ ईर्ष्या, नीचता और षड्यंत्रों के वे अभ्यस्त तो हो गए थे, पर उनसे घृणा करते थे।

मुझे याद आता है कि पिता के स्वभाव में इस परिवर्तन को मैंने बड़ी शिद्दत से महसूस किया। यह मेरी बढ़ने की उम्र थी और अब लाड़ले बच्चे के बजाय स्कूल का विद्यार्थी था और दूसरे दुःखों के अलावा इस विकट स्थिति के दुःख का भी अनुभव करता था।

मैंने घर के 'देवी' का स्थान स्वेच्छा ही से शिव को दे दिया था, क्योंकि मैं न्यो

चाहता था। इसके अलावा बड़े लड़के, जैसे गणेश और उसके मित्र, मुझे अपना साथी नहीं बनाते थे ; इसलिए मैं नन्हे भाई के साथ खेलता था और उसके साथ बड़े भाई के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बना लिया था। मैंने माता-पिता से 'यह न करो' और 'वह न करो' भी एक बच्चे की उसी उदासीनता के साथ स्वीकार किया था, जो एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देता है। मैंने वही मान्यताएं, वही विश्वास और वही पूर्वाग्रह स्वीकार कर लिए थे जो पिता ने अपने अनुभव से ग्रहण किए थे और चाहे वे अपनी बड़ी उम्र के कारण बचपन से बहुत आगे निकल आए थे, फिर भी हमें उन्होंने उनको अपनाने का आदेश दिया था, क्योंकि वे हमें अपने जैसा ही आदमी बनाना चाहते थे।

मैंने इस पारिवारिक संहिता को भी स्वीकार कर लिया था कि हम अपने परिवार के अनुरूप कार्य करके पिता की प्रतिष्ठा को बढ़ाएं। हमारा परिवार इज्जत और सम्मान की दृष्टि से एक आदर्श परिवार था और मैं तोते की तरह मां की नकल उतारकर गीता के श्लोक पढ़ सकता था और स्कूल में भी अच्छा था। पर अपनी मनमानी आज्ञा का तनिक भी उल्लंघन होते देख पिता जो शारीरिक शक्ति और गालियों का प्रयोग करते थे, मुझे उससे घृणा थी, हालांकि वे इसे पितृ-सत्ता का अलिखित अधिकार समझते थे और उद्देश्य हमें सुधारना था।

मुझे वह समय याद है, जब पिता ने मुझे पहली बार पीटा था। कांगड़ा पहाड़ का एक सिपाही छुट्टी से लौटा था, उसने हमारे घर एक आमों का टोकरा उपहार में भेजा। मैंने उसमें से एक बड़ा पका हुआ आम चुरा लिया। हमारे क्वार्टर के पीछे पिता ने जो सब्ज़ी की क्यारी बो रखी थी, मैं वहां बैठा इसे मज़े से चूस रहा था कि घरवालों ने मुझे गुम पाया। पिता मुझे खोजते हुए वहां आ निकले और मैं सहसा रोने लगा। पिता मुझपर झपटे और आम चुराने और उन्हें देखकर रोने के लिए मुझे दोहरी मार पड़ी। इस घटना की स्मृति-मात्र से मेरे मन में द्वेष उत्पन्न होता था। उस दिन की मार के कारण एक तो मैं हमेशा के लिए घृणा करने लगा और दूसरे इसने मुझे उद्दंड और ढीठ बना दिया। मैं एक ऐसा स्वेच्छाचारी लड़का बन गया, जिसका मन दुःख और क्षोभ से भरा रहता था। बचपन की प्रारम्भिक स्मृतियों के अतिरिक्त इस हास्यास्पद घटना से मेरे भीतर वह लावा उत्पन्न हो गया, जो मेरे लड़कपन में सक्रिय ज्वालामुखी की तरह

उबलता रहा और मेरा समस्त जीवन जैसे एक निरन्तर विस्फोट बन गया।

मुझे वह समय याद है जब अन्याय की भावना के कारण इस लावे का पहला विस्फोट हुआ। एक सुबह जब मैं स्कूल जाने के लिए अपना बस्ता तैयार कर रहा था कि पिता ने आदेश दिया कि मैं जाकर नाई को बुला लाऊ। दफ्तर जाने से पहले नाई उनकी दाढ़ी बनाने आया करता था, पर वह उस दिन अभी नहीं आया था।

"मुझे स्कूल पहुंचने मे देर हो जाएगी।" मैंने मां से कहा, क्योंकि ऐसे समय पिता से बात करते डर लगता था।

"ओ सूअर, जा और जो मैं कहता हू वह कर!" पिता गरजे।

मैंने आनाकानी की, क्योंकि मुझे डर था कि अगर मैं नाई को बुलाने चला गया तो गणेश मुझे छोड़कर स्कूल चला जाएगा। मा जो हर रोज सुबह उठकर चौका-चूल्हा आदि झाड़ू-बुहारू करती थी और समय का तनिक भी ध्यान नहीं रखती थी उसके कारण भोजन देर से बनता था और जब लम्बी प्रतीक्षा के बाद खाने बैठते तो इस प्रकार के आदेश मिलने से हम स्कूल अक्सर देर से पहुंचते। ऐसे समय मास्टर की बेंत मस्तिष्क मे उभर आती जो सर्दी की ठंड और धुंध मे सचमुच की मार से किसी तरह कम भयंकर नही होती थी। स्कूल के लम्बे अभ्यास ने गणेश को इस मार का आदी बना दिया था। लेकिन मुझे स्कूल मे जो दो-चार बार पिटना पड़ा था, उसका मेरे मन पर इतना आतंक छाया था कि बेंत की कल्पना-मात्र से मेरी आखों में आसू आ जाते थे।

"तुम कहना नही मानोगे?" पिता ने अपने भारी शरीर को झटककर कहा। डम्बल-व्यायाम के कारण वे पसीने से सराबोर थे। "उठो, जाओ।" वे गरजे और उन्होंने मुझे खड़ाऊं की ठोकर मारी।

उनके कर्कश शब्द सुनते ही मैंने सुबकना शुरु कर दिया था। ठोकर खाकर चीखने लगा।

मुझे रोता देखकर पिता आपे से बाहर हो गए और मेरे मुह पर जोर का चांटा रसीद किया।

"ओह, मैंने क्या किया है? मुझे क्यो पीटा जा रहा है?" मा की सहानुभूति

चाहता था। इसके अलावा बड़े लड़के, जैसे गणेश और उसके मित्र, मुझे अपना साथी नहीं बनाते थे ; इसलिए मैं नन्हे भाई के साथ खेलता था और उसके साथ बड़े भाई के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बना लिया था। मैंने माता-पिता से 'यह न करो' और 'वह न करो' भी एक बच्चे की उसी उदासीनता के साथ स्वीकार किया था, जो एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देता है। मैंने वही मान्यताएं, वही विश्वास और वही पूर्वाग्रह स्वीकार कर लिए थे जो पिता ने अपने अनुभव से ग्रहण किए थे और चाहे वे अपनी बड़ी उम्र के कारण बचपन से बहुत आगे निकल आए थे, फिर भी हमें उन्होंने उनको अपनाने का आदेश दिया था, क्योंकि वे हमें अपने जैसा ही आदमी बनाना चाहते थे।

मैंने इस पारिवारिक संहिता को भी स्वीकार कर लिया था कि हम अपने परिवार के अनुरूप कार्य करके पिता की प्रतिष्ठा को बढ़ाएं। हमारा परिवार इज्जत और सम्मान की दृष्टि से एक आदर्श परिवार था और मैं तोते की तरह मां की नकल उतारकर गीता के श्लोक पढ़ सकता था और स्कूल में भी अच्छा था। पर अपनी मनमानी आज्ञा का तनिक भी उल्लंघन होते देख पिता जो शारीरिक शक्ति और गालियों का प्रयोग करते थे, मुझे उससे घृणा थी, हालांकि वे इसे पितृ-सत्ता का अलिखित अधिकार समझते थे और उद्देश्य हमें सुधारना था।

मुझे वह समय याद है, जब पिता ने मुझे पहली बार पीटा था। कांगड़ा पहाड़ का एक सिपाही छुट्टी से लौटा था, उसने हमारे घर एक आमों का टोकरा उपहार में भेजा। मैंने उसमें से एक बड़ा पका हुआ आम चुरा लिया। हमारे क्वार्टर के पीछे पिता ने जो सब्जी की क्यारी बो रखी थी, मैं वहां बैठा इसे मजे से चूस रहा था कि घरवालों ने मुझे गुम पाया। पिता मुझे खोजते हुए वहां आ निकले और मैं सहसा रोने लगा। पिता मुझपर झपटे और आम चुराने और उन्हें देखकर रोने के लिए मुझे दोहरी मार पड़ी। इस घटना की स्मृति-मात्र से मेरे मन में द्वेष उत्पन्न होता था। उस दिन की मार के कारण एक तो मैं हमेशा के लिए घृणा करने लगा और दूसरे इसने मुझे उद्दंड और ढीठ बना दिया। मैं एक ऐसा स्वेच्छाचारी लड़का बन गया, जिसका मन दुःख और क्षोभ से भरा रहता था। बचपन की प्रारम्भिक स्मृतियों के अतिरिक्त इस हास्यास्पद घटना से मेरे भीतर वह लावा उत्पन्न हो गया, जो मेरे लड़कपन में सक्रिय ज्वालामुखी की तरह

जाता। लेकिन वहां जो लकड़ी की घोड़ियां और कूदने के तख्ते आदि थे, वे इतने ऊंचे थे कि मैं उनपर चढ़ नहीं पाता था। मैं सिपाहियों की एक कल्पित टुकड़ी की तरह तेज़-तेज़ ड्रिल करके थक जाता। तब मैं हताश लौटता और अपने छोटे, गोल शरीर को दौड़ने में असमर्थ पाता। मैं अपनी दृष्टि में और बड़े लड़कों की दृष्टि में अपने-आपको घृणित समझता। मेरा चेहरा नाई के आइने में गणेश के चपटे चेहरे की तरह शुष्क धब्बों से भरा जान पड़ता और ठेकेदार के बेटे सोहन-लाल की तुलना में—जो मेरा हमउम्र था, अंग्रेज़ी ढंग के कपड़े पहनता था और साइकल पर स्कूल जाता था और जिसे हर रोज़ दो पैसे का जेब-खर्च मिलता था—मुझे अपने हाथ छोटे और टांगें बेढंगी जान पड़ती थीं।

मैं अपने मन में यह इच्छा और प्रार्थना करता था कि एक सुबह जब मैं सोकर उठूं तो अपने-आपको सहसा लम्बे कद का एक ऐसा लड़का पाऊं, जिसके साथ दूसरे लड़के उसी तरह खेलना चाहें, जिस तरह वह कर्नल साहब के बेटे जान लॉंगडन के साथ खेलना चाहते हैं। वह एक आया और एक अर्दली की देख-रेख में नित्य सैर को आता था और प्रत्येक व्यक्ति उसे दूर ही से प्रशंसा की दृष्टि से देखता था क्योंकि उसके रक्षक कदाचित् यह आज्ञा नहीं देते थे कि साहब के श्रेष्ठ बेटे और गंदे देसी लड़कों में किसी प्रकार का सम्पर्क स्थापित हो। मैं चाहता था कि उसकी तरह मैं भी बढ़िया निकर पहनूं, स्कूल जाने के झंझट से छूट जाऊं, जैसे एक खास ट्यूटर घर पर उसे पढ़ाता है वैसे ही मुझे भी पढ़ाया करे, और मैं चाहता था कि बड़ा होकर साहब की तरह आकर्षक बनूं। पर यह चमत्कार नहीं हुआ। इसके विपरीत मुझे यह सीखना पड़ा कि जीवन की विभूतियां छावनी के अंग्रेज़ी हिस्से, लालकुर्ती में बसनेवाले साहबों के लिए हैं और देशी पलटनों के लिए अपमान है। आत्मग्लानि की कुंठा मुझे घेरे रहती जो सिर्फ शारीरिक उछल-कूद से कम होती। आह, उस लड़के का दुर्भाग्य, जिसका पिता एक सरकारी क्लर्क-मात्र हो! .....

अब एक और घटना, पहले से कहीं भयंकर घटना घटित हुई, जिसने पिता के मन को और सारे घर को अशान्त कर दिया।

पिता एक दिन यह खबर लाए कि जब वायसराय लार्ड हार्डिंग दिल्ली की गलियों में से गुज़र रहे थे तो किसीने एक मकान की खिड़की से उनपर बम फेंक दिया। लाटसाहब की टांग पर घाव आया और एक मुसाहिब मर गया। अभी

तक अपराधियों का सुराग नहीं मिला, पर सरकार का विश्वास है कि इस घटना के पीछे षड्यंत्रकारियों का जाल है और पुलिस को संदेह था कि वायसराय की कोठी में बम भी इन्हीं लोगों ने रखा था। पिता ने कहा कि सरकार का विश्वास है कि अधिकांश क्रांतिकारी आर्यसमाज से आते हैं। मेजर कार साहब ने, जो पलटन का 'ग्रजीटन' था, उस दिन पिता को बुलाकर पूछा था कि क्या वे आर्य-समाज के सदस्य हैं ? जब पिता ने स्वीकार किया कि वे कुछ समय पहले इस संस्था के सदस्य थे, तो मेजर साहब ने कहा कि अगर उन्हें नौकरी करनी है तो इस संस्था से सर्वथा अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लें।

अब मां भी घबराई और उसकी घबराहट देखकर हम भी घबराए। क्योंकि हम सिर्फ उनके शब्द सुनते थे और जो कुछ कहा जाता था, उसका अर्थ नहीं समझते थे।

"वे समाज से क्यों चिढ़ते हैं ?" मां ने पूछा

पिता उस शाम को रसोई ही में रहे और अपना आन्तरिक दुःख हम सबके सामने रखते हुए उन्होंने कहा कि सरकार इस घटना का सम्बन्ध एक विस्तृत आन्दोलन से जोड़ती है, जो आर्यसमाज से कहीं बड़े संगठन कांग्रेस द्वारा चलाया गया है। वे इसके लिए बम्बई के तिलक और एक दिल्लीवासी हरदयाल को जिम्मेदार ठहराती है। पिता ने हमें यह भी बताया कि हरदयाल लाहौर में एक विद्यार्थी था। उसे सरकार ने वज़ीफा देकर पढ़ने के लिए विलायत भेजा था। मगर उसने यह कहकर वज़ीफा छोड़ दिया कि जब उसके देशवासी इतनी उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते तो उसे भी यह शिक्षा नहीं चाहिए। वह घर लौट आया और आम बायकाट द्वारा अंग्रेज़ी राज को समाप्त करने के लिए लाहौर में भाषण करने लगा। बहुत-से लोग उसके गिर्द जमा हो गए, जिनमें दीनानाथ नाम का एक पंजाबी और चटर्जी नाम का एक बंगाली था। वह खुद तो अमरीका चला गया, पर ये दो व्यक्ति और अमीरचन्द नाम का एक स्कूल-मास्टर, देहरादून जंगल-विभाग का एक क्लर्क रासबिहारी और कुछ विद्यार्थी सरकार के विरुद्ध इश्तहार बांट रहे हैं, जिनमें लिखा रहता है कि गीता, वेद और कुरान—सब देश के दुश्मनों को मारने की आज्ञा देते हैं। पुलिस को पूरा विवरण तो नहीं मिला, पर उसका खयाल है कि बम इन्हीं लोगों ने फेंका है।

"पर तुमने तो समाज में जाना बंद कर दिया है ?" मां ने पिता को उत्साहित

जाता। लेकिन वहां जो लकड़ी की घोड़ियां और कूदने के तख्ते आदि थे, वे इतने ऊंचे थे कि मैं उनपर चढ़ नहीं पाता था। मैं सिपाहियों की एक कल्पित टुकड़ी की तरह तेज़-तेज़ ड्रिल करके थक जाता। तब मैं हताश लौटता और अपने छोटे, गोल शरीर को दौड़ने में असमर्थ पाता। मैं अपनी दृष्टि में और बड़े लड़कों की दृष्टि में अपने-आपको घृणित समझता। मेरा चेहरा नाई के आइने में गणेश के चपटे चेहरे की तरह शुष्क धब्बों से भरा जान पड़ता और ठेकेदार के बेटे सोहन-लाल की तुलना में—जो मेरा हमउम्र था, अंग्रेज़ी ढंग के कपड़े पहनता था और साइकल पर स्कूल जाता था और जिसे हर रोज़ दो पैसे का जेब-खर्च मिलता था—मुझे अपने हाथ छोटे और टांगें बेढंगी जान पड़ती थीं।

मैं अपने मन में यह इच्छा और प्रार्थना करता था कि एक सुबह जब मैं सोकर उठूं तो अपने-आपको सहसा लम्बे कद का एक ऐसा लड़का पाऊं, जिसके साथ दूसरे लड़के उसी तरह खेलना चाहें, जिस तरह वह कर्नल साहब के बेटे जान लौंगडन के साथ खेलना चाहते हैं। वह एक आया और एक अर्दली की देख-रेख में नित्य सैर को आता था और प्रत्येक व्यक्ति उसे दूर ही से प्रशंसा की दृष्टि से देखता था क्योंकि उसके रक्षक कदाचित् यह आज्ञा नहीं देते थे कि साहब के श्रेष्ठ बेटे और गंदे देसी लड़कों में किसी प्रकार का सम्पर्क स्थापित हो। मैं चाहता था कि उसकी तरह मैं भी बढ़िया निकर पहनूं, स्कूल जाने के झंझट से छूट जाऊं, जैसे एक खास ट्यूटर घर पर उसे पढ़ाता है वैसे ही मुझे भी पढ़ाया करे, और मैं चाहता था कि बड़ा होकर साहब की तरह आकर्षक बनूं। पर यह चमत्कार नहीं हुआ। इसके विपरीत मुझे यह सीखना पड़ा कि जीवन की विभूतियां छावनी के अंग्रेज़ी हिस्से, लालकुर्ती में बसनेवाले साहबों के लिए हैं और देशी पलटनों के लिए अपमान है। आत्मग्लानि की कुंठा मुझे घेरे रहती जो सिर्फ शारीरिक उछल-कूद से कम होती। आह, उस लड़के का दुर्भाग्य, जिसका पिता एक सरकारी क्लर्क-मात्र हो! .....

अब एक और घटना, पहले से कहीं भयंकर घटना घटित हुई [illegible] पिता के मन को और सारे घर को अशान्त कर दिया।

पिता एक दिन यह खबर लाए कि जब वायसराय लार्ड ह[illegible] गलियों में से गुज़र रहे थे तो किसीने एक मकान की खिड़की [illegible] दिया। लाटसाहब की टांग पर घाव आया और एक मुसाहि[illegible]

तक अपराधियों का सुराग नहीं मिला, पर सरकार का विश्वास है कि इस घटना के पीछे षड्यंत्रकारियों का जाल है और पुलिस को संदेह था कि वायसराय की कोठी में बम भी इन्हीं लोगों ने रखा था। पिता ने कहा कि सरकार का विश्वास है कि अधिकाश क्रांतिकारी आर्यसमाज से आते हैं। मेजर कार साहब ने, जो पलटन का 'अजीटन' था, उस दिन पिता को बुलाकर पूछा था कि क्या वे आर्य-समाज के सदस्य हैं ? जब पिता ने स्वीकार किया कि वे कुछ समय पहले इस संस्था के सदस्य थे, तो मेजर साहब ने कहा कि अगर उन्हें नौकरी करनी है तो इस संस्था से सर्वथा अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लें।

अब मा भी घबराई और उसकी घबराहट देखकर हम भी घबराए। क्योंकि हम सिर्फ उनके शब्द सुनते थे और जो कुछ कहा जाता था, उसका अर्थ नहीं समझते थे।

"वे समाज से क्यों चिढ़ते हैं ?" मा ने पूछा

पिता उस शाम को रसोई ही में रहे और अपना आन्तरिक दुःख हम सबके सामने रखते हुए उन्होंने कहा कि सरकार इस घटना का सम्बन्ध एक विस्तृत आन्दोलन से जोड़ती है, जो आर्यसमाज से कहीं बड़े संगठन कांग्रेस द्वारा चलाया गया है। वे इसके लिए बम्बई के तिलक और एक दिल्लीवासी हरदयाल को ज़िम्मेदार ठहराते हैं। पिता ने हमें यह भी बताया कि हरदयाल लाहौर में एक विद्यार्थी था। उसे सरकार ने वज़ीफा देकर पढ़ने के लिए विलायत भेजा था। मगर उसने यह कहकर वज़ीफा छोड़ दिया कि जब उसके देशवासी इतनी उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते तो उसे भी यह शिक्षा नहीं चाहिए। वह घर लौट आया और आम बायकाट द्वारा अंग्रेज़ी राज को समाप्त करने के लिए लाहौर में भाषण करने लगा। बहुत-से लोग उसके गिर्द जमा हो गए, जिनमें दीनानाथ नाम का एक पंजाबी और चटर्जी नाम का एक बगाली था। वह खुद तो अमरीका चला गया, पर ये दो व्यक्ति और अमीरचन्द नाम का एक स्कूल-मास्टर, देहरादून जंगल-विभाग का एक क्लर्क रासबिहारी और कुछ विद्यार्थी सरकार के विरुद्ध इश्तहार बांट रहे हैं, जिनमें लिखा रहता है कि गीता, वेद और कुरान—सब देश के दुश्मनों को मारने की आज्ञा देते हैं। पुलिस को पूरा विवरण तो नहीं मिला, पर उसका खयाल है कि बम इन्हीं लोगों ने फेंका है।

"पर तुमने तो समाज में जाना बंद कर दिया है ?" मां ने पिता को उत्साहित

करने के लिए कहा। उसे इस बात की अस्पष्ट-सी सम्भावना थी कि उसके पति को, जो कानून को माननेवाला वफ़ादार आदमी है और जिसे अपनी बिरादरी में अपने पद का गर्व है, आर्यसमाज से सम्बन्ध-विच्छेद करने के बाद भी इस घटना के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है।

"सरकार सभी पढ़े-लिखे लोगों पर संदेह करती है, क्योंकि तमाम राजद्रोही शिक्षित वर्ग के होते हैं। इसलिए वह बैरिस्टरों, क्लर्कों और विद्यार्थियों—सबपर संदेह करती है। अगर वे आर्यसमाज के सदस्य हों तो खासतौर पर।" पिता ने कहा।

"तब यह सरकार कुतिया है।" मां क्रोध में भरकर बोली, "उसे लोगों पर इतना जुल्म नहीं करना चाहिए और तुम्हें डरने की ज़रूरत नहीं। मेरे पिता की तरह सिख सूरमा और बहादुर बनो, जिसने ज़मीन तो खो दी, लेकिन हार स्वीकार नहीं की।"

लेकिन पिता, जो पहली ही घटना से इतने डर गए थे, अब कैसे भयमुक्त हो सकते थे। उन्हें हर समय कोर्ट मार्शल की आशंका रहती थी, क्योंकि जिन 'जी हुज़ूर' चापलूसों ने 'अजीटन' साहब के कान में उनके आर्यसमाज का सदस्य होने की बात डाल दी थी, वे उनके विरुद्ध कोई और षड्यन्त्र भी रच सकते हैं। उन्होंने आर्यसमाज और शहर के अपने सब मित्रों से अपने हर प्रकार के सम्बन्ध तोड़ लिए। वे अब फिर शाम को घर पर रहते और कठोर और गम्भीर घूमा करते जैसे किसी भी क्षण क्रोध से गुर्रा उठेंगे।

कहने की ज़रूरत नहीं कि हम बच्चों के लिए दूर की इस घटना में वास्तविकता सिर्फ यह थी कि हम पिता के मुख पर चिन्ता और क्रोध के चिह्न अंकित देखते थे, अखबार में इस घटना-सम्बन्धी चित्र देखते थे, या फिर पुस्तक-विक्रेता मुंशी गुलाबसिंह एण्ड कम्पनी द्वारा प्रकाशित कलैंडर में लार्ड हार्डिंग की तस्वीर हमारे कमरे की दीवार पर लटक रही थी।

इसके तुरन्त बाद यह खबर आई कि पठानों के एक गिरोह ने रावलपिंडी के स्टेशन-मास्टर का अपहरण कर लिया और उसे वापस देने के बदले एक लाख रुपया मांगा है।

पठानों को जब कभी अदालत जाना होता था या सरकार से कोई रियायत लेनी होती थी तो पिता उनके पत्र और कागज़ लिखा करते थे और कबाइली उन्हें अपने जिरगों-सम्मेलनों में बुलाते थे। इसलिए वे घबराए, क्योंकि साहब शायद यह समझें कि उन्हें स्टेशन-मास्टर के अपहरण का पता है।

मां ने यह बात सुझाई कि स्टेशन-मास्टर चूंकि हिंदू है और हमारी अपनी ही बिरादरी का व्यक्ति है, इसलिए पठानों द्वारा उसके अपहरण में पिता पर संदेह की कोई सम्भावना नहीं। पर इस प्रकार का तर्क पिता को संतुष्ट नहीं कर पाता था, जिन्हें हर रोज़ अपने विरुद्ध षड्यन्त्र का भय रहता था और जिन्हें यह विश्वास था कि साहबों को अपने देसी मुलाज़िमों पर तनिक भी भरोसा नहीं है। इस स्थिति की संतोषजनक बात सिर्फ यह थी कि जिस व्यक्ति का अपहरण हुआ था, वह कोई अंग्रेज़ मर्द या मेम नहीं थी, बल्कि एक हिन्दुस्तानी था। अगर लार्ड हार्डिंग पर बम गिराने के तुरत बाद किसी साहब या मेम साहब का अपहरण होता तो सरकार इसका सम्बन्ध अपने विरुद्ध फैले हुए देश-व्यापी षड्यंत्र से जोड़ती और तब वह भारतीयों के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई करती।

दरअसल सरकार इस घटना को कि पठान दिन-दहाड़े आने की धृष्टता करें और रावलपिंडी जैसे शहर के स्टेशन-मास्टर को, जो सीमा पर नहीं बल्कि पंजाब में स्थित है, बिना परिणाम का भय किए उठा ले जाएं, अपने राज के लिए खतरा समझती थी। और पठान एक लाख रुपये का मुक्ति-धन मांगते थे।

जनरल आफीसर कमांडिंग ने हुक्म दिया कि तमाम दस्ते ग्रांड ट्रंक रोड पर मार्च करें।

"जब पठान स्टेशन-मास्टर को शायद पहाड़ियों में ले जा चुके हैं तो सिपाहियों के सड़क पर गश्त करने से क्या बनेगा?" मां ने सहज भाव से पूछा।

"लोगों को आतंकित करने के लिए सरकार अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाहती है।" पिता ने उत्तर दिया।

"वे अपनी छूछी शक्ति का टूटा हुआ घड़ा पीटते रहें, लोगों का इसपर कुछ भी असर नहीं होगा।" मां बोली।

"यह तो तुम देख लोगी।" पिता ने कहा।

"हां, मैं देख लूंगी," मां ने तुनककर कहा, "मैं देखूंगी कि सिपाहियों की

वरदियां धूल से मैली हो रही हैं।"

उसकी बात ठीक थी। ग्रांड ट्रंक रोड पर सिपाहियों की गश्त से इसके अतिरिक्त कुछ लाभ नहीं हुआ कि उससे बच्चों का मनोरंजन होता था। सैनिक शक्ति के सम्पूर्ण कवच पर धूल की मोटी तह जम गई और जिन सिपाहियों के पैरों में छाले पड़ गए और जो थक गए थे, विभिन्न पलटनों के बैंड भी उनके दुःख को अपने शोर में डुबा नहीं सकते थे। अपहृत स्टेशन-मास्टर का अब भी कोई सुराग न मिला। सिर्फ पेशावर और नौशहरा की दीवारों पर ताज़ा मांग के इश्तहार दिखाई दिए जिनमें मुक्ति-धन की राशि बढ़ाकर दो लाख कर दी गई थी।

तब मैंने महसूस किया की भूमि पर अधिकार का अभिमान अजीब है, जो शासक को अंधा बना देता है। सरकार लोगों से इतनी कट चुकी थी कि बहुत दिनों बाद यह बात उसकी समझ में आई कि सड़क पर शक्ति के प्रदर्शन-मात्र से पठान अपहृत व्यक्ति को वापस नहीं करेंगे; और वास्तविक खोज शुरू करने की बात तो सरकार की समझ में उस समय आई, जब मुक्ति-धन बढ़ाकर पांच लाख कर दिया गया।

अब सीमाप्रांत की पहाड़ियों और खेतों में फौज के विभिन्न दस्तों ने घूमना शुरू किया और वजीरिस्तान में भी सेना भेजी गई।

हमारे घर के पास सूखी नदी की रेती से परे पहाड़ी पर एक कैम्प लगा, जिसमें सूबेदार मेजर गरकसिंह की कमांड में मेरे पिता की पलटन के कई दस्ते रखे गए। इस कैम्प से सिपाहियों के गश्ती दस्ते हर रोज़ अपहृत व्यक्ति को पहाड़ों और देहातों में खोजने जाते थे।

पिता जब सूबेदार मेजर से मिलने जाते तो कई बार हम भी उनके साथ होते। इस मिथ्या बाल-सुलभ कल्पना के अतिरिक्त कि मैं एक भयंकर खोज में भाग ले रहा हूं, मैंने इन पहाड़ियों के बदलते हुए रंगों को जानना और प्यार करना सीखा।

सुबह की धुंध के बिखरे सोने में मैंने उन्हें क्षितिज से बाग तक फैले हुए देखा है, जहां सूरज एक सफेद फूल की तरह चढ़ता था और दोपहर के बाद जब धरती-आकाश तप रहे होते, तो उनका रंग भूरे और लाल और तांबे का स्वच्छ सम्मिश्रण होता, और फिर जब हम शाम को जाते तो वे अनार की कोमल

कलियां-सी जान पड़तीं। श्रोह, जब सूर्यास्त उन्हें रात के आंचल में सो जाने का निमंत्रण देता तो उनकी चुनौती कितनी काली और विचित्र होती।

सूबेदार गरकसिंह हम बच्चों को सूखे फल, गर्म दूध और तला हुआ मास खाने को देता जब कि बड़े कबाब खाते और गटर-गटर व्हिस्की कंठ से उतारते; और यह सब एक विशाल पिकनिक-सा जान पड़ता।

कैम्प लगभग तीन महीने रहा। इस बीच मैं टेढ़े-मेढ़े पहाड़ी रास्तो से परिचित हो गया और जहां-तहां घास में जो विचित्र जड़ी-बूटियां उगती थीं उन्हें तोड़ने की कला सीख गया, और मेरे मस्तिष्क में यह गुप्त विचार आया कि छावनी के जाने-पहचाने रास्तो पर कितनी दुनियाएं हैं? पहाड़ियों पर चढ़ने और घाटियों में घूमने के लिए टांगों की कितनी शक्ति दरकार थी? हमारे घर से बाहर का विस्तृत संसार कितना हिंसक था, जिसमें सिपाहियों की ऊंची-भद्दी आवाज और जब वे पहाड़ियों में चांदमारी करते थे तो गोलियों की आवाज ध्वनित-प्रतिध्वनित होती थी।

जगमगाती पहाड़िया और उनमें छिपे खजाने जो मेरी समझ और अनुभूति से बाहर थे, मुझे इतना हर्षोन्मत्त कर देते कि मैं अक्सर उन रास्तो पर चल पड़ता जो भीतर गहराइयों में जाते थे। दूर जाते डर भी लगता फिर भी धरती पर विजय पाने की इच्छा प्रबल हो उठती और मेरी आत्मा हवा में लहरानेवाले पौधों की तरह आनंद से झूमती।

एक दिन यह खबर सुनी कि पठानों ने एक लाख रुपया लेकर रावलपिंडी के स्टेशन-मास्टर को सीमाप्रान्त के गवर्नर के सपुर्द कर दिया है। इस घोषणा के साथ ही मेरे अभियानों का अंत हो गया। जब यह मालूम हुआ कि पठान स्टेशन-मास्टर को दूर वजीरिस्तान मे ले जाने के बजाय, उसे लेकर अटक मे सिंध नदी के रेलवे पुल के नीचे महीनों तक बैठे रहे, जबकि उधर ग्रांड ट्रंक रोड पर सैंकड़ों सिपाहियों की गश्त जारी रही। इससे मेरे मन पर उनके अतुल साहस की गहरी छाप पड़ी। यह जानकर वे और भी विचित्र लगे कि उन्होंने अपने सरदार को बिना किसी सुरक्षा के खुद गवर्नर के पास भेज दिया।

हमारे लोगों के दिलों से साहब की शक्ति का भय हमेशा-हमेशा के लिए निकल गया। मेरे जैसे छोटे बच्चे भी इस बात के लिए सिपाहियों का मजाक उड़ाते थे कि उन्होंने अंग्रेजी सरकार को चुनौती देनेवाले मुट्ठी-भर पठानो से

हार मान ली है।

पर दुनिया में घटनाएं अकली नहीं आतीं।

बात यह हुई कि लार्ड हार्डिंग पर बम गिरने की घटना के कुछ दिन बाद हमारे घर में चांदी का एक चम्मच गुम हो गया। यही वह चम्मच था जिससे बचपन में हम सबको खिलाया गया था, या अंग्रेज़ी की कहावत के अनुसार यों कहिए कि यही चांदी का वह चम्मच था, जिसे मुंह में लेकर हम पैदा हुए थे। इसलिए मां के मन में चम्मच का भावनात्मक मूल्य ही नहीं था, बल्कि एक वास्तविक मूल्य था जिसे हम विरासत का मूल्य कहते हैं।

जब कोई वस्तु खो जाए तो कहा जाता है कि पहले अपने घर में ढूंढ़ो। इसलिए मां ने पहले सारे घर को छान मारा। उसने पीतल, कांसे, तांबे और चांदी के सब बर्तन रसोई से निकाले और तंदूर से राख लेकर उन्हें खूब मांजा कि कहीं चम्मच किसी कड़ाही या बर्तन में से निकल आए। तब उसने घर का सामान—मेज, कुर्सियां, चटाइयां और दरियां आदि—आंगन में निकाल जैसे वह दीवाली के दिनों की सफाई कर रही हो। लेकिन चम्मच इन चीज़ों में भी नहीं मिला। इसके बाद आंगन के एक कोने में पड़े ईंधन को कुरेदा गया। मकान का वह स्थान भी खोदा गया जहां मेरी मां डाकुओं के भय से, कीमतें गिर जाने से जिनकी संख्या बढ़ गई थी, अपने जेवर छिपाकर रखा करती थी। लेकिन चांदी का चम्मच न मिलना था, न मिला। इतने बड़े मकान में चम्मच खोजना घास के अम्बार में सूई खोजने के सदृश था।

ऐसे अवसरों पर यही होता है कि अपना घर खोजने के बाद आप चोर की तलाश शुरू करते हैं।

मां चूंकि लोगों का चरित्र समझने में बड़ी चतुर थी, इसलिए जो लोग हमारे घर आते-जाते थे, सिर्फ उनके चेहरे देखकर किसीपर संदेह करना कठिन था। अलबत्ता बच्चों से बिना इस भय के कि उनका मान भंग हुआ है, सहज में पूछताछ की जा सकती थी। इसलिए मेरे प्रत्येक मित्र को बताना पड़ा कि क्या उसने चांदी का वह चम्मच देखा है जिससे हमें बचपन में खिलाया गया था। लेकिन बड़ी उम्र के जो लोग हमारे घर आते थे, उन्हें शब्द, व्यवहार

मथवा भौंहों के संकेत से यह जताना कि वे चम्मच ले गए हैं, किसी तरह सम्भव नहीं था।

इस स्थिति में पलटन के पुरोहित पंडित बालकृष्ण की सहायता ली गई।

कहा जाता था कि पंडित बालकृष्ण लोगों के गुप्त भेद बता सकते थे, रहस्यों का उद्घाटन कर सकते थे और जन्मपत्री बनाकर न सिर्फ इस जीवन का बल्कि भावी दस जीवनों का हाल बता सकते थे और चोरों का पता लगा सकते थे। इसके अतिरिक्त सुबह और शाम की देव-पूजा कराना, हरएक दावत में प्रतिष्ठित अतिथि होना, जन्म, मरण और विवाह की रस्में अदा कराना और श्राद्ध-भोज आकर मृतकों को भोज पहुंचाने का माध्यम बनना तो सामान्य बातें थीं। इसलिए चांदी के चम्मच के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए मां ने मुझे उनके पास भेजा।

"मां कहती है कि मैं आपसे कहूं कि हमारा चांदी का चम्मच घर में खो गया।" मैंने थोड़े प्रयत्न के साथ कहा। पंडित बालकृष्ण गाय के गोबर से पुते हुए फर्श पर कमलासन मारे बैठे थे। उनके सामने लकड़ी की एक चौकी पर हमारे धर्म के बहुत-से देवता पड़े या खड़े थे। उनमें कुछ नंगे थे, कुछ को रंगदार कपड़े पहनाए गए थे और गिलट और कांच के जेवरों से सजाया गया था।

"शी......शी......" एक भक्त ने मुझे चुप रहने को कहा।

मगर खुद पंडित बालकृष्ण, जो एक नाटा और मोटा, सफेद दाढ़ी और लाल सुर्ख गालोंवाला आदमी था, मेरी ओर देखकर मुस्कराया और विभिन्न देवताओं के नाम लेकर उसने मेरा सिर पलोसा और 'जीते रहो' का आशीर्वाद दिया। उसने मुझे बैठने को कहा जबकि खुद रेशमी पर्दे के पीछे कमरे में चला गया।

देवताओं की चौकी पर कई शंख पड़े थे। मेरे जी में आया कि जिस तरह पंडित बालकृष्ण शंख बजाकर भक्तों को सुबह-शाम की प्रार्थना के लिए बुलाते थे, मैं भी बजाऊं।

लेकिन उसी समय पुरोहित लौट आया।

निकल की एक जादू की अंगूठी अपने दायें हाथ की बड़ी अंगुली और अंगूठे में थामकर उसने मेरे पास बैठकर कहा कि मैं अपनी दाईं आंख बंद करके बाईं आंख से अंगूठी के नन्हे सुराख में से उसके शीशे में देखूं।

"तुम्हें जो कुछ दिखाई दे मुझे बताना।" उसने कहा।

मैंने उसके आदेश का पालन किया। पहले-पहल मुझे कुछ नज़र नहीं आया।

तव धुंघले शीशे में एक आदमी दिखाई दिया जिसके हाथ में झाड़ू था।

"एक भंगी।" मैंने कहा।

"क्या तुम्हें कहीं चम्मच दिखाई देता है ?" पंडित ने पूछा।

"नहीं।" मैंने उत्तेजित स्वर में कहा।

सफेद दाढ़ी में छिपे अपने विना दांत के मुंह से मन्त्रों का उच्चारण करते हुए पंडित वालकृष्ण ने अंगूठी को झटका।

"दुवारा देखो और जो कुछ दिखाई दे मुझे वताओ।"

मैंने देखना शुरू किया। अंगूठी के छोटे-से सुराख में से तस्वीरें देखना ऐसा ही कौतूहलपूर्ण था जैसे वह छोटी-सी दूरवीन हो। एक क्षण वाद एक माली दिखाई दिया जिसके पास फूलों के ऐसे गमले थे जैसे शहर को जानेवाली सड़क पर वने साहवों के वंगलों में होते हैं। फिर एक मुसलमान भिश्ती दिखाई दिया जिसके कंधे पर मशक थी।

"वाग में सक्का है।"

"क्या तुम्हें कहीं चम्मच दिखाई देता है ?" पंडित ने पूछा।

"नहीं।" मैंने उत्तर दिया।

उसने अंगूठी को फिर झटका और वह अपने पोपले मुंह से मन्त्र उच्चारण करते हुए मुस्कराया। तव उसने जैसे कोई वड़ा आदमी वच्चे के साथ खेलते-खेलते ऊव जाए, सिर के संकेत से मुझे फिर देखने को कहा।

इस वार मुझे एक वड़ा मकान दिखाई दिया जिसकी दीवार पर कौवा वैठा था।

"दीवार पर कौवा वैठा है।" मैंने कहा।

"क्या तुम्हें चम्मच दिखाई देता है ?" पंडित ने पूछा।

"नहीं।" मैंने उत्तर दिया।

पंडित ने अंगूठी को अपनी धोती से पोंछा और गुनगुनाते हुए तम्वाकू की एक छोटी-सी डिविया में वंद कर दिया। तव उसने एक दूसरी डिविया निकाली, जिसमें से थोड़ी-सी नसवार दायें हाथ की छोटी अंगुली पर लेकर उसे सूंघा और आंखें वंद कर लीं।

मैंने मन्दिर में अपने-आपको अकेला महसूस किया और मैं डर गया। भक्तजन जा चुके थे, पंडित की आंखें वंद थीं और देवता मुझे अपनी ओर घूर रहे जान पड़ते

थे।

लेकिन दूसरे ही क्षण पुरोहित ने मेरे पास आकर कहा, "अपनी मा से कहना कि अगर वह चम्मच मन्दिर को देने की प्रतिज्ञा करे तो वह उसे पूर्णमासी को रात को अपने दरवाज़े पर मिलेगा।"

मैं दौड़ता हुआ घर पहुचा। मा को न सिर्फ यह सदेश दिया बल्कि यह भी बताया कि जादू की अगूठी में पहले मैंने एक भगी, फिर एक भिश्ती और अंत में मकान की दीवार पर कौवा देखा।

जो भंगी सुबह सफाई के लिए हमारे घर आता था, मां ने उसकी तलाशी ली। बक्शा का बूढा बाप लखा एक पीढ़ी से हमारे घर में काम करता आ रहा था, उसने चुपचाप तलाशी दे दी और कहा कि अगर हम चाहें तो उसके घर की भी तलाशी ले सकते हैं।

जादू की अंगूठी के चित्रों के आधार पर मां ने अपनी खोज जारी रखी। जो ब्राह्मण हमारे लिए कुएं से पानी लाता था और घर में बर्तन माजता था, मां ने अब उसकी तलाशी ली। पर चम्मच न मिला।

संदिग्ध और अनिश्चित मन से मा ने उन तमाम कौवों को जो हमारे घर की छत पर आकर बैठते थे मीठी रोटी डालना और विनम्र भाव से प्रार्थना करना शुरू किया कि वे चम्मच पूर्णमासी की रात को हमारे घर से बाहर डाल जाएं। कौवे मीठी रोटी तो शौक से खा लेते, लेकिन चोरी के आक्षेप पर काव-काव चिल्लाते और गालियां देते!

"तुम्हारी मां पागल है।" मा को ऐसी बातें करते देख पिता कहते।

लेकिन पंडित बालकृष्ण की विद्या में उसका अटल विश्वास था। दुख सिर्फ यह था कि अगर चम्मच मिल गया तो वह मन्दिर मे दान देना पड़ेगा और वह यह निश्चय न कर पाती थी कि मुझे भेजकर पडित को कहला दे कि देवता अगर चांदी के चम्मच की तुच्छ भेंट स्वीकार कर लें तो वह इसे अपना अहोभाग्य समझेगी। नाना प्रकार के सन्देह, कल्पनाए और शकुन-अपशकुन उसकी आत्मा को कोचते रहते थे। अन्त में यह सोचकर कि उसके निकट होते हुए भी उसे मिल नहीं रहा, मा से सहन न हो सका। अगर वह भगवान के हाथ में है और उसे तभी मिलेगा, जब वह उसे देवताओं को देने की प्रतिज्ञा करेगी, तो यों ही सही। उसने मुझे भेजकर पंडित को कहला दिया कि अगर चम्मच मिल गया तो वह उसे

बड़ी खुशी से देवताओं को भेंट कर देगी।

इस प्रतिज्ञा के बाद पहली पूर्णमासी को चम्मच हमारे घर की ड्योढ़ी की दहलीज़ पर मिल गया और समुचित रीति से मन्दिर में भेंट कर दिया गया।

कुछ महीने की इस भययुक्त निस्तब्धता के बाद मेरे पिता ने तनिक सुख की सांस ली और हमारे घर में खुशी लौटी।

हमारी पलटन की हाकी टीम लगभग हर हफ्ते किसी दूसरी पलटन की टीम से मैच खेलती थी। यह मैच आम तौर पर ग्रांड ट्रंक रोड के साथ-साथ बह रही काबुल नदी के किनारे आफीसर-मेस के पास खेले जाते थे। मेरे पिता इन मैचों के रेफरी होते थे। अगर वे प्रसन्न होते तो हम उनके साथ मैच देखने जाते और अगर उन्हें घर में नाराज देखते तो उनके बाद चले जाते। जिन दिनों घर में सुख-शान्ति विराजती थी, हमें घूमने-फिरने की छूट रहती थी। हाल ही में हमने इम्तहान पास कर लिए थे, मैंने दूसरी का और गणेश ने तीसरी का, और गर्मी की छुट्टियां निकट आ रही थीं। हमें घर से बहुत दूर जाने की आज्ञा नहीं थी, फिर भी अवकाश के इन दिनों में हम पलटन के हाकी मैच देखने तो जा ही सकते थे।

आफीसर-मेस और ऊंची झाड़ियोंवाले साहबों के बंगलों के निकट हाकी-मैदान की यह सैर हमारे लिए बड़ी आकर्षक थी। यह गर्व अनुभव करने के अतिरिक्त कि हम पिता को सीटी हाथ में लिए इधर से उधर घूमते देखते थे, हमें ब्रिगेड का सार-तत्त्व, साहबों का वैभव देखने को मिलता था जो अपनी टोकरीनुमा हैटोंवाली बनी-ठनी मेमों के साथ मोटर-साइकलों, तांगों और फिटिनों में आते थे।

पिता की पलटन के लम्बे बूढ़े आफीसर कमांडिंग, कर्नल लाँगडन साहब जब कभी मैच देखने आ निकलते हमारे साथ मुस्करा-मुस्कराकर टूटी-फूटी पंजाबी में बातें करते। मैच देखते हुए वे हमारे साथ अपने बच्चों की बातें करते जिन्हें पढ़ने के लिए पहाड़ पर भेज दिया गया था। और राजसी उदारता से वे हमें एक-एक रुपया थमा जाते।

पलटन के भैंगे एडजूटेंट मेजर कार में मेरी विशेष दिलचस्पी थी। बिना किसी दृश्य सहारे के उसकी बाईं आंख पर एक चश्मा लगा रहता था और मुंह में मोटा चुरट होता था। कई बार वह मुझे अपने घुटने पर बैठा लेता और दर्शकों के मनोरंजन के लिए मुझसे सिगार का कश लगवाता जिसके परिणाम-

स्वरूप खांसते-खांसते मेरा चेहरा लाल पड़ जाता।

कभी-कभी कोई दूसरा साहब हमसे बात करता अथवा कोई मेम सस्नेह मुस्करा देती।

भारतीय अफसर और सिपाही जो पंक्तियों मे बैठे मैच देख रहे होते, साहबों के इस बर्ताव से बहुत प्रभावित होते क्योंकि उनके लिए तो साहब द्वारा किसी-का सलूट स्वीकार कर लेना ही बहुत बडे सम्मान की बात थी और हमें तो वे दर-असल प्यार करते थे। अपने अफसरों का अनुकरण करते हुए वे भी हमें दुलारते।

स्वभावतः हमारे अभिमान की सीमा न रही।

विशेषकर मैं तो बड़ा ही धृष्ट हो गया जब देखता कि 'बोला' (बहरा) कनिंघम वहां नही है तो किसी भी साहब के पास जाकर बात करने में तनिक भी संकोच न करता। मैच समाप्त हो जाने पर जब पिता कुछ चुने हुए लोगों में खड़े होते तो मैं वहां भी निस्संकोच चला जाता और खानसामा से सोडे की बोतल मांगता, जो शैम्पियन और बीयर की बोतलें खोल रहा होता। और उस दिन मैच में जो हाकियां टूट गई होतीं, पलटन के दूसरे लड़कों की अपेक्षा उनपर मेरा ही अधिक अधिकार होता क्योंकि साहबों से मिलते-जुलते देख गरीब नौकरों की दृष्टि मे मेरा सम्मान बढ जाता था जो बेचारे बडे लोगों को दूर ही से रंगदार पेय पीते और देवताओं की भाषा में गिटमिट करते देखते थे।

मेरी इस धृष्टता के लिए पिता कभी मेरी प्रशंसा करते और कभी फट-कारते। यह इसपर निर्भर करता था कि आया वे मेरे जाने से साहब की नजर में ऊंचे उठ गए अथवा उनकी कुछ मानहानि हुई। लोगों के मन में साहबों का जो आतंक फैला हुआ था, अधिक सम्पर्क में रहने के कारण पिता के लिए वह एक प्रकार के सम्मान में बदल गया था, फिर भी यह एक भीति का रूप था, जो उनके प्रति आचरण में सतर्क और सावधान बनाए रखता था। उन्होने हमें हिदायत कर रखी थी कि हम साहब लोगों के जाने से पहले कभी दफ्तर में न आएं और अगर किसी विशेष काम से कभी आना पड़ जाए तो दबे पांव चुपके-चुपके आएं और ऊंचे बात न करें। और उन्होंने हमें आफीसर-मेस और साहबों के बंगले के पास जाने से खास तौर पर मना कर रखा था। पर लगता था कि अनुशासन के अतिरिक्त उनमें मानवता की भावना भी बड़ी तीव्र है, जिसके कारण उन्होंने हमें प्यार और मुस्कान पा लेने की आज्ञा दे रखी थी, विशेषकर जब वे देखते थे कि

यह वड़े का वच्चे के प्रति स्नेह है। फिर इससे उन्हें जो गर्व होता था उससे हमें उन बातों की छूट भी मिल जाती थी जिनके लिए वे हमें झिड़कते अथवा चपत लगाते थे।

हमारी मिलने-जुलने की सफलता पर उनकी प्रसन्नता की अस्थिरता और उनके भीरु व्यवहार को हमने समझ लिया था। हमें जो सदाचार सिखाया गया था, उसकी सीमाओं के भीतर हम जो चाहते थे करते थे। कभी हम साहबों को शरा-रत और उद्दंडता से सलाम करते और उनके पीठ घुमाते ही हंस पड़ते। कभी हम उनके बागीचों में घुसकर गुलाब के फूल तोड़ लाते और कभी खानसामा मुहम्मददीन से डबलरोटी या अंग्रेज़ी रोटी खाने के लिए घर ले जाते।

जब कभी विचित्र और हम बच्चों के लिए पौराणिक व्यक्ति 'डम्बरी' आ जाता तो छावनी के नीरस जीवन में कुछ सरसता आ जाती। वह एक चमत्कारी भूत की भांति बारकों में घूमा करता।

वह एक पतला-दुबला, तीखी नाक और चौड़े कंधोंवाला आदमी था। लेकिन [illegible]क। जिस विशेषता से मनुष्य तुरन्त चकित और प्रसन्न होता था, वह उसकी टा[illegible]योंवा[illegible] वर्दी थी। खाकी कमीज़, नीला कुर्ता, रंगीन चीथड़े सीकर बनाया हुआ लम्बा, पुराना पायजामा, बड़े-बड़े पैरों में देसी जूते—ये सब उन कपड़ों से बने होते थे जो सिपाही उसे भिखारी के तौर पर देते थे। उसके बारे में सबसे अनोखी और विचित्र बात उसकी लकड़ी की राइफल थी, जिसपर लगभग दुनिया के हर देश के सिक्के जड़े हुए थे। उसका कहना था कि वह हिन्दुस्तानी छावनियों का जो वार्षिक दौरा करता है, उसमें ये सिक्के साहबों से इकट्ठे किए हैं।

"डम्बरी! डम्बरी! ओह डम्बरी आया है!" सिपाही उसे देखते ही चिल्लाते। वे हंसी-मज़ाक से उसका स्वागत करते, जबकि बच्चे उसके पीछे-पीछे दौड़ते ताकि उसकी राइफल लेकर उसपर जड़े हुए सिक्कों को देखें।

डम्बरी इस स्वागत का उत्तर सहसा रुककर "ऑर्डर अप! शो आर्म्स! टंडा टीज़!" कहकर देता था। फिर आप ही आप इन आदेशों का पालन करते हुए वह अपनी राइफल कंधों तक उठाता और उसके कुंदे पर इतने ज़ोर की चोट लगाता कि चिड़ियां और कौवे उड़ जाते। और वह राइफल को यों अकड़कर पकड़ लेता जैसे सिपाही परेड ग्राउंड में साहब के आने पर पकड़ते हैं।

अपने इन अद्भुत करतबों के लिए वह प्रत्येक व्यक्ति से उसकी हैसियत के

अनुसार पुरस्कार चाहता था, जैसे सिपाही से इकन्नी, हवलदार से अठन्नी, हिन्दुस्तानी अफसर से रुपया और अंग्रेज अफसर से पाच रुपये तक।

अगर कोई व्यक्ति पैसे के अलावा कपड़ा भी देता तो वह खुशी से उछलता हुआ राइफल के और करतब दिखाता, जो व्यायाम के अंत में सिपाहियों द्वारा बोरों के सामान्य अभ्यास का वृहद रूप होता।

इसपर दर्शक खेल समाप्त कराने का प्रयत्न करते या फिर उसे कोई अंग्रेजी गीत सुनाने की प्रेरणा देते। वह नरक के जबड़ों की तरह मुह खोल देता या तो किसी अंग्रेजी टामी गीत 'टिप्परेरी' या किसी डोगरा पहाड़ी गीत की हास्यानुकृति प्रस्तुत करता।

जब कोई एक बार उसे पैसा दे देता तो वह फिर वही जम जाता और अधिक पैसा पाने की आशा में अपनी बदूक के करतब बार-बार दोहराता। वह इसमें इतना मस्त हो गया जान पड़ता कि उछलते-चिल्लाते उसका चेहरा लाल पड जाता और पसीना बहने लगता और तमाशा हास्यास्पद रूप धारण कर लेता।

"स्टैंड टीज !"

"आर्डर अप !"

"लेफ्-री ! लेफ्-री !"

उसकी चीखें सुनकर भीड़ जमा हो जाती। तब वह हथेलियों पर थूक लगाकर और अपनी लकड़ी की बदूक मजबूती से पकड़कर कहता, "आदमी बनो ! आदमी का कर्तव्य मारना है !" उसका मुह झाग से भर जाता, चेहरा गहरा लाल हो जाता और निष्ठुर आक्रमण करने के लिए समूचा शरीर तन जाता।

"अगर दुश्मन अड़ जाए, जवाबी हमला करे तो बन्दूक का कुंदा उसके सिर पर मारो और पेट में ठोकर लगाकर गिरा दो। तब किरच उसके पेट में खूब गहरी घुसेड़ दो और उस वक्त निकालो जब देखो कि दुश्मन के पेट में छेद हो गया और वह घाव से मर जाएगा। वन, टू, थ्री, गो···"

और वह अपने ही आदेशों के अनुसार परेड शुरू करता।

हवलदार उन्हें जो सिखाया करता था उसकी यह नकल देख सिपाही हसने लगते। हम बच्चे यह तमाशा देखकर बड़े खुश होते और डम्बरी हमें दुनिया का सबसे बड़ा 'जनरल' जान पड़ता जो हमें मारने का गुर सिखाता, सिर्फ एक छोटा बिट्टी ही ऐसा था जो उसके करतबों से डरकर रोने लगता था।

"चाय पियो" कोई हवलदार डम्बरी का ध्यान बटाने के लिए कहता। अब यह निश्चित नहीं था कि वह तमाशा बंद कर देगा, चाय पिएगा अथवा पैसे की तलाश में आगे चल देगा। फकीर के मन की मौज कौन जाने !

हवलदार डम्बरी और उसके तमाशों को पसंद करते और नये रंगरूटों के सामने उसके चले जाने के महीनों बाद तक उन्हें सैनिक वीरता के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते। वे उन कारनामों के बारे में नाना प्रकार की कहानियां सुनाते, जो उसने विभिन्न युद्धों में भाग लेकर सरअंजाम दिए थे।

"वह पठान मां से एक जनरल साहब का बेटा है," कोई कहता।

"वह मुस्लिम इलाके में कबायलियों का पीर है," दूसरा अटकल लगाता।

"उसे दिल्ली-दरबार में बादशाह जार्ज पंचम से हाथ मिलाते मैंने खुद देखा था," तीसरा बात बनाता।

"अगर वह वाकई इतना बड़ा आदमी है तो एक भिखारी की तरह चिथड़े क्यों पहनता है ?" कोई रंगरूट पूछता।

इस प्रश्न का उत्तर किसीके पास नहीं था। डम्बरी की स्मृति कम से कम साल तक जब वह लौटकर फिर अपने खेल-तमाशों से छावनी के जीवन की रसता भंग करता, उस विस्मृति के धुंध में खो जाती जो धरती पर छाई हुई है और यह बात स्पष्ट हो जाती कि कोई व्यक्ति चाहे कैसा भी हो संसार में उसका एक स्थान है।

पिता कभी-कभी हमें दोपहर के बाद लुंडा नदी पर बना हुआ नौकाओं का पुल देखने ले जाते। नौशहरा में काबुल नदी का यही नाम है क्योंकि यह एक चपल नदी है जो अटक में सिंधु से मिलते समय विलक्षण रूप धारण कर लेती है।

स्कूल और ईंधन के स्टाल के पास से सूखी नदी की रेत में से जो पगडंडी सदर बाज़ार और पुल की ओर जाती है, मुझे पिता के पीछे-पीछे उसपर दौड़ना पसंद था। मुझे यों दौड़ने में बड़ा आनन्द आता और जब सब लोग पिता को प्रणाम करते तो मेरा मन गर्व से भर जाता। फिर यह पगडंडी स्कूल की जेल की ओर नहीं बल्कि रंग-बिरंगी ईंटों से बने स्वतंत्र शहर की ओर जाती थी। उसकी तंग गलियों में मोटे-झोटे लम्बे कुर्तों, मैली-कुचैली पगड़ियों, खुली सलवारों और

फटी मखमली वास्कटोंवाले पठानों की भीड़-भाड़ होती और वे पंजाबी सौदागर होते जिन्होंने सीमांत की भाषा और तौर-तरीके अपना लिए थे और पठानों ही की तरह भयंकर जान पड़ते थे, फिर पलटन के सिपाही होते, इक्के-दुक्के टामी होते जो अपने साफ-सुथरे बालों पर टेढ़ी टोपियां पहने और चांदी की मूठोंवाली छड़ियां घुमाते हुए दो-दो की पंक्ति में चलते, किसी कबाड़ी की दुकान पर रुक जाते या फिर रंडियों के बाजार में घुस जाते।

पिता मित्रों और परिचितों से दुआ-सलाम करते हुए चलते और कभी रुककर ऐसे सिपाही या हवलदार से देर तक बात करते जो उनसे कोई काम करवाना चाहता था, पर हमारे क्वार्टर या दफ्तर में आने से डरता था। यों बोलते-बतलाते और हंसी-मजाक करते हुए वे अपाहिज घर के पासवाला बाजार पार करके फलों की मंडी में पहुंच जाते। यहां दुकानदार गंडेरियां बेचते जिनपर मक्खियां भिनभिनाती थीं और भिखारी अपने कोढ़ के घाव दिखाकर पैसे मांगते थे। जब हम ग्रांडट्रंक रोड पर पहुंचते तो अंग्रेजी ढंग की दुकानों पर शीशे की अल्मारियों में केक, पेस्ट्री, चाकलेट और पेपरमिंट आदि के जार रखे होते; मगर गधों के झुंड धूल के बादल उड़ाकर इस दृश्य को धुंधला देते।

नदी की धार इतनी तेज थी कि लोग सिर्फ उत्सवों पर ही नहा सकते थे। उन्हें डूबने से बचाने के लिए नावें तैयार रहती थीं। मगर सदर बाजार से नौशहरा के पुराने गांव जाने के लिए भी नावों का जो पुल बना हुआ था, पिता उनमें से किसी एक नाव में बैठकर हवा खाना पसंद करते थे।

नदी कहां से आती है और कहां जाती है; मेरे मन में इस प्रकार के आध्यात्मिक प्रश्न उठते थे। इस समय मेरी जो उम्र थी, उसमें मुझे हरएक बात जानने और समझने का नशा-सा था और मैं हरएक चीज को दूसरी से जोड़ने और कारण समझने का प्रयत्न करता था। पिता मुझे बताया करते कि नदी वर्षा से बहनेवाले सहायक नालों और पहाड़ों पर पिघलनेवाली बर्फ के पानी से बनती है और सिंधु से मिलकर समुद्र में जा गिरती है।

मेरे जीवन में किसी कृत्य के भावुकतापूर्ण औचित्य को बहुत कम स्थान था। समुद्र का नाम सुनते ही मैं कपड़े उतारकर समुद्र तक तैर जाने को तैयार हो जाता। जब मुझे बताया जाता नदी बहुत गहरी है, समुद्र उससे भी गहरा है और मुझे तैरना नहीं आता तो मैं यह सिद्ध करने का प्रयत्न करता कि अगर मैं

डूब भी जाऊं तो बादल बनकर फिर वहीं लौट आऊंगा। जहां से मैं चला था। पिता मेरा ध्यान दूसरी ओर बदलते और मौनधारी गणेश मेरी कमीज़ का सिरा पकड़ लेता कि कहीं मैं सचमुच नदी में न कूद जाऊं। अब मेरे मस्तिष्क में यह सवाल उठता कि जब समुद्र में इतनी नदियां गिरती हैं तो उसके पानी में क्यों सारी धरती डूब नहीं जाती। पिता मुझे बताते कि हज़ारों साल पहले एक प्रलयंकारी बाढ़ आई थी। जिस विशाल भू-भाग पर अब पानी है वह इस बाढ़ से पहले शुष्क धरती थी, और जो अब शुष्क धरती है, उसपर पहले पानी था।

अब मैं यह सोचकर परेशान हो जाता कि 'यह विशाल भू-भाग' क्या बला है। मैं सब कुछ जानना चाहता था, मगर पिता से कुछ पूछते हुए डरता था कि कहीं वे चिढ़कर यह न कह दें, "अच्छा, अब चुप बैठो और मुझे आराम करने दो।" लेकिन इससे मुझे संतोष न होता और मैं क्रुद्ध स्वर में कहता, "पिता, दुनिया में इतनी चीज़ें क्यों हैं? इसे किसने बनाया है? और हर बात जानना सम्भव क्यों नहीं है?" पिता मेरी उग्रता पर सिर्फ मुस्कराते और स्नेह से मेरी पीठ थपथपाते, जैसे वे मुझसे बहुत प्रसन्न हों। वे दयालु बनकर अपने-आप ही हमें ०० पर बैठे हुए एक फलवाले पठान से तरबूज़ खरीद देने की बात कहते।

भाव-ताव होते देख हम उत्साह में भर जाते और उस क्षण की प्रतीक्षा करते जब हमें एक छोटा तरबूज़ झूंगे में मिलेगा जो हम नन्हे बिट्टी के लिए घर ले जाएंगे। पिता सौदा पटाने में आनाकानी करते क्योंकि उन्हें पैसा लगाना था और ससांर का सबसे अनिश्चित फल खरीदना था। हो सकता है कि वह शहद जैसा मीठा हो या फीका हो और शायद बकबका हो। पिता को तरबूज़ की अच्छी परख थी; इसलिए वे अपने दाएं हाथ से एक के बाद दूसरे तरबूज़ को यों ठकोरते जैसे वे मिट्टी के घड़े का कच्चा या पक्का होना देख रहे हों। और वे इतनी हैस-बैस करते कि बताए गए मूल्य से आधे में सौदा पटा लेते और साथ ही झूंगे में एक के बजाय तीन छोटे तरबूज़ प्राप्त करते, जो हम तीनों के लिए एक-एक खिलौना होता। ऐसे पिता का बेटा होना मुझे बड़े हर्ष और गर्व की बात जान पड़ती।

आज़ादी के इन दिनों में जब मास्टर की बेंत का भय न होता, हम एक सहं-

दय संसार के उत्साह और अनुग्रह में रुचि लेने लगे। हम अकसर कोई भी ऐसी शरारत करने को तैयार रहते जो हमें एक साहसिक कार्य जान पड़ती। शैतान ऐसे थे कि धरती, आकाश, सिपाही और संतरी हमें किसी भी चीज का भय नहीं था।

एक दिन अली और गणेश में काफी देर कानाफूसी होती रही और फिर उन्होंने मुझे भी अपना विश्वासपात्र बनाकर कहा कि हम तीनों स्कूल जाने के बजाय लुडा नदी पर मकई के खेतों में चलें। कारण यह था कि मंदबुद्धि होने के कारण स्कूल में उनकी मुझसे अधिक ठुकाई होती थी।

"नन्हे भाई, हमने स्कूल का काम नहीं किया।" गणेश ने सहसा विनम्र होकर कहा। "अगर हम स्कूल गए तो पिटेंगे। और तुम्हें भी देर हो गई है। देखो सूरज कितना ऊपर चढ़ आया, और नहीं तो तुम्हें इसीलिए बेंत लगेंगे। इसलिए हमारे साथ चलो, हम तुम्हें भुट्टे देंगे।"

"मैं तुम्हें झोली-भर लाल बेर दूंगा।" अली ने स्नेह-सिक्त स्वर में कहा। "मुझे एक ऐसी झाड़ी का पता है जिसे किसीने छुआ तक नहीं।"

मैं रीझ गया और उनके साथ चल पड़ा।

पहले तो हम नदी की रेत में दौड़ते, कूदते, छलांगें लगाते और चिकने-चमकीले पत्थर जमा करते रहे और फिर हम बेरी के पेड़ों पर चढ़कर बेर तोड़ते और पक्षियों के घोंसले खोजते रहे। इसके बाद हम मकई के खेत में घुस गए और पसीने में तर-बतर तनिक खुली जगह बैठकर बेर खाने लगे। फिर हमने भुट्टे तोड़े और उन्हें भूनने की सोची। लेकिन हमारे किसीके पास दीयासलाई नहीं थी और सूखे खेत में आग जलाना भी खतरनाक था।

जब तक हम खेलते-कूदते और फल खाते रहे तब तक तो इतने प्रसन्न थे कि हमें स्कूल का अस्तित्व ही भूल गया। लेकिन जब करने को कुछ न रहा तो हम परेशान हो उठे और उस समय की प्रतीक्षा करने लगे जब हम घर लौट सकेंगे। अब समस्या यह थी कि हमें ठीक उसी समय लौटना चाहिए जब स्कूल में छुट्टी हो। पहले घर पहुचें तो संदेह होगा। लेकिन हम जाकर किसीसे समय भी तो नहीं पूछ सकते थे क्योंकि अगर कोई सिपाही हमें देख लेगा तो वह घरवालों को बता देगा।

सूरज ने सुबह से अब तक जो फासला तय किया था हमने उससे समय का

डूब भी जाऊं तो बादल बनकर फिर वहीं लौट आऊंगा। जहां से मैं चला था। पिता मेरा ध्यान दूसरी ओर बदलते और मौनधारी गणेश मेरी कमीज़ का सिरा पकड़ लेता कि कहीं मैं सचमुच नदी में न कूद जाऊं। अब मेरे मस्तिष्क में यह सवाल उठता कि जब समुद्र में इतनी नदियां गिरती हैं तो उसके पानी में क्यों सारी धरती डूब नहीं जाती। पिता मुझे बताते कि हजारों साल पहले एक प्रलयंकारी बाढ़ आई थी। जिस विशाल भू-भाग पर अब पानी है वह इस बाढ़ से पहले शुष्क धरती थी, और जो अब शुष्क धरती है, उसपर पहले पानी था।

अब मैं यह सोचकर परेशान हो जाता कि 'यह विशाल भू-भाग' क्या बला है। मैं सब कुछ जानना चाहता था, मगर पिता से कुछ पूछते हुए डरता था कि कहीं वे चिढ़कर यह न कह दें, "अच्छा, अब चुप बैठो और मुझे आराम करने दो।" लेकिन इससे मुझे संतोष न होता और मैं क्रुद्ध स्वर में कहता, "पिता, दुनिया में इतनी चीज़ें क्यों हैं ? इसे किसने बनाया है ? और हर बात जानना सम्भव क्यों नहीं है ?" पिता मेरी उग्रता पर सिर्फ मुस्कराते और स्नेह से मेरी पीठ ...ाते, जैसे वे मुझसे बहुत प्रसन्न हों। वे दयालु बनकर अपने-आप ही हमें ...क पर बैठे हुए एक फलवाले पठान से तरबूज़ खरीद देने की बात कहते।

भाव-ताव होते देख हम उत्साह में भर जाते और उस क्षण की प्रतीक्षा करते जब हमें एक छोटा तरबूज़ झूंगे में मिलेगा जो हम नन्हे बिट्टी के लिए घर ले जाएंगे। पिता सौदा पटाने में आनाकानी करते क्योंकि उन्हें पैसा लगाना थ और ससांर का सबसे अनिश्चित फल खरीदना था। हो सकता है कि वह शह जैसा मीठा हो या फीका हो और शायद बकबका हो। पिता को तरबूज की अच्छ परख थी; इसलिए वे अपने दाएं हाथ से एक के बाद दूसरे तरबूज़ को ठकोरते जैसे वे मिट्टी के घड़े का कच्चा या पक्का होना देख रहे हों। और इतनी हैस-बैस करते कि बताए गए मूल्य से आधे में सौदा पटा लेते और सा ही झूंगे में एक के बजाय तीन छोटे तरबूज़ प्राप्त करते, जो हम तीनों के लि एक-एक खिलौना होता। ऐसे पिता का बेटा होना मुझे बड़े हर्ष और गर्व की ब जान पड़ती।

आज़ादी के इन दिनों में जब मास्टर की बेंत का भय न होता, हम एक

दय संसार के उत्साह और अनुग्रह मे रुचि लेने लगे। हम अकसर कोई भी ऐसी शरारत करने को तैयार रहते जो हमें एक साहसिक कार्य जान पडती। शैतान ऐसे थे कि धरती, आकाश, सिपाही और संतरी हमें किसी भी चीज़ का भय नहीं था।

एक दिन अली और गणेश में काफी देर कानाफूसी होती रही और फिर उन्होने मुझे भी अपना विश्वासपात्र बनाकर कहा कि हम तीनों स्कूल जाने के बजाय लुंडा नदी पर मकई के खेतों में चलें। कारण यह था कि मंदबुद्धि होने के कारण स्कूल में उनकी मुझसे अधिक ठुकाई होती थी।

"नन्हे भाई, हमने स्कूल का काम नही किया।" गणेश ने सहसा विनम्र होकर कहा। "अगर हम स्कूल गए तो पिटेंगे। और तुम्हे भी देर हो गई है। देखो सूरज कितना ऊपर चढ आया, और नही तो तुम्हें इसीलिए बेंत लगेंगे। इसलिए हमारे साथ चलो, हम तुम्हें भुट्टे देंगे।"

"मैं तुम्हें झोली-भर लाल बेर दूगा।" अली ने स्नेह-सिक्त स्वर मे कहा। "मुझे एक ऐसी झाड़ी का पता है जिसे किसीने छुआ तक नहीं।"

मैं रीझ गया और उनके साथ चल पड़ा।

पहले तो हम नदी की रेत में दौड़ते, कूदते, छलागें लगाते और चिकने-चमकीले पत्थर जमा करते रहे और फिर हम बेरी के पेडो पर चढ़कर बेर तोडते और पक्षियों के घोंसले खोजते रहे। इसके बाद हम मकई के खेत में घुस गए और पसीने मे तर-बतर तनिक खुली जगह बैठकर बेर खाने लगे। फिर हमने भुट्टे तोडे और उन्हें भूनने की सोची। लेकिन हमारे किसीके पास दीयासलाई नही थी और सूखे खेत में आग जलाना भी खतरनाक था।

जब तक हम खेलते-कूदते और फल खाते रहे तब तक तो इतने प्रसन्न थे कि हमे स्कूल का अस्तित्व ही भूल गया। लेकिन जब करने को कुछ न रहा तो हम परेशान हो उठे और उस समय की प्रतीक्षा करने लगे जब हम घर लौट सकेंगे। अब समस्या यह थी कि हमें ठीक उसी समय लौटना चाहिए जब स्कूल में छुट्टी हो। पहले घर पहुचें तो सदेह होगा। लेकिन हम जाकर किसीसे समय भी तो नही पूछ सकते थे क्योंकि अगर कोई सिपाही हमें देख लेगा तो वह घरवालों को बता देगा।

सूरज ने सुबह से अब तक जो फासला तय किया था हमने उससे समय का

डूब भी जाऊं तो बादल बनकर फिर वहीं लौट आऊंगा। जहां से मैं चला था। पिता मेरा ध्यान दूसरी ओर बदलते और मौनधारी गणेश मेरी कमीज़ का सिरा पकड़ लेता कि कहीं मैं सचमुच नदी में न कूद जाऊं। अब मेरे मस्तिष्क में यह सवाल उठता कि जब समुद्र में इतनी नदियां गिरती हैं तो उसके पानी में क्यों सारी धरती डूब नहीं जाती। पिता मुझे बताते कि हज़ारों साल पहले एक प्रलयंकारी बाढ़ आई थी। जिस विशाल भू-भाग पर अब पानी है वह इस बाढ़ से पहले शुष्क धरती थी, और जो अब शुष्क धरती है, उसपर पहले पानी था।

अब मैं यह सोचकर परेशान हो जाता कि 'यह विशाल भू-भाग' क्या बला है। मैं सब कुछ जानना चाहता था, मगर पिता से कुछ पूछते हुए डरता था कि कहीं वे चिढ़कर यह न कह दें, "अच्छा, अब चुप बैठो और मुझे आराम करने दो।" लेकिन इससे मुझे संतोष न होता और मैं क्रुद्ध स्वर में कहता, "पिता, दुनिया में इतनी चीज़ें क्यों हैं ? इसे किसने बनाया है ? और हर बात जानना सम्भव क्यों नहीं है ?" पिता मेरी उग्रता पर सिर्फ मुस्कराते और स्नेह से मेरी पीठ थपथपाते, जैसे वे मुझसे बहुत प्रसन्न हों। वे दयालु बनकर अपने-आप ही हमें ...क पर बैठे हुए एक फलवाले पठान से तरबूज़ खरीद देने की बात कहते।

भाव-ताव होते देख हम उत्साह में भर जाते और उस क्षण की प्रतीक्षा करते जब हमें एक छोटा तरबूज़ झूंगे में मिलेगा जो हम नन्हे बिट्टी के लिए घर ले जाएंगे। पिता सौदा पटाने में आनाकानी करते क्योंकि उन्हें पैसा लगाना था और ससार का सबसे अनिश्चित फल खरीदना था। हो सकता है कि वह शहद जैसा मीठा हो या फीका हो और शायद बकबका हो। पिता को तरबूज़ की अच्छी परख थी; इसलिए वे अपने दाएं हाथ से एक के बाद दूसरे तरबूज़ को यों ठकोरते जैसे वे मिट्टी के घड़े का कच्चा या पक्का होना देख रहे हों। और वे इतनी हैस-बैस करते कि बताए गए मूल्य से आधे में सौदा पटा लेते और साथ ही झूंगे में एक के बजाय तीन छोटे तरबूज़ प्राप्त करते, जो हम तीनों के लिए एक-एक खिलौना होता। ऐसे पिता का बेटा होना मुझे बड़े हर्ष और गर्व की बात जान पड़ती।

आज़ादी के इन दिनों में जब मास्टर की बेंत का भय न होता, हम एक सह-

दय संसार के उत्साह और अनुग्रह मे रुचि लेने लगे। हम अकसर कोई भी ऐसी शरारत करने को तैयार रहते जो हमें एक साहसिक कार्य जान पड़ती। शैतान ऐसे थे कि धरती, आकाश, सिपाही और संतरी हमें किसी भी चीज का भय नहीं था।

एक दिन अली और गणेश मे काफी देर कानाफूसी होती रही और फिर उन्होने मुझे भी अपना विश्वासपात्र बनाकर कहा कि हम तीनों स्कूल जाने के बजाय लुंडा नदी पर मकई के खेतों मे चलें। कारण यह था कि मंदबुद्धि होने के कारण स्कूल मे उनकी मुझसे अधिक ठुकाई होती थी।

"नन्हे भाई, हमने स्कूल का काम नही किया।" गणेश ने सहसा विनम्र होकर कहा। "अगर हम स्कूल गए तो पिटेंगे। और तुम्हें भी देर हो गई है। देखो सूरज कितना ऊपर चढ आया, और नहीं तो तुम्हें इसीलिए बेंत लगेंगे। इसलिए हमारे साथ चलो, हम तुम्हें भुट्टे देंगे।"

"मैं तुम्हें झोली-भर लाल बेर दूगा।" अली ने स्नेह-सिक्त स्वर मे कहा। "मुझे एक ऐसी झाडी का पता है जिसे किसीने छुआ तक नहीं।"

मैं रीझ गया और उनके साथ चल पड़ा।

पहले तो हम नदी की रेत मे दौड़ते, कूदते, छलागें लगाते और चिकने-चमकीले पत्थर जमा करते रहे और फिर हम बेरी के पेड़ो पर चढ़कर बेर तोड़ते और पक्षियों के घोंसले खोजते रहे। इसके बाद हम मकई के खेत मे घुस गए और पसीने में तर-बतर तनिक खुली जगह बैठकर बेर खाने लगे। फिर हमने भुट्टे तोडे और उन्हें भूनने की सोची। लेकिन हमारे किसीके पास दीयासलाई नहीं थी और सूखे खेत में आग जलाना भी खतरनाक था।

जब तक हम खेलते-कूदते और फल खाते रहे तब तक तो इतने प्रसन्न थे कि हमें स्कूल का अस्तित्व ही भूल गया। लेकिन जब करने को कुछ न रहा तो हम परेशान हो उठे और उस समय की प्रतीक्षा करने लगे जब हम घर लौट सकेंगे। अब समस्या यह थी कि हमें ठीक उसी समय लौटना चाहिए जब स्कूल में छुट्टी हो। पहले घर पहुचें तो संदेह होगा। लेकिन हम जाकर किसीसे समय भी तो नहीं पूछ सकते थे क्योंकि अगर कोई सिपाही हमें देख लेगा तो वह घरवालों को बता देगा।

सूरज ने सुबह से अब तक जो फासला तय किया था हमने उससे समय का

अंदाज़ा लगाना चाहा; पर किसी नतीजे पर न पहुंच सके। तब हमने बारी-बारी खेत की नुक्कड़ पर जाकर उस रास्ते की ओर देखा जो स्कूल से बारकों को जाता था ताकि पलटन का कोई लड़का घर लौटता हुआ नज़र आए।

जब हम इंतज़ार करते-करते थक गए और हमें इस बात का भी डर था कि कहीं अधिक लड़के हमें न देख लें, शस्त्रकार का बेटा रहमान अकेला जाता दिखाई दिया। हम उससे जा मिलने के लिए जल्दी-जल्दी खेत से निकले। हमारा खयाल था कि हम उसे भुट्टों की रिश्वत देकर घर पर भेद बताने से मना कर देंगे।

लेकिन ज्योंही हम बाहर निकले, खेत के पठान मालिक ने, जो अपने गोफन से चिड़ियां उड़ा रहा था, हमें देख लिया और वह हमारे पीछे दौड़ा।

हमने जो भुट्टे घर ले जाने के लिए कुर्तों और सलवारों में छिपा लिए थे, वे हमें दौड़ने से रोकते थे और गिरने लगे।

अली और गणेश तेज़ दौड़कर खेत से परेवाली सड़क पर जा चढ़े। मगर मैं इतना तेज नहीं दौड़ सकता था; इसलिए पठान ने मुझे आ पकड़ा।

किसान ने मेरे हाथ-पांव बांधकर मुझे अपनी झोंपड़ी के पास धरती पर फेंक दिया। मैंने सोचा कि वह मुझे अभी कत्ल कर देगा और मैं रोने लगा।

भय से लाल, पसीने से तरबतर मैं धरती पर पड़ा सुबक रहा था और मुझे यह दृढ़ विश्वास था कि यह मेरा अंतिम समय है। मुझे छुड़ाने के लिए रहमान ने भी बहुत मिन्नत-समाजत की पर पठान पर कोई असर न पड़ा।

लेकिन अली और गणेश दौड़ते हुए पिता के दफ्तर पहुंचे और बात बनाई कि मैं स्कूल से लौटते समय कैसे भुट्टे तोड़ता हुआ पकड़ा गया हूं।

पिता ने आकर मुझे मुक्ति दिलाई। जो कुछ मैं भुगत चुका था, उसके अलावा अब मुझे पिता से पिटने का भय था। एक-दो चांटे लगने की देर थी कि मेरे लिए सच्ची बात छिपाए रखना असम्भव हो गया। इसलिए मैंने आवारगी में शामिल किए जाने की सारी कहानी कह डाली।

उस रात गणेश की हाकी से खूब मरम्मत हुई जबकि मैं कम से कम कुछ समय के लिए माता-पिता की नज़रों में चढ़ गया।

अली की मां ने भी बेटे को घर से निकालकर उसे कड़ा दंड दिया और उसने वह रात संतरी के खोखे में बिताई।

इस घटना के बाद अली और गणेश मुझसे इतने चिढ़ गए कि न सिर्फ खुद मेरा

बायकाट किया बल्कि पलटन के दूसरे लड़कों को भी ऐसा करने को कहा। और मैंने अपने-आपको पहले से कहीं अधिक तनहा पाया।

मैंने उनसे इसका बदला पिता से एक दिन यह शिकायत करके लिया कि अली और गणेश ने मेरे जूते सुआ नदी में फेंक दिए हैं। असल बात यह थी कि वे हाकी मैच देखने जा रहे थे और मुझे अपने साथ ले जाने से उन्होंने इनकार कर दिया था। मैंने जान-बूझकर जूते घर ही में चटाई के नीचे छिपा दिए और गणेश पर उन्हें नदी में फेंकने का झूठा आरोप लगाया। पिता एक तो हमारी शिकायतों से तंग आ चुके थे, दूसरे उन्हें जूते खो जाने का अफसोस था, इसलिए उन्होंने गणेश को खूब पीटा। जब पिटाई हो चुकी तो मैंने बहाना किया कि जूते मुझे अचानक चटाई के नीचे पड़े मिल गए हैं। मैंने यह भी कहा कि गणेश ने जूते लाकर यहां छिपा दिए और सुआ में फेंकने की गप हांक दी।

मैंने चूंकि बड़ों को आपस की बात बताकर लड़कों का नैतिक विधान तोड़ा था, इसलिए इस बार मेरा सम्पूर्ण बहिष्कार हुआ और अब मैं बिलकुल अकेला रह गया।

फिर भी साथी मिल ही जाते थे। सिपाही मुझे अकेला खड़ा देख पैसा देते अथवा अपने साथ पलटन के बाज़ार में ले जाते और हलवाई की दुकान पर डोगरा सिपाहियों का मनभाता पकवान, दूध-जलेबी खिलाते। कोई फल खरीद देते या बनिये की दुकान से गुड़ ले देते। मां ने मुझे ये उपहार लेने से मना कर रखा था क्योंकि उसका खयाल था कि कोई सिपाही मुझपर जादू कर देगा। लेकिन बीमारी की चिंता किए बगैर मैं ये चीज़ें मज़े से खाता।

मैं लोहारे में चला जाता और क्वार्टर-गार्ड के निकट लकड़ी के फ्रेम में जड़ी हुई रेती पर लोहे के टुकड़े तेज़ करता। इतने में लोहार का बड़ा बेटा और सहायक परागसुखा आ पहुंचता जिसने मुझे फालतू पुर्जों से ट्राईसाइकल बना देने का वादा किया था। अक्सर इस समय वह हाथी गेला करता, पर जब मैंने उसे देखा तो वह एक मोटर-साइकल बनाने में व्यस्त था और मुझे कल आने को कह-कर टरका दिया।

मैंने पलटन के बढ़ई गोंदू को मित्र बनाया। वह मेरे भाई हरीश का दोस्त था और अपने छोटे कद और चिपटी नाक के कारण गोरखा जान पड़ता था। वह साहबों के बंगलों के फर्नीचर की मरम्मत करते समय मुझसे म

मेरी शादी कब हो रही है और मैं शादी के बाद पत्नी का क्या करूंगा। मैं घण्टों उसकी दहलीज़ पर बैठा निरीह उत्तर दिया करता जिनके आधार पर वह नये मज़ाक करता। मैं उसे लकड़ी की तलवार बना देने को कहता। वह अपनी कठोर अंगुलियां मेरी कोमल अंगुलियों में डाल देता अथवा ज़ोर से हंसता। तब वह मुझे अपनी गंदी काली केतली से चाय का एक प्याला देता। यह केतली हर वक्त लोहे कि तिपाई पर रखी रहती, उसके नीचे बुरादे की आग जलती और चाय, दूध और पानी का मिश्रण उसमें उबलता रहता। अलबत्ता लकड़ी की तलवार के बारे में वह हमेशा यह वादा करता कि कल बनाना शुरू करूंगा।

"इन सिपाहियों और छोटे लोगों के हाथ से कोई भी चीज़ कभी मत खाना-पीना और इधर-उधर घूमना भी नहीं," जब मैं घर लौटता तो मां उपदेश देती। लेकिन अपनी इस उम्र में मैं बड़ों की नसीहतों पर तनिक भी ध्यान न देता। मैं मर्ज़ी से तमाम बारकों, पलटन के बाज़ार, छोटे मुलाजिमों के घरों में और इधर-उधर जानेवाली विभिन्न पगडंडियों पर घूमता और जो कोई भी मुझे बुला लेता, उसीसे गप लड़ाता। मुझ जैसे तनहा लड़के के लिए इन सम्बन्धों में कितना आनन्द था! जब मुझे मिठाई, फल और खिलौनों के छोटे-छोटे उपहार मिलते तो मैं कितना प्रसन्न होता! वे दीन-दरिद्र सिपाही, अछूत और मजदूर मेरे माता-पिता के मुकाबले में कितने सहृदय और उदार थे! जो अपनी श्रेष्ठता पर गर्व करते हुए मुझे अपनी कोई भी चीज़ छूने से मना करते थे! निश्चित रूप से जो कुछ मैं जानता हूं, उसका अधिकांश भाग मैंने इन्हीं लोगों से सीखा है। कहानी कहने, चाय बनाने और कोई चीज़ तैयार करने का मुझमें जो गुण है और मेरा जो व्यक्तित्व है, वह आवारगी के इन्हीं क्षणों की देन है।

मगर एक दिन दोपहर के बाद एक घटना घटित हुई जिसने ऐसी संगति के लिए मेरा उत्साह अगर हमेशा के लिए नहीं तो कम से कम कुछ समय के लिए समाप्त कर दिया।

मेरे पिता की पलटन के कुछ छोटे अंग्रेज़ अफसर नदी से परे वर्नर की पहाड़ियों पर और बारकों की चारदीवारी के आसपास अपनी शिकार की बन्दूकों से अथवा देसी गोफनों से जो उन्हें पक्षी मारने का आकर्षक यन्त्र जान पड़ता, कबूतर और चिड़ियां मारा करते थे।

अपने शरीर की स्वाभाविक उष्णता और साहबों के प्रति अपने विशेष

कौतूहल और प्रशंसा के कारण मैं उनमें से किसीके भी पास दौड़कर चला जाता था। उनमें से अधिकांश बड़ी सहृदयता दिखाते और दूर ही से मुस्कराते हुए मुझे अथवा पलटन के दूसरे बच्चों को अपने पीछे आने देते।

लेकिन एक दिन मैंने कैप्टन कनिंघम को जिसे सब 'बोला' अर्थात् बहरा साहब कहते थे, व्यायामशाला की दीवार के पीछे गोफन हाथ में लिए घूमते देखा।

मैं सलाम करके उसके पीछे-पीछे चला क्योंकि मैं भी उसीकी तरह गोफन से शिकार खेलने का अभिलाषी था।

मुझे लगा कि उसने हाथ उठाकर 'जाओ' कहा है। लेकिन मैं इसका यह आशय समझकर कि कहीं मैं उन पक्षियों को न भगा दूं जिनका वह शिकार करना चाहता है, खड़ा उसकी ओर घूरता रहा।

जब वह आगे बढ़ा तो मैं भी उसके पीछे-पीछे चला।

दिन बड़ा गर्म था। शायद साहब गर्मी के मारे परेशान था या शायद इसलिए चिढ़ गया था कि मना करने के बावजूद एक बच्चा उसके पीछे आ रहा है।

जब उसने नदी की विस्तृत रेत में प्रवेश किया तो मुझे यों जूता दिखाया, जैसे मैं बिल्ली हूं।

हालांकि मैं डर गया था, फिर भी इतना मूर्ख था कि बिना सोचे-समझे उसके पीछे चलता रहा।

चंद कदम चलकर वह मुड़ा और उसने धरती पर पांव पटका।

मैं उन पत्थरों को फलांगकर, जो सूरज की किरणों से लालसुर्ख हो गए थे, वह रास्ता पकड़नेवाला था जो पलटन के दफ्तर की ओर जा रहा था, लेकिन चंद कदम चलने के बाद जब कनिंघम साहब को लौटते देखा तो मैं भी लौट आया।

अब उसके सब्र का पैमाना भर चुका था अथवा गर्मी उसका सिर सहला रही थी क्योंकि उसने गोफन में एक पत्थर रखकर मुझे मारा, जो मेरी बांह में लगा।

मैं भयभीत और चिल्लाता हुआ पिता के दफ्तर की ओर दौड़ा।

बरामदे में से एक अर्दली मेरे पिता को बुला लाया। वे बड़े नाराज हुए क्योंकि मैं ऐसे समय रोता हुआ दफ्तर आया था जब वहां कुछ साहब [illegible] थे। उन्हें डर था कि वे मेरा रोना सुन लेंगे।

मगर मैंने भय से कांपते और रोते हुए बताया कि कनिंघम साहब ने मुझे पत्थर मारा है।

पिता को मेरी बात का विश्वास नहीं आया और वे क्रोध के मारे आपे से बाहर हो गए। एक तो अपने दुर्भाग्य के कारणों महीनों से खीजे हुए थे और ऊपर से यह साहब-सम्बन्धी अप्रिय घटना, उन्होंने मेरे मुंह पर जन्नाटे का चपत मारा।

"मां, मां।" मैं भय से शून्य में ताकते हुए चिल्लाया। पिता ने मेरी बांह पर निशान देखा और उन्हें विश्वास हुआ। उन्होंने मुझे उठाकर अर्दली की बेंच पर लिटा दिया जबकि कोई दूसरा आदमी मेरे पीने के लिए पानी लाया। एक दूसरे अर्दली ने एक गीली पट्टी मेरे सिर पर बांध दी। पर मैं बराबर रोता रहा। एक साहब ने बाहर आकर मुझे पुचकारा और मेरे पिता ने उसे कनिघम साहब के बारे में अंग्रेजी में कुछ कहा।

मुझे उठाकर पलटन के अस्पताल में पहुंचाया गया और मेरी बांह पर पट्टी बांधी गई।

जब मुझे घर लाया गया तो मां दुःख और क्षोभ से बावली हो गई। वह यों छाती पीटने लगी कि अगर मैं मरा नहीं तो मर अवश्य रहा हूं।

"हम कर भी क्या सकते हैं?" पिता ने धीरज से कहा।

"लेकिन बच्चे ने क्या बिगाड़ा था?" मां ने पूछा।

"कनिघम साहब कहते हैं कि इसने उसे आंखें दिखाईं।··· अलबत्ता दूसरे साहबों का कहना है कि 'बोला' साहब पागल है," पिता ने मेरी मां से कहा।

मां ने सोचा कि शायद गुरदेवी या पलटन के बाजार में एक बनिये की बीवी ने मुझपर जादू कर दिया है।

इसके बाद एक दूसरी घटना घटित हुई जिसने मेरे इस दुनिया में रहने की सम्भावना लगभग समाप्त कर दी और मां का यह विश्वास दृढ़ हो गया कि या तो मेरे नक्षत्र अमंगल ग्रह में घिरे हैं या फिर काली देवी हमारे परिवार से किसी पाप का बदला ले रही है।

दोपहर के बाद का समय था।

सूरज सुबह से धरती को झुलस रहा था। बंजर पहाड़ी इलाके में धूप ही धप थी, छाया का कहीं नाम तक नहीं था। शुष्क पहाड़ियों के नीचे खुले मैदान

में पलटन के लड़के खेल रहे थे। सूरज की शुद्ध किरणों ने उनके चेहरे लगभग लाल कर दिए थे।

धरती पर लकीर खींचकर पांच-पांच की टोली उसकी दोनों ओर कबड्डी खेलने के लिए तैयार खड़ी थी। छोटा या बबला के आदेश पर जो दोनों टीमों के कैप्टन थे, विरोधी टीम का सदस्य सामने के इलाके में यों घूमता था, जैसे प्राचीन भारत में अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा एक राज्य से दूसरे राज्य में घूमता था। वह बराबर 'कबड्डी, कबड्डी' कहता था और उसके आक्रमण की सफलता विरोधी टीम के किसी सदस्य को हाथ या टांग से छू देने पर निर्भर करती थी। इसके विपरीत अगर दूसरी टीम के खिलाड़ी उसे पकड़कर उस समय तक थामें रखें जब तक उसकी सांस न उखड़ जाए और वह 'कबड्डी, कबड्डी' कहना बंद कर दे तो यह उसकी असफलता मानी जाती थी।

मैं लकीर के सिरे पर एक भारी गर्म पत्थर पर बैठा हरएक टीम के आक्रमणकारी सदस्य का चिल्लाकर उत्साह बढ़ा रहा था। मैं भूल गया था कि बैंडवाले का बेटा अली और गुलाबो मेहरी का बेटा रामचरण विशेषकर मेरे विरुद्ध हैं और वे नहीं चाहते कि मैं रैफरी या खिलाड़ी के तौर पर खेल में हिस्सा लूं क्योंकि आम तौर पर उनका कहना था कि मैं बहुत छोटा हूं। हर्षोन्माद में मैं यह भी भूल गया था कि मैं अपने-आप रैफरी बना हूं, जिसके उत्साह और निर्णय की किसीको परवाह नहीं है। बहरहाल मैं खेल में मस्त था। जब कोई लड़का विरोधी इलाके में जाता, मैं 'शाबाश, शाबाश' चिल्लाकर उसका उत्साह बढ़ाता और कई बार तो मैं अपने शरीर को यों हिलाता जैसे मैं खुद लंगोट कसे, सतर्क आंखों से इधर-उधर देखता और 'कबड्डी, कबड्डी' कहता हुआ आक्रमण कर रहा हूं।...

मां हमारे घर के दरवाजे पर आ जाती और कुछ क्षण हमें खेलते हुए यों देखती जैसे मादा फाख्ता घोंसले के कोने पर खड़ी यह देखती है कि उसके बच्चे कहीं नीचे न गिर पड़ें। वह परेड के सूने मैदान में झांकती हुई लौट जाती। उसे मेरी और गणेश की चिंता थी। वह चाहती थी कि हम तपती धरती पर नंगे पांव न खेलें और घर लौट आएं।

"आओ बेटा, कृष्ण आओ!" उसने मुझे बीसवीं मर्तबा पुकारा। ड्योढ़ी के दरवाजे की छाया में खड़े हुए उसे बाहर की धूप बहुत ही भयकर लग रही।

लेकिन मैं बैठा रहा क्योंकि रहमतुल्ला जो छोटा के कैम्प में पकड़ा गया

छूट जाने के लिए संघर्ष कर रहा था। वह बराबर 'कबड्डी, कबड्डी' चिल्ला रहा था और उसे 'मरना' स्वीकार नहीं था।

"कृष्ण आओ, बेटा आओ।" मां ने फिर कहा। उसने देख लिया था कि कबड्डी के मैदान में एक बड़ा लड़का चार दूसरे लड़कों के नीचे पड़ा ज़ोर लगा रहा है। मां डर रही थी कि अगर वह कहीं झटका मारकर उठा तो ऊपर-वाले लड़के मुझपर गिरेंगे और मैं उनके नीचे पिस जाऊंगा।

लेकिन रहमतुल्ला दम टूट जाने से मर गया। वह एक तरफ हटकर बैठ गया और खेल फिर शुरू हो गया। दोनों टीमों के कैप्टनों—बक्खा और छोटा ने अपनी-अपनी टीम को अगले हमले के लिए तैयार किया।

मैं मां को यह विश्वास दिलाने दौड़ा कि मैं ठीक हूं। लेकिन उसे वहां न पाकर और रामचरण को 'कबड्डी-कबड्डी' कहते सुनकर मैं फिर उसी पत्थर पर आ बैठा और इस आशा में खेल देखने लगा कि अगर विरोधी लड़कों ने रामचरण को पकड़ा तो फिर वैसा ही संघर्ष होगा।

"फाऊल, फाऊल !" रामचरण पकड़े जाने पर चिल्लाया। "बक्खा को मुझे पकड़ने का अधिकार नहीं है। वह भंगी है। उसने मुझे अपवित्र कर दिया।"

"जा बे साले।" बक्खा ने लकीर पर खड़े होकर और उसे धक्का देकर कहा।

"अरे छोटा, आओ मेरी मदद करो।" रामचरण ने बक्खा का मुकाबला करते हुए कहा। "आओ हम इस गंदे भंगी को यहां से भगाएं ! मां ने मुझे पहले ही इस हरामी के साथ खेलने से मना किया था।"

"चुप रह !" बक्खा बोला।

इसपर रामचरण ने एक पत्थर उठाया और बक्खा पर फेंका। बक्खा एक ओर हट गया और पत्थर मेरी खोपड़ी पर आ गिरा।

मैं चकराकर गिर पड़ा। मेरे सिर से खून बह रहा था, जिसे देखकर मैं रोने लगा।

यह देखते ही रामचरण, अली, छोटा और कुछ दूसरे लड़के भाग खड़े हुए। मेरे पास गणेश, बक्खा, रहमतुल्ला और उसका छोटा भाई इस्मतुल्ला रह गए।

बक्खा ने अब लाहौर छावनी की तरह संकोच नहीं किया और मुझे अपनी गोद में उठा लिया जबकि मेरे सिर से बह रहा खून इकट्ठा करने के लिए गणेश

घर से गणेश लेने दौड़ा।

मेरी चीख सुनकर मां दरवाज़े पर आ गई। "हाय-हाय!" वह छाती और माथा पीटते हुए चिल्लाई। एक तो उसे मेरी चोट का दुःख था, दूसरे यह पछतावा था कि जब वह बुला रही थी तो मैं पहले ही क्यों नहीं आया। उसने उन तमाम लड़कों को जो मेरे साथ थे, गालियां देनी शुरू कीं।

"ऐ, तुम सब मर जाओ! तुम्हें प्लेग निगले, मेरे बेटों को मारते हो। ऐ दलिमया, तुम मरो, क्यों तुमने उसे घायल किया—और रहमतिया, तूने उसे क्यों नहीं बचाया!"

"लेकिन मां, ये तो नहीं थे। पत्थर तो गुलाबो महारन के लड़के रामचरण ने फेंका था," गणेश बोला।

"जा रे नमकहराम!" मां चिल्लाई। "मुस्टंडों की हिमायत क्यों करता है! तू ठहर, तेरे पिता को आने दे, वे तेरी हड्डियां तोड़ेंगे''' हाय मेरा बेटा, मेरा लाल! ओह! खून के फौवारे छूट रहे हैं। मैं क्या करूं? यह इन मुस्टंडों के साथ क्यों खेलता है?"

"लाओ मुझे दो, चाहे मुझे नहाना ही पड़े," मां ने बसन्ता से कहा।

बसन्ता ने मुझे मां को दे दिया। उसकी आंखों में आंसू थे।

मां ने क्रोध, ग्लानि और भय से भरकर मेरी बगलों में घूंसे लगाए और चिल्लाई, "न तुम जाओ और न चोट लगे। मुआ, क्यों जाता है और सारे घर पर मुसीबत लाता है?"

मैं भय से कांप रहा था और अधिक जोर से चीख रहा था।

गणेश ने पीतल की थाली वहां लगाई जहां मेरे माथे से लाल-लाल खून बूंदों के साथ निकल-निकलकर धरती पर गिर रहा था।

थोड़ी मां ने मुझे लेकर चारपाई पर लिटाया, खून का परनाला-सा फूट पड़ा और सारे कपड़े भर गए।

"ओह तुम्हारा जन्म किस घड़ी में हुआ था, हमने ऐसा क्या पाप किया था?"

उसने मुझे पलट दिया और खून का बहाव रुक गया।

वह एक कपड़ा लाई और कांपते हाथों से मेरा सिर बांध दिया। लेकिन छाती-भर खून पहले ही उसके सामने पड़ा था, जिसे देखकर वह

हो गई। वह अपनी छाती पीट रही थी और गालियां दे रही थी, जबकि मैं आंगन में चारपाई पर लेटा चीख रहा था।

मेरी चीखों ने नन्हे शिव को जगा दिया। वह उसे चुप कराने चली गई, जबकि गणेश मुझे पंखा झलने लगा।

मैं बेसुध-सा सिर इधर-उधर पटक रहा था कि मेरी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। इसके बाद मुझे सिर्फ इतना याद है कि मैं पलटन के अस्पताल में था। डाक्टर मुझे घेरे हुए थे, दवाइयों की गंध और औज़ारों की खनखनाहट थी। मुझे पिता की मज़बूत बांहों का स्पर्श भी याद है, जब उन्होंने मुझे उठाकर खटोले पर लेटाया। रात की शान्त निस्तब्धता में मेरी पीड़ा की चीख ने आह का रूप धारण कर लिया था...

महीने, दो महीने मेरा जीवन खतरे में रहा। नोकीले पत्थर ने मेरी खोपड़ी में कोई आधा इंच गहरा घाव कर दिया था। चोट से और ऑपरेशन से जो खून बहा, उससे मेरे शरीर की समस्त शक्ति ही निकल गई।

तब मुझे ज़ोर का ज्वर आया, जिसके कारण मैं बेसुध पड़ा रहता था और सिर में बंधी पट्टी की दवा से जो गंध आती थी उसके मारे दम घुटता था। मेरे मुंह का स्वाद फीका-सीठा रहता और सिर में कमज़ोरी की जो टीसें उठतीं उनके मारे मैं कराहता और 'हाय मां, हाय मां!' चिल्लाकर मां को सहायता के लिए बुलाता। मगर वह हर समय पास नहीं होती थी; इसलिए मैं पड़े-पड़े छत के शहतीरों की ओर झांकता या सफेद दीवारों को देखता। कभी टीस इतनी तीव्र होती कि मुझे अपना गला घुटता जान पड़ता और मैं कमज़ोरी के कारण बेहोश हो जाता। इसलिए मुझे बार-बार चारपाई से उठाकर धरती पर लेटाया जाता, क्योंकि हिन्दू-रीति के अनुसार मरनेवाले व्यक्ति को अपनी अंतिम सांस चारपाई पर नहीं, धरती पर लेनी चाहिए। हम सब मिट्टी से बने हैं और फिर मिट्टी में ही मिलेंगे।

मगर प्राण कहीं न कहीं मेरी हड्डियों में अटक गए जान पड़ते थे। जब कभी मुझे उठाकर ऑपरेशन-टेबल पर ले जाया जाता और कर्नल बेली जिसे मैंने अस्पताल में अक्सर सलाम किया था, मुझपर झुककर पट्टी खोलता,

घाव में लम्बी सुई डालकर देखता और फिर पट्टी बांधता तो मैं डर के बावजूद चुपचाप लेटा रहता; जैसे सामने खड़ी मौत को देख मैंने कराहना बंद कर दिया हो।

इर्द-गिर्द के जीवन के बारे में मेरे अनुभव सहसा बड़े तीव्र हो गए। निर्बलता के मद्धिम आवरण में से मैं लोगों के मुख की गम्भीरता स्पष्ट देख सकता था। मैं मां का चेहरा पढ़ सकता था, जिसपर चोट लगने के बाद मुझे पीटने का अपराध अंकित था। चारपाई पर पड़े-पड़े मुझे उन दिनों का ध्यान आता था, जब एक बीमार बच्चे के नाते मेरे अधिकार समाप्त हो जाएंगे। तब मेरे साथ और भी निष्ठुर व्यवहार होगा। मुझपर सारे परिवार को मुसीबत में डालने का आरोप लगेगा; जैसे कभी-कभी गणेश को पीटा जाता है, मुझे भी थपड़ों, विकिटों और हाकियों से खूब पीटा जाएगा···लेकिन इन क्षणों में भी मुझे वह वास्तविक चिंता स्मरण हो आती जो मुझे उठाए हुए घर से अस्पताल आते-जाते पिता की आंखों में होती थी और मां का दुःख स्मरण हो आता था। इससे मैं आशा करता था कि वे मेरा अपराध क्षमा कर देंगे। मुझे अपने पास बैठी मां का रोना सुनाई पड़ता और दूर से कोई आवाज़ मेरा नाम लेकर पुकारती। यों अपने लिए मेरी करुणा माता-पिता के लिए करुणा में बदल जाती। चाहे मैं अपनी शारीरिक चोट को नहीं भूल पाता था, लेकिन मैंने अपने भाग्य को एक प्रकार के नकारात्मक प्रेम और सबके प्रति क्षमा-भावना से स्वीकार कर लिया।

मगर मेरे शरीर में जो शक्ति थी, वह धीरे-धीरे प्रकट होने लगी। उदाहरण के लिए मैं कर्नल वेली के हाथ से चमकते हुए निष्ठुर चाकू और चिमटे छीन लेने के लिए बांह ऊपर उठाता। मुझे याद था कि जब पिछली बार पट्टी हुई तो उन्होंने मुझे कष्ट पहुंचाया था। इस बार मैंने निर्णय किया था कि उन्हें अपने पर प्रयोग नहीं होने दूंगा। मैं डाक्टर को लम्बी सुई घुमोने नहीं दूंगा, चाहे मुझे गाली ही क्यों न देनी पड़े।

नींद के नीचे मेरा सिर घूमता और मैं एक कल्पित चाकू से कल्पित युद्ध करता। इनमें से एक युद्ध मुझे अब भी स्पष्ट याद है। एक कानी कुरूप जादूगरनी, जिनके दांत सफेद चमकदार थे, मेरी ओर आ रही थी, जबकि मैं एक उबलते हुए कड़ाहे के पास बैठा था। चूंकि मैं बहुत मज़बूत और भारी था, इसलिए वह मुझे इस तख्ते पर से धकेलकर कड़ाहे में फेंकना चाहती थी। मगर मैंने चिल्ला-चिल्ला

था कि मैं टांग का अड़ंगा लगाकर, जैसे पहलवान सिपाही अपने विरोधी को लगाते हैं, खुद उसे कड़ाहे में गिरा दूंगा। वह आ रही थी। मैंने उसे पकड़ लिया; खूब धकापेल हुई, और लो, मैंने उसे कड़ाहे में फेंक दिया।

"अब टुम जल्दी ठीक हो जाएगा !"कर्नल वेली अपनी विचित्र हिन्दुस्तानी में कह रहा था। स्ट्रेचर टेबल के निकट आ रहा था और मेरे पपोटों में नींद छाई जा रही थी।...बाद में जब मैं जागा तो मुंह सूखा, नथने फूले हुए, दिल जोर-जोर से धड़क रहा था और मेरी आंखें किसीको छूने, बात करने और पकड़ने के लिए खोज रही थीं। मैं मृत्यु पर विजय पा रहा था।

"मां, हे मां !" मैंने पुकारा क्योंकि उसपर मेरी निर्भरता बढ़ गई थी, जो उस समय अनिवार्य भी थी।

"हां बेटा, हां !" वह पुचकारते हुए मुझपर झुक गई। उसका सारा स्नेह, सारी करुणा एक भयमिश्रित आशा में बह निकली। "क्या है ! कहो, तुम्हें क्या चाहिए ?" उसने प्यार से पूछा।

"पानी !" मैं उत्तर देता, क्योंकि गर्मी के दिन थे और मुझे ज्वर आता था।

मां मुझे बार-बार गर्म दूध देती थी, जिससे मैं तंग आ चुका था; पर मैं उसका कृतज्ञ था। विशेषकर उस समय जब मैं देखता था कि वह शिव की उपेक्षा करके मेरे पास आती है, मैं महसूस करता था कि मैं अब मां से अधिक किसी दूसरे व्यक्ति को प्यार नहीं करूंगा, क्योंकि जब मेरे प्राण संकट में थे, वह रातों जागती रही और उसके मुंह से सिर्फ एक ही बात निकलती थी—"तुम्हारी आई मुझे लगे !"

बेचारी अपढ़ स्त्री, जिसे अपनी बड़ी से बड़ी प्रसन्नता और किसी आंतरिक हलचल पर भरोसा नहीं था, जो संकीर्ण परिधि में घूमती थी और बनी-बनाई मूर्तियों को पूजती थी, बड़ी से बड़ी मुसीबत में भी टूटती नहीं थी बल्कि चट्टान के सदृश दृढ़ रहती थी ! पुरुष की व्यापक आत्मा की भांति वह अपने भीतर अधिक ग्रहण करने की अभ्यस्त नहीं, पर अपनी संतान की पशुओं के सदृश रक्षा करती है। मां के साहस और विषाद को सिर्फ बच्चा ही समझ सकता है। इसलिए वह उसे अपने आग्रह और हठ से अधिक कष्ट पहुंचाए बिना चुपचाप सो जाता है। इसमें कुछ भी ताज्जुब नहीं कि मानव-जाति में मां-बेटे का मूल सम्बन्ध अपने खतरों के बावजूद अब भी कायम है, जबकि बहुत-सी दूसरी आदिम भाव-

नाएं शान और लज्जा का रूप धारण कर चुकी हैं।

जब गर्मी का जोर टूटा और सर्दी के सुहावने ठंडे दिन शुरू हुए तो मां मुझे खुली हवा मे ले आती और मेरे दुर्बल शरीर में शक्ति लाने के लिए तेल की मालिश करती। कई बार मैं अधिक सिर-दर्द से चिल्लाता।

"मेरे बच्चे, रोओ मत !" वह धीरज बंधाती। "यह तो मामूली चोट है, तुम्हें इससे भी अधिक सहन करनी पड़ेगी। मेरे बच्चे, रोओ मत !"

ज्योंही वह पहाड़ की ठंडी हवा महसूस करती और शाम के घटते हुए प्रकाश मे पक्षियों को घर लौटते देखती, तो मेरे स्वास्थ्य-लाभ पर कृतज्ञता प्रकट करने के लिए वह अपने सब देवताओं के नाम ले-लेकर प्रार्थना करती।

मेरी इस लम्बी बीमारी के दिनों में मां के विश्व-देवतावाद ने असंतुलित रूप धारण कर लिया था। प्रत्येक धर्म के देवताओं, मूर्तियो, प्रतीकों और धर्म के छोटे-छोटे चिह्नों को सर्वशक्तिमान भगवान का दर्जा दे दिया गया था, जिसे मेरा घाव अच्छा करना था। इन दिनों उसे और कुछ सूझता ही नहीं था, हर सास के साथ बस देवताओं का नाम जपती थी। कभी उसकी कल्पना यो साकार हो जाती कि वह अपना कोई सामान्य काम करते-करते रुककर किसी देवता के साथ देर तक बातें करती और फिर घुटनों पर बैठकर उसकी कल्पित प्रतिमा को कल्पित आहुतियां देते हुए कहती, "मेरे बेटे की रक्षा करो !"

देवताओं की इस पूजा के अतिरिक्त हर प्रकार के जन्त्र-मन्त्र और जादू-टोने मे भी उसका विश्वास बढ़ गया था, जिसे पुरोहित प्रोत्साहित करते रहते हैं।

पलटन के सबसे बड़े पुरोहित पंडित जयराम को बुलाया गया। वह दाढ़ी मुंडवाता और सफेद पटका गर्दन में डाले रहता था; और साहब भी उसका आदर-सम्मान करते थे। उसने मुझपर गंगाजल छिड़का और मंत्रों का उच्चारण करते हुए शुद्ध घी और कुछ चावल हवन की आग मे डाले। इसके लिए उसे पांच रुपये दक्षिणा के मिले। कहा जाता था कि ये रुपये देवताओं के खजाने में जाएंगे, पर असल में इनसे उसने चीनी रेशम का नया सूट खरीदा।

'छोटी मां' गुरदेवी ने द्वेष त्यागकर इस विपत्ति मे मां की सहायता की। वह नित्य मुझे देखने आती थी। उसने बताया कि अगर शहर का ग्रंथी गुरुग्रंथ साह[illegible]पाठ

करे और कड़ाह प्रसाद बांटा जाए तो मैं निश्चित रूप से बहुत जल्द अच्छा हो जाऊंगा। पचास रुपये खर्चकर यह सब कुछ किया गया। हालांकि श्रोता स्त्रियों में से कोई भी इस धर्म-पुस्तक का एक भी शब्द नहीं समझती थी, वे सिर्फ उस-पर चंवर हिलाकर संतुष्ट थीं। ग्रंथी ने कड़ाह प्रसाद का पहला भाग खुद लिया और हाथ अपनी दाढ़ी से पोंछे ताकि घी का एक कण भी व्यर्थ न जाए।

अली की मां मुझे देखने आई। मोटा सूती बुर्का उसकी स्थूल काया को सिर से पांव तक ढांपे हुए था। उसने बताया की इस्लाम के अनुसार अगर भेड़ का मांस मेरे सिर पर से वार कर गिद्धों को डाला जाए तो बद्दुआ टल जाएगी और मेरा घाव शीघ्र भर जाएगा।

हर बात में विश्वास कर लेनेवाली मेरी मां ने, जो चिंता से घुलती जा रही थी, न सिर्फ गिद्धों को भेड़ का मांस डाला बल्कि भिक्षुकों को मेरे हाथ से छुआ हुआ तेल, भिखारियों को भोजन और मंदिरों को दान दिया और प्रतिज्ञा की कि वह हरिद्वार जाकर गंगा नहाएगी।

इन सब उपक्रमों की बजाय मुझे डाक्टरी इलाज ने अच्छा किया। घाव पांच महीने में भरा। हालांकि मां का कहना था कि डाक्टरों ने जो दवाइयां प्रयोग कीं वे भारतीय जड़ी-बूटियों से बनाई गई हैं और फिरंगियों ने जर्राही हमारे नाइयों से सीखी है। जब से कनिंघम साहब ने मुझे रोड़ा मारा था और जिसके कारण रामचरण के पत्थर की घटना घटित हुई अंग्रेज़ों के विरुद्ध मां की घृणा और भी तीव्र हो गई थी।

६

जब मैं चारपाई से उठा तो इतना दुर्बल और क्षीण था, जैसे कब्र से निकलकर आया हूं। अगर दो कदम भी चलना पड़े तो बेहोश हो जाता था। मैं विवश और लाचार बैठा-बैठा शून्य में ताकता था और मुंह का स्वाद अरुचिकर होता था।

लेकिन डाक्टर के बताए अनुसार मछली का तेल, मुर्गे की यखनी और अन्य पौष्टिक पदार्थ खाने और मां के विश्वास के अनुसार मालिश करके नहाने से धीरे-धीरे मेरे शरीर में जान आई।

बीमारी अपना एक स्थायी प्रभाव छोड़ गई थी। मुझे हर आदमी और हर

चीज से अजीब डर लगता था। मैं छुईमुई के पौधे की तरह इतना भावुक हो गया था कि मामूली-सी बात पर आंसू आ जाते थे। मैं फिर कभी सुदर, स्वस्थ लड़का नहीं बन पाया। मुझे हमेशा मृत्यु का भय सताया करता। यह आतंक ही वह काला धब्बा था, जो इस बीमारी ने मेरी आत्मा पर अंकित कर दिया था। अनुभव के लिए मेरी उत्सुकता, मेरा आग्रह और मेरा उत्साह बढ़ गया था। मैं जीवन को दोनों हाथों से पकड़ने के लिए दौड़ता था, लेकिन इसके लिए जो शारीरिक श्रम दरकार था, वह मैं नहीं कर पाता था।

स्वास्थ्य-लाभ के दिनों में मैं हरएक चीज की ओर उसी प्रकार निरीह उल्लास से दौड़ता था, जैसे बच्चा रंगीन खिलौनों की ओर दौड़ता है। सुबह मैं बरामदे में पीछे एक सिरहाना लगाए खटोले पर बैठा होता, मेरी टांगें कम्बल से ढकी रहती जबकि सूरज सूरजमुखी और पीले गुलदाऊदी के फूलों में आग-सी लगा देता। ये फूल हमारे आंगन के निचले भाग में मेरे पिता ने छोटा-सा एक बगीचा बनाकर 'सटन' के बीजों के उन नमूनों से उगाए थे जो डाक द्वारा इंग्लैंड से साहबों के लिए आते थे। जी में आता था कि मैं दौड़कर बगीचे में जाऊं, कुदाल लेकर मिट्टी खोदने में पिता की सहायता करू या देवी-देवताओं पर चढ़ाने के लिए मां को गुलाब के फूल तोड़कर दू। मैंने शिव के साथ खेलते हुए उसके बहुत-से खिलौने तोड़ दिए। मगर इससे मुझे संतोष नहीं होता था। जब ड्योढ़ी से बाहर लड़के गणेश को पुकारते थे तो मेरा जी चाहता था कि भागकर जाऊं और उनके साथ खेलू। मैं स्कूल जाने के लिए बड़ा अधीर था।

मेरी उत्सुकता बढ़ती ही रही। जीवन का प्रारम्भिक चरण वह था, जब मैं बहुत हद तक आत्मकेन्द्रित था और संसार मुझे अपनी इच्छाओं का ही विस्तृत रूप दिखाई पड़ता था; और जब मैं लोगों को, बाहर की चीजों को हाथों और आंखों की स्वाभाविक उष्णता से पकड़ता था। इसके बाद मैंने बोलना सीखा; लेकिन सिर्फ अपनी ही भावनाएं व्यक्त करता था। और अब यह तीसरा चरण था जब मैं संसार को 'क्यों' और 'कैसे' से समझने का प्रयत्न कर रहा था और अपने गिर्द रेशम का कोया-सा बुन रहा था। मैं कोई भी बात बिना समझे छोड़ना नहीं चाहता था।

मैं मां को दिन-भर अपने सवालों से तंग किया करता। क्रुद्ध सोच रही होती, मैं प्यारा लाड़ला बच्चा बनकर चाहता

पर अधिक से अधिक ध्यान दे। "मां, तारे क्या हैं ?" "सूरज विना पांव के सारा दिन कैसे चलता है ?" "वादल कहां जाते हैं ?" मैं उससे पूछता। वह सिर्फ इतना कहती, "वेटा, सो जाओ और आराम करो।" मैं वादलों में स्त्रियों, पुरुषों और पशुओं की आकृतियां वनते-विगड़ते देखता और आकाश में देवता और राक्षसों के मनमाने चित्र वनाता। मुझे याद है कि मां ने सिर्फ एक वार मेरे एक प्रश्न का उत्तर दिया था। "मां, आकाश से परे क्या है ?" मैंने उससे पूछा और उसने कहा, "वेटा, वहां भगवान ब्रह्मा, देवताओं और अप्सराओं के बीच रहते हैं।" मैं वादलों में जो आकृतियां देखता था, इससे उनमें मेरा विश्वास दृढ़ हो गया था। इसके वाद वहुत साल तक, उस समय भी जव मैंने भूगोल पढ़ लिया था, मैं अपने मन से वादलों का भय न निकाल सका, जो दोपहर के वाद और शाम की खामोशी में विशेषकर महसूस होता था।

उन दिनों की एक-दो और वातें मेरे मन पर स्थायी रूप से अंकित हैं।

उदाहरण के लिए, जव नये 'वावू डाक्टर' वालमुकंद की वारह वर्षीय लड़की रुक्मिणी मुझे अपनी वांहों में उठाती थी तो मुझे जो एक प्रकार का विचित्र [illegible]द अनुभव होता था, उसे मैं कभी नहीं भुला सका। वह एक पतली-दुवली [illegible]ी थी, जिसकी गर्दन खुली हुई नहीं होती थी; पर जिसका मुख हृदयरूपी था और उसकी कोमलता से सोना भी लजाता था। उसके लम्वे-लम्वे केश, जो दो चोटियों में कंधों पर लटकते थे, उसकी आंखों के सदृश काले थे। इतनी छोटी उम्र में वासना का उत्पन्न होना एक अजीव वात थी, लेकिन जव मैं उसके गले से चिपटा होता और उसके गाल पर गाल रखे उसकी नई छातियों का दवाव और लम्वे हाथों का स्पर्श महसूस करता तो मुझे वैसा ही उग्र और विचित्र आनंन्द महसूस होता जैसा कभी अस्पष्ट रूप से मौसी अवकी और देवकी की गोद में मैंने महसूस किया था।

जव मैं दोवारा चलने-फिरने और दौड़ने लगा तो मैं और रुक्मिणी ड्योढ़ी में आंख-मिचौनी खेलते; मैं छिप जाता और वह मुझे ढूंढ़ती। मगर मुझे अधिक देर छिपे रहना पसंद नहीं था, इसलिए मैं आप ही उसे खोज लेने देता क्योंकि जव भी वह मुझे ढूंढ़ने में सफल हो जाती थी तो हंसती-चहकती और खिल-खिलाती हुई मुझे अपनी वांहों में उठा लेती थी और मैं वार-वार वही सुख महसूस करता था जिसका अर्थ मैं काफी साल वाद में समझ पाया।

रुक्मिणी मुझे वहां ले जाती जहां हम दोनों की माताएं सर्दी में धूप सेंकती हुई मोती-पिरोती, बातें करतीं, फुलकारी काढ़तीं, गाजरें काटती या मटर छीलती थीं। वहां वह एक कल्पित रसोई में मेरे लिए खाना बनाने का खेल शुरू कर देती। टीन के खिलौने बर्तन होते, छोटी सी भी मिट्टी की चक्की। कंकर, फूल और पत्ते विभिन्न प्रकार की सब्जियों का रूप लेते। अगर मां रुक्मिणी को ठीक समय पर मना न कर देतीं तो मैं उन्हें सचमुच खा लेता।

उनके साथ खेलना मुझे इतना अच्छा लगता था कि दो पुरानी चारपाइयों को आमने-सामने खड़ा करके और उनपर चादरें तानकर मैंने एक घर बनाया। अपने इस घर में हम दोनों वे बातें करते थे जो अपने माता-पिता को करते देखते थे। अक्सर लड़ाइयां होतीं, जिनमें मैं रुक्मिणी के केश पकड़कर इतने ज़ोर से खींचता कि वह मेरी पत्नी बनने और इस स्वप्न-भवन में मेरे साथ रहने से साफ इनकार कर देती। एक दिन मां को चारपाइयों की ज़रूरत पड़ गई और हमारा यह गुड़िया का घर ही टूट गया। इसके बजाय मैंने अब एक कल्पित स्कूल बनाया जिसमें मैं खुद कभी मास्टर दीनगुल, कभी मास्टर किशोरचन्द और कभी ड्रिल मास्टर बनता था और बेचारी रुक्मिणी को शिष्य बनकर सब कुछ सहन करना पड़ता था।

एक दूसरा खेल, जो हम दोनों खेलते थे, वह था चिड़िया रखना। यह एक परम्परागत खेल है जो दो प्रेमियों की शादी के बाद की क्रीड़ा है और मेरा ख्याल है कि खेल का उद्देश्य नवविवाहितों में कोमलता लाना है। इसके अलावा खेल का कोई गूढ़ अर्थ हो, वह मैं नहीं जानता था और शायद रुक्मिणी जानती थी; पर जब यह खेल खेलने को कहा तो वह बिलकुल निरीह जान पड़ती थी। हमारी माताएं अगर खेलने से मना करने के बजाय मुस्कराते हुए हमारी ओर देखती रहती थीं तो इसका कारण हम दोनों की निरीहता थी। मैंने बीमार में सांसारिक वास्तविकताओं से दूर जो एक नई दुनिया निर्माण की थी, यह खेल भी मेरे लिए उसमें पहुंचने का एक साधन था।

इस खेल में पहले कुछ चिड़ियां पकड़ी जाती थीं। रुक्मिणी और मैं बरामदे में अपने सामने मसूर की दाल के कुछ दाने बिखेर देते थे। पहले कुछ दूर बिखेरते ताकि चिड़ियां उन्हें चुगने आएं, फिर कुछ निकट, फिर और निकट और जब हम उनका विश्वास प्राप्त कर लेते तो अपने हाथ पर चुगाते। इस तरह ह

चिड़िया पकड़ लेते और प्याली में अपने घोलकर रखे रंग में उसे रंग देते। तब हम उसे छोड़ देते और वह गहरे हरे रंग में रंगी उड़ जाती। दूसरे दिन हम गहरा लाल और तीसरे दिन पीला या नीला रंग इस्तेमाल करते। सप्ताह के सात दिनों में हम सात चिड़ियां इंद्रधनुष के सात रंगों में रंग देते। हमारी प्रसन्नता का ठिकाना न रहता जब ये चिड़ियां बारकों पर इधर-उधर उड़तीं और आश्चर्य-चकित सिपाही आंखों पर हाथ रखकर इन चिड़ियों को देखते रह जाते, जिन्होंने रात-भर में रंग बदल लिया था। जब ये चिड़ियां हमारे आंगन में आकर बैठतीं तो हम खुशी से चिल्लाते। हमारी मांएं भी हमारी इस खुशी में शामिल होतीं और उनके चेहरों के रंग भी आकाश में उड़ रहीं इन चिड़ियों के रंगों के सदृश बदलते थे।

लेकिन मेरे और रुक्मिणी के कहकहे धूप तक ही सीमित नहीं थे। जब मैं हथेलियों पर मसूर के दाने लिए उसके पहलू में झुका चिड़िया के आने का इन्तजार कर रहा होता तो मेरी निगाह उसके मेंहदी रंगे हाथी दांत जैसे हाथों [illegible] नाक की नोक पर पसीने के नन्हे मोतियों पर पड़ती, तो जी में आता कि मैं [illegible]री का संयम तोड़कर उसे चूम लूं। बरामदे में प्रतिमा-सी बैठी हुई और [illegible]ह से वे संकेत करती हुई, जो वह कहती नहीं थी, मेरे मुंह पर अपना सिर झुकाकर धीरे-धीरे नसीहत करती, जो मुझे संगीत की लय-सी जान पड़ती और आंखें बंद हो जातीं, "हिलो मत, वरना चिड़ियां नहीं आएंगी।"

उसके शरीर की सुगन्ध से मुझपर नशा-सा छा जाता। मैं मौन होता और पार्श्व में कही हुई बात की लज्जा मेरे होंठों पर कांपती और मेरी रुक्ष आत्मा उसकी ओर झुक जाती।

तब अगर एक चिड़िया आकर उसके हाथ पर बैठ जाती और वह उसे धीरे-से पकड़ लेती तो वह उसकी तेज़ चोंच मेरे मुख के पास ले आती और मुझे अपने हाथ की पुश्त से सहलाती। इस स्पर्श में जो कोमलता थी, उसका उद्देश्य एक ओर तो पक्षी को चुप कराना और दूसरी ओर पक्षी पकड़ने की मेरी प्रचंड इच्छा की भर्त्सना करना था।

निस्तब्धता की तरंगें-सी हमारे माथों पर से गुजरतीं और इन मौन क्षणों में मुझे मेंहदी रंगे हाथों में पकड़ी चिड़िया को छूने और सहलाने की छूट होती। फिर जब पक्षी के फुर्र से उड़ जाने पर हमारी आंखें आपस में मिलतीं तो उनमें इतनी

प्रसन्नता होती कि उसका अनुमान उनमें भरे प्रकाश ही से हो सकता था।

ज्योंही आकाश पर धुंधलका छा जाता और ग्राम का अंधेरा गहरा होने लगता तो मुझे सोने के लिए चारपाई पर लेट जाना पड़ता और मैं मां से कहानी सुनाने के लिए हठ करता।

मां को बहुत-सी कहानियां याद थीं, जो उसने अपने बचपन में अपनी मां से सुनी थीं। देहात के कच्चे घरों की छतों पर हजारों साल से जाने कितनी कथाएं, कितनी आख्यायिकाएं, देवी-देवताओं के, मनुष्यों के, पशु और पक्षियों के कितने किस्से और कितनी कहानियां कही गई हैं; लेकिन सीले ईंधन से भोजन बनाने और राख से बर्तन मांजने का कठोर परिश्रम और जाने कितनी पारिवारिक चिंताएं उसके जीवन को घेरे रहती थीं। ये सब धंधे छोड़कर उसे कहानी सुनाने के लिए तैयार करना बड़ा ही कठिन था।

"ओह मां, मुझे कहानी सुनाओ," मैं हठ करता।

"चे, सो जा! क्या तुझे अभी नींद नहीं आई?" वह बार-बार उत्तर देती।

मेरे बहुत सताने पर वह अंत में मान जाती और मुझे उस रानी की कहानी सुनाती जिसे किसी जादूगरनी ने फूल बना दिया था, या उस कछुए की जो बहुत बातें करता था, या उस सूदखोर बनिये की जिसे चालाक किसान ने धत्ता बताई थी।

मां की कहानी कहने का ढंग इतना रोचक था और वह कहानी के पात्रों को इतना अच्छा उभारती थी कि कई बार मैं सर्वथा उसकी कहानियों में खो जाता, मेरी आंखों की नींद उड़ जाती और मैं बाद में घंटों करवटें बदलता रहता। किवाड़ों की दराजों में से मैं आकाश पर झांकता जहां तारे शांत और स्थिर होते, जैसे वे परियों और दानवों की स्मृति से आश्चर्यचकित और भयभीत हों। फिर मुझे उस शेर की मूर्खता पर हंसी आती जिसे गीदड़ ने धोखा दिया था और उस मगरमच्छ पर जिसे धूर्त लोमड़ी ने ठग लिया था। कभी मैं निर्भीक नायिकाओं के साहस पर चकित रह जाता और जब मेरी मां की आधी कहानी बाकी होती, मेरी आंखें इच्छा के विरुद्ध नींद से बंद हो जातीं।

एक कहानी जो मां ने मुझे सुनाई राजा रसालू के बारे में थी। इसे सुनकर

"हरीश की मां, मुझे डर है," पिता ने घर आकर कहा,"चोट से इस लड़के का दिमाग खराब हो गया है।"

"हूं ! हूं ! यह नहीं हो सकता !" मां उन्मत्त-सी चिल्लाई। "नहीं, यह नहीं हो सकता। मेरा बेटा, राजा बेटा !" और उसने मुझे गोद में भर लिया।

"मुझे डर है कि अगर यह पागल नहीं तो मूर्ख अवश्य हो गया है," पिता ने फिर कहा। "कारण जब मैंने इसे देखा तो यह पहाड़ियों पर अकेला घूम रहा था और अपने-आपसे बातें कर रहा था। कोई भेड़िया या रीछ उठा ले जाएगा, इसका इसे कुछ भी डर नहीं था···"

लेकिन मां में और मुझमें एक प्रकार का गुप्त समझौता था, क्योंकि वह एक ग्रामीण स्त्री के निरीह विश्वास से मेरे परियों के कल्पित संसार में प्रवेश कर सकती थी। वास्तव में हर रोज़ कहानियां और किस्से सुनाकर वही मेरे इस संसार का निर्माण कर रही थी।

एक कथा मेरे अपने नाम से सम्बन्धित थी, क्योंकि उसने वह कथा मुझे बार-बार सुनाई। इसलिए वह मुझे अच्छी तरह याद है।

"मेरे बेटे, भगवान कृष्ण की, जिसके नाम पर तुम्हारा नाम रख गया है, बहुत-सी कहानियां हैं। वह एक राजकुमार था, जिसका पालन-पोषण एक ग्वाले के घर हुआ। जब वह वृंदावन में गाय चराने जाता तो दूसरे ग्वालों के साथ खेला करता था। ग्वालिनें उसके साथ नाचती-गाती थीं। कृष्ण उनका प्रेमी था···"

"मां, एक राजकुमार ग्वालों के साथ क्यों रहने लगा ?" मैंने पूछा।

"यह ऐसे हुआ," मां ने बात शुरू की, "एक बार मथुरा में एक राजा राज करता था, जिसका नाम उग्रसेन था। उसकी रानी बड़ी सुंदर थी। एक राक्षस उससे प्रेम करने लगा। राक्षस से रानी के एक लड़का हुआ, जिसका नाम कंस था। कंस बचपन में ही ढीठ और भयंकर था। बड़े होकर उसने अपने पिता को जेल में डाल दिया और खुद गद्दी पर बैठ गया। उसके शासन में धैर्यवान धरती भी कराहती थी। धरती गाय का रूप धारण करके देवताओं के पास शिकायत करने गई। देवता ब्रह्मा के पास गए, जिसने उन्हें शिव के पास भेजा और शिव उन्हें विष्णु के पास ले गए। भगवान विष्णु ने धरती को कंस के जुल्म से मुक्त करने का वचन दिया। उसने मनुष्य के रूप में धरती पर आने का निर्णय किया और वह आया···

"कंस की एक बहन देवकी थी। जब उसका विवाह वासुदेव नाम के राजा से

हो रहा था तो कंस ने एक अजीब आवाज सुनी—'इस स्त्री का आठवां बच्चा तुम्हें नष्ट करेगा।' बेटा, पिछले जमाने में लोगों को ऐसी आवाजें अक्सर सुनाई देती थीं और वे उनपर विश्वास करते थे।

"इसपर कंस देवकी को मार देना चाहता था। लेकिन उसके पति ने कहा कि वे अपने सब बच्चे उसे दे देंगे। कंस ने देवकी को मारा तो नहीं, पर उन्हें अपनी कैद में रखा। कारण यह कि कंस देवताओं के क्रोध से डर गया था। बहुत डर गया था, बेटा!

"देवकी के छः बच्चे हुए। कंस इतना जालिम था कि उसने एक के बाद एक बच्चा मार डाला।

"जब देवकी के सातवां बच्चा होनेवाला था तो विष्णु ने उसके बीज को देवकी के गर्भ से लेकर वासुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ में डालने की व्यवस्था की। इस बच्चे का नाम बलराम था।

"जब देवकी के आठवां बच्चा होनेवाला था तो विष्णु ने वासुदेव से कहा, 'आज रात देवकी के बच्चा होगा। उसे नंद ग्वाले की पत्नी यशोदा के पास ले जाना। उसके भी बच्चा होगा। अपना बच्चा उसके पहलू में लेटाकर तुम उसका देवकी को ला देना।'

"अब जैसा विष्णु ने कहा था, वैसा ही हुआ। आधी रात को कृष्ण ने जन्म लिया बेटा, कृष्ण का जन्म हुआ...

"कंस के पहरेदार गहरी नींद सो रहे थे। वासुदेव बच्चे को नन्द के घर लेकर चला। शेषनाग ने उसका पथ-प्रदर्शन किया। जमना नदी में बाढ़ आई थी। लेकिन चमत्कार यह हुआ कि जब वासुदेव आगे बढ़ता तो नदी हटकर रास्ता छोड़ देती थी। वह नन्द के घर पहुंचा। बड़ी चतुरता से उसने यशोदा के कमरे में प्रवेश किया। बच्चा बदलकर वह वापस लौट आया।

"सुबह जब पहरेदारों की आंख खुली और उन्होंने बच्चे का रोना सुना तो उन्होंने बच्ची लाकर कंस को दे दी। उसने बच्ची को अपनी तलवार से दो टुकड़े करने के लिए हवा में उछाला। बड़ी विचित्र बात हुई। बच्ची आकाश में उड़ गई और उसने कहा—'मूर्ख! मैं महामाया योगिन्द्र हूं। वह बच्चा जिसके हाथ से तेरी मृत्यु होगी, जीवित और स्वस्थ है!'

"कंस भय से कांपता हुआ एक अंधेरे कमरे में

कर कि देवकी और वासुदेव से अब किसी भय की शंका नहीं, उसने उन्हें मुक्त कर दिया।...

"वासुदेव ने अपने बेटे बलराम को भी नंद के घर भेज दिया, और उसने नंद से कहा कि वह दोनों बच्चों को मथुरा से गोकुल ले जाए। नन्द उन्हें गोकुल ले गया और वहां की हरी-भरी चरागाहों में पशु चराता हुआ अपनी बिरादरी में दिन बिताने लगा। वे सकुशल और प्रसन्न थे।

"कंस बाल कृष्ण को ढूंढ़ने में असमर्थ रहा। वह इतना ज़ालिम था कि उसने अपने राज्य के सब बच्चे मार देने का हुक्म दिया। उसने कुरूप पूतना को बुलाया जिसकी छाती का दूध पीकर बच्चे मर जाते थे। इस राक्षसी ने कृष्ण के मुंह में अपना स्तन डाला। लेकिन कृष्ण ने उसे इतने ज़ोर से चूसा कि पूतना तुरंत मर गई।...

"जब यह खबर कंस को मिली तो वह समझ गया कि उसकी मृत्यु कृष्ण ही के हाथ से होगी। इसलिए उसने एक राक्षस भेजा और कहा कि वह कृष्ण को पकड़कर मार डाले। कंस लोगों का खून पी जाता था! बेटे, कुछ लोग बुरे होते हैं और कंस वैसा ही था।

"जब राक्षस आया तो कृष्ण जंगल में घूम रहे थे। उन्होंने राक्षस को टांग से पकड़कर सिर पर घुमाया और चट्टान से दे मारा। देवता बुरे लोगों और राक्षसों से अधिक शक्तिशाली हैं।...

"तब कंस ने एक दूसरा राक्षस भेजा। उसने भयंकर कौवे का रूप धारण कर लिया और कृष्ण को अपनी चोंच में उठा लिया। बालक कृष्ण गरम हो गए और पक्षी को उन्हें छोड़ना पड़ा। तब कृष्ण ने उसकी चोंच पांव तले कुचल डाली और उसे चीरकर दो कर दिया। यों उस पापी का नाश किया!...

"अब एक और राक्षस भेजा गया। वह सांप था। कृष्ण जान-बूझकर उसके भीतर घुस गए और अपने शरीर को बढ़ाना शुरू किया। कृष्ण इतने बढ़े कि सांप का पेट फैलकर फट गया। मेरे बेटे, तुम्हारे हमनाम का क्रोध बड़ा भयंकर था!

"कृष्ण बड़े हुए तो बहुत ही सुंदर थे और उनका रंग बादलों जैसा था वे ग्वालिनों से शरारतें करते थे। वे घर से दूध और दही चुरा लेते; लेकिन कहते कि कोई और ले गया है। और दूसरे लड़कों के साथ वे ग्वालों के बागों में घुस

जाते। एक बार जब ग्वालिनें जमना में नहा रही थीं, वह [illegible] उनके कपड़े चुराकर कदम के पेड़ पर चढ़ गया। वे बेचारी [illegible] बाहर आईं और कृष्ण से अपने कपड़े लौटा देने को कहा। वे बांसुरी बहुत ही मधुर बजाते थे। वे गोपियों के साथ नाचा करते थे, विशेषकर राधा के साथ, जो एक [illegible] की एक नौजवान पत्नी थी। वे राधा से प्रेम करते थे।...

"उन्होंने बड़े होकर आसपास के तमाम राक्षसों को परास्त किया। इनमें कालीय नाग भी था, जो ग्वालों और उनके पशुओं को निगल जाता था...

"एक बार मेह-आंधी के देवता इन्द्र ने भयंकर वर्षा की। कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत अपने हाथ पर उठाया और गोकुल को डूबने से बचाने के लिए इसे छतरी के सदृश उसके ऊपर थामे रखा।...

"ये सारी बातें कंस ने भी सुनी और उसने कृष्ण को मारने के लिए षड्यंत्र रचा। उसने अक्रूर नाम के एक राजा को जो अपनी भलाई के लिए प्रसिद्ध था, गोकुल भेजा कि वह उसका खेलों का मेला देखने के लिए कृष्ण और बलराम को अपने साथ लाए। अक्रूर ने यह संदेश उन्हें पहुंचा दिया और साथ ही जाने से मना भी कर दिया। कृष्ण ने उसे आश्वासन दिया कि घबराने की कोई बात नहीं और उन्होंने जाने का निश्चय किया।

"दोनों लड़के मथुरा को रवाना हुए और गोपियां उनके वियोग में खूब रोईं।

"केसिन नाम के एक राक्षस ने घोड़ा बनकर उन्हें रास्ते में आ घेरा। कृष्ण ने अपनी बांह उसके मुंह में घोंप दी और घोड़ा फूलकर मर गया।

"उनके कपड़े फटे-पुराने थे, पर शहर के निकट पहुंचकर उन्होंने सोचा कि उन्हें साफ-सुथरे कपड़े पहनने चाहिए। उन्होंने जमना के [illegible] राजा के धोबियों से कुछ कपड़े उधार मांगे। धोबी कंस के [illegible], इसलिए उन्होंने कपड़े देने से इनकार कर दिया। कृष्ण ने धोबियों को [illegible] हटा दिया और कंस की बढ़िया पोशाक पहनकर मथुरा में [illegible]।

"कंस ने दो मजबूत पहलवानों को कह रखा था कि वे [illegible] को मारने के लिए तैयार रहें। अगर वे सफल न हों [illegible] के लिए एक मस्त हाथी तैयार था। लेकिन कृष्ण ने [illegible] तलवार से मार डाला। सिर्फ इतना ही नहीं, उन्होंने [illegible]

को भी मार डाला। वे बहुत शक्तिशाली थे और जब क्रोध आ जाए तो भयंकर भी थे।

"तब उन्होंने कंस के बूढ़े पिता उग्रसेन को जेल से रिहा करके गद्दी पर बैठाया।

"इसके बाद कृष्ण और बलदेव मथुरा में रहने लगे और उनके माता-पिता देवकी और वासुदेव भी उनके पास आ गए।...

"कुछ साल बाद दो राक्षस राजाओं ने, जो कंस के मित्र थे, मथुरा पर आक्रमण किया। कृष्ण उनके विरुद्ध शहर की रक्षा न कर पाए और वे अपने परिवार और बिरादरी को द्वारका ले गए। द्वारका समुद्र के किनारे स्थित थी।

"यहां उन्होंने एक दुर्ग बनाया और बड़ी सेना इकट्ठी की। इस सेना की सहायता से उन्होंने जमना नदी के किनारे स्थित मथुरा को वापस ले लिया।

"तब उन्होंने तमाम पापी राजाओं को पराजित करके विदर्भ के राजा भीष्म की पुत्री से ब्याह किया।

"जब कौरवों और पांडवों में युद्ध छिड़ा तो उन्होंने बुरे कौरवों के विरुद्ध पांडवों की सहायता की। उन्होंने पांडु-पुत्र अर्जुन को जो सीख दी, वह भगवद्‌गीता में लिखी है, जिसका मैं नित्य पाठ करती हूं और तुम लोग हंसते हो।..."

मैंने चूंकि मां से देवी-देवताओं की कहानियां सुन रखी थीं, इसलिए घुमक्कड़ रासधारी छावनी में जो रासलीला दिखाते थे, दूसरे लड़कों की अपेक्षा मैं उसमें अधिक दिलचस्पी लेता था।

छावनी के बाज़ार के निकट मैदान में एक शामियाना लगाया जाता था, जिसमें दरियां बिछा दी जाती थीं और रामानन्द बनिये की दुकान से तख्त लाकर स्टेज बनाया जाता था और रासधारियों के स्वांग भरने के लिए एक तम्बोटी तान दी जाती थी। ये तैयारियां देखकर ही हम समझ जाते थे कि रासधारी आए हैं। और हम उस तम्बोटी को घेर लेते थे जिसमें वे स्वांग भरते थे। रासधारी आम तौर पर हमें वहां से भगा देते थे क्योंकि वे यह बात प्रकट नहीं करना चाहते थे कि जिन्हें वे लड़कियां बना रहे हैं, वास्तव में वे लड़के हैं।

इसलिए हम जाकर दरी पर लौटते अथवा जब तक अर्दली दिखाई न पड़ता स्टेज पर कूदते।

तब हम शाम का भोजन जल्दी देने के लिए घर जाकर मां की नाक में दम कर देते ताकि लौटकर स्टेज के निकट बैठ सकें। ग्राम तौर पर मां पर हमारे कहने-सुनने का कोई असर न होता। लेकिन पिता अगली पंक्ति में कुछ स्थान रिज़र्व करा लेते, जिसके कारण हम रासलीला देख पाते थे। इसके विपरीत बाजे-वालों, धोबियों और भंगियों के बच्चे, दूर ही से जो कुछ दिख पाता, देखते।

लेकिन राम, सीता और लक्ष्मण की कहानी सब जानते थे जो उन्होंने अपनी मां, चाचा-चाची या बुआ से सुन रखी थी या पिछले साल जब रासधारियों की कोई दूसरी टोली आई थी, तब देखी थी। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति नाटक में रस लेता और जो कुछ देखने-सुनने से रह जाता, उसे अपनी कल्पना से जोड़ लेता।

सिपाही चूंकि समतल धरती पर बैठते थे और उनके आगे साहबों और हिन्दुस्तानी अफसरों की कुर्सियां होती थीं और आपस की बातचीत का शोर होता था, इसलिए रासलीला कहीं भी अच्छी तरह दिखाई या सुनाई नहीं देती थी।

देखना और सुनना इतना आवश्यक भी नहीं जान पड़ता था, जितना कि सबका मिल बैठना। स्निग्धता और प्रसन्नता का वातावरण उत्पन्न हो जाता था, जो संक्रामक था। जब रंग-बिरंगी वर्दी और लाल नाक वाला मस्खरा अपने करतब दिखाता था तो ऐसी हंसी आती थी कि हमेशा त्यौरी चढ़ाए रखनेवाले 'कर्नल' साहब और 'अजीटन' साहब भी संयत नहीं रह पाते थे। इसी प्रकार हनुमान की कलाबाजियों पर प्रत्येक व्यक्ति चहक उठता था। रावण की पराजय सिपाहियों को प्रायः पागल बना देती। बैंडमैन क्लेटन सीता के भेस में जो गीत गाता था, उससे प्रत्येक व्यक्ति प्रभावित होता था।

जब लालमुहे, अंग्रेज़ी अफसरों का यही नाम पड़ गया था, चले जाते तो वातावरण काफी शिथिल हो जाता। लेकिन उस समय हम बच्चों में से अधिकांश सो गए होते और अर्दली उठकर हमें घर पहुंचा आते।

मगर मैं अपनी उनींदी आंखों में से रामायण के पात्रों को पहचानने का प्रयत्न करता क्योंकि मां ने हमें रामायण-महाभारत की जो कथाएं और कहानियां सुना रखी थीं, वे उनसे सम्बन्धित थे। भावुक होने के कारण मैं समझता कि सिर्फ रासधारियों का रास देख लेने-मात्र से मैं भी अभिनय करने में समर्थ हूं।

जब कुछ दिन बाद छावनी के नाटक क्लब की ओर से वही खेल दशहरे के अवसर पर खेला जाता तो मैं उस नन्हे देवदूत की भूमिका अदा करने के लिए हठ करता, जो सीता के पास खड़ा होता था।

पिता के प्रभाव के कारण मुझे यह भूमिका मिल जाती। लेकिन मुझे देवदूत बनने-मात्र का इतना अधिक चाव होता कि मैं यह भूमिका कैसी अदा कर पाता था, इस बारे में मुझे कुछ भी याद नहीं। सिर्फ इतना याद है कि मुझे बढ़िया कपड़े पहनाए जाते, बाहों में दो पर लगा दिए जाते और चेहरे पर पाउडर और रंग लगाकर माथे और गालों पर सुनहरे सितारे चिपका दिए जाते। ज्योंही मैं सीता बने क्लेटन के साथ स्टेज पर जाकर बैठता उसके घुटने पर सिर रखकर सो जाता। देवदूतों को चूंकि तमाम रात सीता के निकट रहकर पहरा देना होता था, इसलिए मुझे बाद में बताया गया कि मेरा अनजाने सो जाना एक वास्तविक नाटकीय प्रदर्शन समझा जाता था।

स्वाभाविक रूप से इसके कई दिन बाद तक मैं अपने-आपको अतिमानव समझता और दूसरे लड़के भी ऐसा ही मान लेते।

लड़कों की मित्रता से प्रोत्साहित होकर मैं उनके साथ खेलने भी लगता।

लेकिन जब से मुझे चोट लगी थी और मैं महीनों बीमार रहा था, उनके खेल पहले से कुछ कम भयंकर नहीं थे। इस भय से कि कहीं मुझे दोबारा चोट न लग जाए और उन्हें मेरे पिता के क्रोध का भागी न बनना पड़े, वे मुझे अपने किसी खेल में शामिल नहीं करते थे। जब वे खेलते थे, मैं सिर्फ उनके पीछे-पीछे घूमता था।

अलबत्ता उनके बहुत-से खेल मेरे जाने-पहचाने थे और मैं उन्हें दूर से देखकर ही संतुष्ट हो जाता था। लेकिन एक दिन मैंने गणेश को छोटा, अली और रामचरण आदि के साथ नदी के पाट की ओर जाते देखा। उनके चुपके-चुपके मुझे छोड़कर बच निकलने की बात से मेरा कौतूहल बढ़ा। इसलिए ज्योंही उन्होंने विभिन्न दिशाओं में खिसकना शुरू किया, मैंने अंदाजा लगाया कि वे कोई नया विचित्र और संदिग्ध खेल खे[illegible]

उनके जाने के चंद मिनट ब[illegible] जिध[illegible]

बना थी। वे बहुत दूर नहीं गए थे और अब इस डर से कि कहीं मैं पिता से उनकी चुगली न कर दूं, उन्होंने मुझे छोड़ जाने की कोशिश नहीं की।

जब मैं उनके निकट पहुंचा तो उन्होंने सिर्फ इतना कहा कि मैं नदी के घाट में कुछ फासले पर खड़ा हो जाऊं क्योंकि वे एक पहाड़ी के विरुद्ध, जिस कल्पित दुर्ग को उन्हें विजय करना है, तीर-कमान का युद्ध करेंगे। मैंने एक तमाशाई की भूमिका स्वीकार कर ली क्योंकि और कोई चारा भी नहीं था।

लेकिन ओह, एक बच्चे के हृदय की टीस, खेल में शामिल न किए जाने की जलन और पिता के क्रोध का डर कि कहीं मुझे फिर क्रुद्ध न हो जाए!

मेरी आंखें आंसुओं से भीगी हुई थीं और सिर लड़कों के कृत्रिम युद्ध के जोश से घूम रहा था। वे जो भयंकर संकेत और चेष्टाएं करते थे, मैं भी करता था। और वे जो कुछ चिल्लाते थे मैं भी चिल्लाता था। इससे मेरे मन में यह धारणा बन गई थी कि मैं लाल फीतोंवाली वर्दी पहने जरनेल हूं, और उन्हें युद्ध लड़ने का आदेश दे रहा हूं।

मगर वे नकली बंदूकों से नहीं लड़ रहे थे, और वे मामूली सिपाहियों की ड्रिल के नारे भी नहीं दोहरा रहे थे। जैसाकि मुझे बाद में मालूम हुआ। उन्होंने रैड-इंडियन भाषा के कुछ विलक्षण नारे ईजाद किए थे। और वे ऐसी क्रूरता से लड रहे थे, जो मैंने उनकी लड़ाइयों में पहले कभी न देखी थी।

दोपहर के बाद की तेज धूप और यह नये प्रकार का युद्ध! सब पसीने में सरा-बोर थे और उनपर उन्माद छाया था। आक्रमणकारी लड़के अपनी कमानें ऊपर उठाए एक पत्थर से दूसरे पत्थर की ओर भागते थे ताकि पहाड़ी के निकट पहुंचें। जबकि सुरक्षा करनेवाले अपने बनावटी तीरों से आक्रमणकारियों को मार गिराते थे। युद्ध के स्वीकृत नियमों के अनुसार इस प्रलय के तीर के अपने निकट आते ही गिरकर मर जाते थे।

धूप की गर्मी और योद्धाओं द्वारा उत्पन्न किया हुआ उन्माद मेरे लिए असह्य था। मैं खड़े-खड़े सारा युद्ध अपनी प्रचंड आत्मा में लड रहा था। मैं हर एक लड़के के साथ कभी इधर झुकता और कभी उधर। मैं उनके विलक्षण युद्धघोषों को उच्च स्वर में दोहरा रहा था। अब मेरे लिए खेल से अलग रहना असम्भव हो गया और मैं युद्धक्षेत्रों में से तेजी के साथ पहाड़ी की ओर दौड़ा। मेरी ऊपर उठी हुई बांह में जो लकड़ी सधी हुई थी वह मेरा तीर था और बांह कमान थी। मैं

यों आगे बढ़ा जैसे फासले की मुझे कुछ भी परवाह न हो।

लड़कों ने खेल बन्द कर दिया और मुझे युद्धक्षेत्र में घुसने से मना करने लगे। पर मैंने सुनी-अनसुनी कर दी और मेरी आत्मा चिल्लाई, 'मैं जाऊंगा और जाकर अकेला ही किला जीतूंगा।'

हवा और नदी के सूखे पाट में पत्थरों की फसीलों के साथ मैंने एक प्रकार का सहयोग स्थापित कर लिया था, जो मुझे आगे बढ़ने में लाभदायक सिद्ध हो रहा था। मैं किले की चोटी की ओर बढ़ता चला गया।

सब लड़के, जिनका युद्ध उनके नारों और दांव-पेंच से लम्बा हो गया था, आश्चर्यचकित मेरी ओर देख रहे थे। वे अपना युद्ध शुरू करते हुए डरते थे और इसलिए कि विरोधी सेना से नहीं बल्कि मुझ विमूढ़ नन्हे बुल्ली से युद्ध हार बैठे थे। वे मेरी ओर अवज्ञा और उपेक्षा से देख रहे थे क्योंकि वे मुझे अपना दुर्ग विजय करने से नहीं रोक सकते थे। मैं पहाड़ी की चोटी पर जा पहुंचा। चाहे मेरी सांस फूल गई थी और अंग भारी और शिथिल हो गए थे, मेरी महत्त्वाकांक्षा मेरे भीतर राग अलाप रही थी। और पहाड़ी पर खड़े होकर मैं चिल्लाया, "मैं विजेता विजेता हूं!"

लड़के हैरान थे; लेकिन चुप थे। जो कुछ मुझे दिखाई दे रहा था मैं उस सबका सम्राट था और उन्होंने मुझे अकेला छोड़कर खिसकना शुरू किया।

इसपर मैं रोने लगा और उनके पीछे दौड़ा। लेकिन वे जा चुके थे और मैं पीछे चिल्ला रहा था, "तुम देखोगे कि मैं तुम सबपर विजय पाऊंगा।"

७

जब मैं बीमारी के बाद बिलकुल स्वस्थ हो गया तो पिता ने मुझे शाम को घर पर पढ़ाना शुरू किया ताकि मेरी पांच महीने की कमी पूरी हो जाए जो उनके कथनानुसार मेरी लाचारी की छुट्टी थी। कारण, पिता को जिस बात से घृणा थी, उनके मनोरथ के पूरा न होने का डर अर्थात पंजाब यूनिवर्सिटी की मैट्रिक प्राप्त करने में उनके बेटों का एक साल की देरी करना था। "मैंने स्कूल में भी व्यर्थ नहीं खोया, तुम्हारे बड़े भाई ने भी नहीं खोया," वे कहीं फेल होकर मेरे नाम को बट्टा मत लगाना।"

बीमारी के बाद मेरी सबसे बड़ी कठिनाई थी गणित की पढ़ाई। अपनी पहली और दूसरी कक्षाओं में मैं इस विषय के मूल तत्त्वों को खूब समझता था और मैं जोड़, बाकी और गुणा के मुश्किल से मुश्किल सवाल चुटकियों में हल कर लेता था। लेकिन जब तीसरी कक्षा में सूद-दर-सूद और अनुपात के प्रश्न समझाए गए तो मैं स्कूल से गैरहाजिर था। सूद-दर-सूद के सवाल न निकालने के लिए मास्टर मुझे पीटता था और उसकी छड़ी के डर ने मुझे गणित में बिलकुल मूर्ख बना दिया। मास्टर यह गुर दोबारा स्कूल में नहीं समझाता था क्योंकि वह मेरी ट्यूशन रखना चाहता था। लेकिन मेरे पिता एक घण्टे की ट्यूशन-फीस के फालतू पांच रुपये देना नहीं चाहते थे। पिता को घबराहट थी कि कहीं मैं आगामी परीक्षा में रह न जाऊं; इसलिए वे मुझे घर पर पढ़ाया करते थे। "मास्टर जो तुम्हें घर पर काम देता है वह तुम स्कूल से लौटकर दोपहर में कर लिया करो और शाम को मैं तुम्हें शुरू से आखीर तक हिसाब पढ़ाऊंगा।" उन्होंने कहा।

बीमारी ने मेरा तमाम आत्मविश्वास नष्ट कर दिया था और जो स्वच्छंदता बाकी थी वह पिता के उस कठोर और कटु व्यवहार ने समाप्त कर दी, जो उन्होंने पहाड़ियों पर जाने की घटना के बाद मेरे प्रति अपनाया था। मैं दब्बू बन गया और मुझे इम्तहान में फेल होने की लज्जा और बदनामी ही का खयाल रहता था। मैं दासता की हद तक आज्ञाकारी बन गया। मैं घर आता और बकसर बासी रोटी और मसूर की दाल खाए बिना ही स्कूल का काम करने बैठ जाता। मुझे बाहर जाकर खेलने की आज्ञा नहीं थी कि कहीं फिर चोट-चोट न लग जाए क्योंकि पिछली दुर्घटना को भी आवारगी के पाप का दण्ड समझा जाता था। मैं दिन छिपे तक काम करता। बस कभी-कभी उठकर शिव को चिढ़ाता जिसके अदकोष हर्निया के रोग से सूज गए थे और मुझे वे बकरी के स्तन-से जान पड़ते थे जिन्हें दूहा जा सकता था। कई बार मैं पलटन का बैंड देखने जाता जो पहले की तरह हमारे घर के पीछे बजता था।

शाम के भोजन के बाद, जो सात बजे हो जाता था, पिता मुझे और गणेश को पढ़ाना शुरू कर देते। बैठक की दीवार पर मिट्टी के तेल का छोटा-सा लैम्प लटका रहता जिसपर कागज का शेड था।

पिता के गणित पढ़ाने का ढंग कुछ निराला था। वे सिद्धान्त की व्याख्या करके मुझे नई प्रश्नावली का एक प्रश्न निकालने को कहते जिसे ... थे।

ारा दिन दफ्तर में और दोपहर के बाद हाकी मैच में व्यस्त रहने के बाद उन्हें ांका थी कि वे खुद सवाल नहीं निकाल पाएंगे और वे मेरी गलतियों से लाभ उठाना चाहते थे। अगर किसी चमत्कारी उपाय से मैं सवाल निकालने में सफल हो जाता तो वे मुझे सरसरी तौर पर दूसरा सवाल निकालने को कह देते। लेकिन अगर मैं असफल रहता तो वे पूरे मनोयोग से सिखाना शुरू करते।

"इधर आ, मादर···" वे मेरे हाथ से स्लेट लेकर चिल्लाते। "निकम्मे बदमाश, इधर आ ! तू इस साल इम्तहान में कभी पास नहीं हो सकता।"

मेरी आंखों में आंसू उमड़ आते और मैं इतना घबरा जाता कि पिता स्लेट पर समझाना शुरू करते, उसे मैं समझ न पाता। पिता के मुख से निकलनेवाले हर शब्द के साथ मैं सिर हिलाकर 'समझ गया' का संकेत करता। हालांकि मेरा मन हिंदसों के बजाय उस कहानी में भटक गया होता, जो मैंने 'फौजी अखबार' में पढ़ी थी।

जब पिता अपनी फौजी मूछों में से थूक का लौंदा डालकर स्लेट पर से सवाल मिटा देते तो मैं उसे निकालने के लिए देर तक उलझा रहता।

"क्या तुमने सवाल निकाल लिया ?" पिता पूछते। "तुम इसपर इतना समय क्यों लगा रहे हो ?"

"मैं निकाल रहा हूं," मैं झूठे उत्साह से उत्तर देता। मैं आशा करता कि शायद प्रकाश की कोई किरण सहसा मेरे मस्तिष्क में प्रवेश कर जाए अथवा समय टालने और सत्य-दीक्षा से बचने का कोई मार्ग निकल आए।

लेकिन पिता मेरे हाथ से स्लेट छीन लेते और यह देखकर कि मैंने आधा भी सवाल नहीं किया, वे भड़क उठते, "सूअर के बच्चे, तुम्हारा ध्यान कहां है ? तुम्हारे दिमाग में भुस भरा है !"

"बाजी, मैं इसे निकाल सकता हूं" झूठ बोलने की इच्छा न होते हुए भी मैं झूठ बोलता।

"अच्छा, बताओ यों तुम इसे क्योंकर निकालोगे ?" पिता क्रोध में भरकर कहते। उनकी मोटी-मोटी काली भवों के नीचे आंखें लाल होतीं।

मैं मौन रहता।

खट से मेरी पीठ में ठोकर लगती क्योंकि वे जिस स्थिति में घोड़े के बालं से बने गाव-तकिये के सहारे बैठे होते, उसमें हाथ से मारने के बजाय लात

मारना सहज था।

मैं रोने लगता। सुबकियां मेरे निचले होंठ पर कांप-कांप जातीं।

"तनिक झिड़कने पर रोम्रो मत। अपनी आंखें न सुजाम्रो," पिता कहते। "म्राम्रो, दोबारा देखो। लेकिन इस बार ध्यान देना वरना मैं तुम्हारे प्राण खा जाऊंगा।"

दूसरी बार पिटने के भय से अब मैं कांपता हुआ ध्यान से सुनता।

सवाल काफी आसान था क्योंकि जब पिता ने स्लेट से मिटाया तो मैंने झट निकाल दिया।

तब उन्होंने कहा कि दूसरा निकालो।

मगर अब तक मैं शाम के तनाव से थक चुका था। मैं उस समय की प्रतीक्षा कर रहा था जब पिता के मुख की कठोरता नरम पड़े।

"बाजी, मुझे नींद आ रही है," यह देखकर कि पिता का चेहरा ऐंठा हुआ नहीं है, मैंने कहा।

"अभी सिर्फ नौ बजे हैं और तुम्हें नींद आ रही है, सूम्रर!" पिता चिल्लाए। "अच्छा जाम्रो, खसमों को खाम्रो!" तब वे गणेश की ओर पलटे, "और तुम बदमाश, तुम क्या कर रहे हो?"

पिता की गरज सुनकर मैं फिर कांपने लगा। जबकि गणेश शामत आई देख पीछे हट गया।

"यह क्या है? क्या बात है?" मेरी मां पूछती। वह रसोई के बर्तन मांज-धोकर लौटी थी।

"तुम क्या समझती हो?" पिता ने अपने क्रोध को उचित समझते हुए मेरी मां से कहा। "मैं इनके लिए जो मगज़-पच्ची करता हूं, क्या तुम समझती हो कि उसके लिए ये कुत्ते मेरे कृतज्ञ हैं? यह हठी और अभागा है और वह कूढ़-मग्ज़ है। इन्हें क्या नहीं मिलता? मैं तो अभावों में पला था। मेरे पास पहनने को कपड़े नहीं थे और मां ने मुझे कभी एक पैसा नहीं दिया। किसीने मुझे पढ़ाया नहीं, बल्कि मैं दूसरों के बच्चों को पढ़ाकर अपनी फीस देता था। मैं भुंजे की दुकान से दो पैसे के चने लेकर खाता था और प्याऊ पर पानी पी लेता था। हम इन्हें अच्छा खाना देते हैं और इनके हर आराम का ध्यान रखते... [illegible] ताकि मुझे अपनी मामूली तनखाह से इनकी फीसें देनी होती हैं, पुस्तकें

होती हैं और भी सब कुछ करना पड़ता है। लेकिन क्या तुम समझती हो कि इसके लिए ये मेरे कृतज्ञ होंगे ? मुझे इनके संस्कार कराने होंगे और इनकी शादियां करनी होंगी—और मुझे इनसे क्या मिलेगा !"

"और उस खसमखाने दड़े ने क्या दे दिया ?"

"हां, मैंने उसके लिए इतना कुछ किया और मुझे बदले में क्या मिला ?" पिता सहमत हुए। "मैंने उसे पढ़ाया और पांच हज़ार रुपया जो मुश्किल से बचाया था, वह उसके ब्याह पर खर्च कर दिया और अब मुझे उसके बदले क्या मिला ? मैं चाहता था कि वह डाक्टर बने; लेकिन, पत्नी की बातों में आकर उसने कालेज छोड़ दिया। मैंने जो नौकरी उसे ले दी है, क्या वह इसके लिए मेरा एहसान मानता है ? अगर करनल साहब की सिफारिश जेलों के इंसपेक्टर जनरल के पास न जाती तो नायब जेलर का पद उसे कभी न मिलता। साठ उम्मीदवार और थे। लेकिन मुझे किसीकी कुछ भी मदद नहीं मिली, मैं अपनी हिम्मत से यहां तक पहुंचा हूं···"

"सुन लो बेटा, तुम्हारे पिता ठीक कह रहे हैं," मां ने हमसे कहा।

"खैर," उन्होंने हरीश के बारे में बात जारी रखी, "मैंने अपना फर्ज़ पूरा कर दिया। वह जो चाहे करे। भगवान का शुक्र है कि उसकी मां को उसकी सहायता दरकार नहीं है। और ये आवारे, इनके बारे में भी मैं अपना फर्ज़ पूरा करूंगा। अगर मुझे नौकरी से जवाब या अवकाश न मिल गया तो इनकी स्कूल की शिक्षा पूरी हो जाएगी। पर मैं इनकी शिक्षा पर इतना पैसा खर्च नहीं करूंगा जितना हरीश पर किया। इनकी शिक्षा का खर्च काफी है। इन्हें अपने-आपको इस योग्य सिद्ध करना होगा। इन्हें मेहनत करके इम्तहान पास करना होगा। अगर मैं इन्हें पढ़ाने का कष्ट करता हूं तो इन्हें इसके लिए मेरा कृतज्ञ होना चाहिए। न कि एक सवाल निकालते और एक पृष्ठ पढ़ते हुए रीं-रीं करने लगें। इन्हें हर साल इम्तहान पास करना होगा। अगर नहीं करेंगे तो मैं घर से निकाल बाहर करूंगा···"

"ये हमारी संतान हैं," मां ने सोचते हुए कहा। "हमें इनसे किसी बदले की आशा नहीं रखनी चाहिए। लेकिन जब भी मुझे खसमखाने हरीश का खयाल आता है, उसकी कृतघ्नता पर दिल जलने लगता है। क्या उसने बहू को एक बार भी मेरी सेवा करने को कहा ? उसने कभी मुझे कोई उपहार भेजा ? कभी यह

कहा, 'लो मां, जब मैं जून की गर्मी में स्कूल से घर लौटता था तो तुम मुझे छाछ का गिलास देती थीं, यह एक महीने की तनखाह मुझसे लो और अपने लिए साड़ी या कोई दूसरी चीज़ खरीद लो।' यह सोचकर मेरा कलेजा पानी हो जाता है कि वह बहू का इतना गुलाम हो गया कि हमारे बारे में सोचता तक नहीं। मेरा खयाल है कि बहू ने उसपर जादू कर दिया है।"

"वे जहन्नुम में जाएं," पिता ने सहानुभूति जताते हुए कहा, "हमें उनका कुछ नहीं चाहिए। बुढ़ापे के लिए हमारे पास अपना काफी है। वे अपने चाचा प्रताप की तरह आवारा और बरबाद फिरें।"

उन्होंने अखबार पढ़ना छोड़ दिया और महीनों का तनाव समाप्त करके मां से घुल-मिलकर बातें करने लगे। हंसते-बोलते और मज़ाक करते हुए उनकी मां से एक विचित्र एकरूपता स्थापित हो गई। वे दोनों अब एक ऐसे बूढ़े गृहस्थ जोड़े की तरह बैठे थे, जिसने अपने सब मतभेद भुलाकर जीवन को स्वीकार कर लिया हो, थोड़ी-सी पूंजी जोड़ी हो, एक परिवार का पालन-पोषण किया हो और अब अपने विवाह की रजत-जयंती मनानेवाले हों।

अब तक मैंने स्कूल जाने के लिए अपना बस्ता तैयार कर लिया था और मैं चारपाई पर जा लेटा।

पीले रंग के लिहाफ में लेटकर मुझे गर्मी और आराम का अनुभव हुआ; लेकिन मैं सो नहीं सका, क्योंकि इतनी जल्दी लेट जाने के लिए मैं अपने-आपको अपराधी समझ रहा था और मैं जानता था कि मुझे यह अनुमति बीमार रहने के कारण मिली है।

दूसरे कमरे में जो कुछ हो रहा था उधर कान लगाने से मैं समझ गया कि गणेश मुश्किल में फंस गया है, क्योंकि वह मौलाना नज़ीर अहमद की लिखी हुई कविता नहीं सुना पाया।

"अब मेरे लिए मौका है," मैंने सोचा और कविता-पाठ शुरू कर दिया। भाई की पुस्तक से मैंने यह कंठस्थ कर ली थी।

"सूअर, चुप रह !" पिता ने सहज स्वर में कहा। मैं जानता था कि मैं अब भी किसी हद तक उनका लाड़ला हूं।

लेकिन मैंने सुना कि गणेश को गालियां दी जा रही हैं। मेरा दिल जोर-ज़ोर से धड़कने लगा और एक प्रकार की विकलता अनुभव हुई जिसका कारण गणेश के प्रति सहानुभूति नहीं बल्कि पिता अगर अधिक चिढ़ गए तो मेरे अपने पिट जाने का भय था। यह जानते हुए भी कि पिता जब मुझे झिड़कते थे तो गणेश को अफसोस होता था, मेरे मन में उसके प्रति अवज्ञा का भाव था। शायद इस-लिए कि वह मुझे छोड़कर दूसरे लड़कों के साथ खेलता था। फिर उस अशिष्टता के कारण जिसे माता-पिता ने हर तरह से प्रोत्साहित किया था, मैं उसके चिपटे चेहरे, तिकोने कानों और आभाहीन आंखों से घृणा करता था। उसका धूर्त और कपटी स्वभाव भी मुझे पसंद नहीं था क्योंकि वह अपने जेब-खर्च का हर एक पैसा बचा लेता था और हमेशा उचित आचरण द्वारा लोगों की प्रशंसा प्राप्त करता था। यों वह अपने-आपको सरल और शिष्ट लड़का सिद्ध करता था जबकि मैं जानता था कि वह वास्तव में ऐसा नहीं है। इसके विपरीत मैं अपनी मूढ़ता और उद्दंडता के कारण बदमाश प्रसिद्ध था।

"इसे डांटो मत," मां ने गणेश का पक्ष धारण करते हुए मेरे पिता से कहा।

"मोटी समझ का मूर्ख।" पिता ने कहा।

"मोया, कल याद कर लेगा," मां ने उसके अपराध को कम करते हुए कहा; लेकिन प्रेम से इतना नहीं, जितना दया भाव से, "यह धोबियों, भंगियों और बाजेवालों के नीच लड़कों के साथ खेलकर थक जाता है।" वह अपने इस लड़के को पसंद नहीं करती थी और जब से उसने भाभी द्रौपदी के बारे में, जब वह हमारे साथ रहती थी, झगड़ा किया था, वह मां की नजर में और भी गिर गया था। लेकिन इसी कारण वह उसके प्रति कुछ अधिक दया-भाव दिखा रही थी।

जब मैंने मां को गणेश का पक्ष लेते देखा तो मैं चिढ़ गया और मैं इस बात का विश्वास कर लेना चाहता था कि मां पूर्ण रूप से मेरी है। उसे पुकारने का तो साहस नहीं हुआ; लेकिन गणेश से पूछा, जिसे बैठक से झिड़ककर निकाल दिया था, "क्या मां आ रही है?"

"नहीं, वह रसोई में है।" गणेश ने उत्तर दिया।

"उसे कहो कि मैं बुला रहा हूं," मैंने कहा।

इस समय जब उसका अपमान हुआ था और हम घर में थे, उसने मेरी

बात मान ली, वह चिल्लाया "मां, कृष्ण बुला रहा है।"

"उसे कहो सो जाए," मां ने उत्तर दिया। "मैं रसोई में व्यस्त हूं। और चिल्लाए नहीं, क्योंकि नन्हा शिव जाग उठेगा।"

"शिव ने बिस्तर में पेशाब कर दिया।" मैंने उसे चौंकाकर अपने निकट लाना चाहा।

"ओह, उसे कहो कि चुपचाप सो जाए और शोर न करे," पिता ने 'सिविल-एण्ड मिलिटरी गजट' पढ़ते हुए कहा। "उस गुप्त को गणित नहीं आता और बड़े को कविता याद नहीं। ये इस साल अवश्य फेल होंगे!"

"ये पास हो जाएंगे," मां बोली। "आप योंही घबरा जाते हैं। आपका दिल कमजोर है। आप एक क्षण में विश्वास खो बैठते हैं। देवता इनकी सहायता करेंगे। मैं इनके लिए प्रार्थना करूंगी।"

इम्तहान के दिन मां अपनी मूर्तियों के आगे बैठी थी और उनसे हमारी सहायता के लिए प्रार्थना कर रही थी। मगर हम उससे कह रहे थे कि वह प्रार्थना-प्रार्थना छोड़कर खाना तैयार करे ताकि हमें पहुंचने में देर न हो जाए। पर वह कब मानने वाली थी! उल्टे उसने जिद की कि हम भी हाथ जोड़कर उसके देवताओं के आगे बैठें और उसने पहले से कहीं लम्बी प्रार्थना की। आखिर जब पिता ने उसे आवाज दी तब वह उठी और झटपट भोजन तैयार किया। जब हम गरम-गरम ग्रास गले के नीचे उतारकर जाने को तैयार हुए, तो उसने कहा कि हम काजल लगवा लें ताकि रास्ते में बुरी नजर से बचे रहें।

लेकिन वह सिर्फ इस नकारात्मक और रक्षात्मक शास्त्र-विधि ही से संतुष्ट नहीं हुई। अब उसने केसर में अपना अंगूठा भिगोकर हमारे माथे पर बड़े-बड़े टीके लगाए। तब उसने इस बात से संतोष किया कि हमारे गले में चांदी के जो तावीज हैं, जिनमें हाथी के बाल और हिरन की नाभि की कस्तूरी है, वे सुरक्षित हैं। अमंगल को टालने और इम्तहान में सफल होने के लिए शायद यह सब कुछ भी काफी नहीं था। इसलिए उसने कहार से कह दिया था कि जब घर से चलें तो वह पानी से भरा घड़ा लेकर हमें सामने से मिले। मगर मैं पंडित जयराम जो दूसरे मकान पर अत्यंत शुद्ध-पवित्र

था, लेकिन जब कोई आवश्यक काम से जा रहा हो तो उसका मिलना अशुभ समझा जाता था, पीतल की एक छोटी-सी लुटिया हाथ में लिए पलटन के पाखाने की ओर जा रहा था। यों कहार से पहले उसने हमारा रास्ता काटा। मां बहुत घबराई, लेकिन वह हमें वापस भी नहीं बुला सकती थी क्योंकि वापस बुलाना और भी बुरा था। इसके अलावा चाहे यमदूत ही सामने खड़ा होता, हम तब भी न लौटते क्योंकि आज इम्तहान के दिन स्कूल में देर से पहुंचने का भय उससे भी भयंकर था। हम आगे बढ़े।

जब हमने स्कूल से लौटकर अपनी टोपियां और बस्ते हवा में उछालकर खुशी से घोषित किया कि हम दोनों पास हो गए हैं तो मां को विश्वास था कि उसके टोने-टोटके, तावीज़, काले चिन्ह और लाल केसर के तिलक ने ब्राह्मण की कुदृष्टि के कुप्रभाव को समाप्त करके हमारा मंगल किया।

अब क्या था; पिता ने खूब शेखी बघारी और हमारी सफलता उनके लिए आत्मश्लाघा का विषय बन गई।

दोपहर के बाद सूबेदार सुर्जन, पंडित जयराम, कुछ अफसर और कुछ ...हो एकत्र थे। मेरे पिता भी वहीं बैठे थे। हम दौड़ते हुए गए और उन्हें यह खुशखबरी सुनाई तो उन्होंने सबको मुखातिब करके गर्व से कहा, "आपको मालूम है, मैंने इन्हें घर पर खूब पढ़ाया। अलबत्ता बुल्ली को सख्त मेहनत करनी पड़ी। उसने साल-भर का कोर्स चार महीने में किया। जबकि उसका घाव अभी अच्छी तरह भरा नहीं था..."

"होशियार पिता के होशियार लड़के!" सूबेदार गरकसिंह ने कहा। यही बात थी, जो पिता सुनना चाहते थे।

"भगवान इनकी उम्र लम्बी करे!" पिता ने कहा, लेकिन यह नहीं कहा, 'ताकि ये कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाएं।' घर पर वे इसीपर अधिक ज़ोर देते थे और इसीको बच्चों के प्रयास का उद्देश्य बताते थे। हमारे साथ घर के बजाय बाहर उनका व्यवहार सहृदयतापूर्ण होता था और वे शिकायत भी नहीं करते थे।

अपनी प्रशंसा होते देख मैंने कहने का साहस किया, "अब मेरी एक अभिलाषा है। मैं आशा और प्रार्थना करता हूं कि गणेश एक साल फेल हो जाए ताकि मैं भी कक्षा में उसके साथ मिल जाऊं।"

लोग हंसे। कुछ ने स्नेह से मेरे कान ऐंठे, कुछ ने मेरी पीठ पर थपकी दी और

मुझे 'बदमाश' कहा। गर्व से मेरी छाती तन गई।

मगर यह महसूस करके कि बड़ा भाई भी मौजूद है, मैं आंतरिक भय से कांप गया क्योंकि अपनी गुप्त अभिलाषा प्रकट करने से भारी संकट की सम्भावना उत्पन्न हो गई थी।

लेकिन बीमारी के बाद से गणेश ने मेरे मुकाबले में हीन स्थान स्वीकार करना शुरू कर दिया था और इम्तहान में सफलता के कारण मेरा अभिमान बढ़ रहा था।

८

मेरे बड़े मामू शरमसिंह का ब्याह था। इस अवसर पर हम दोनों भाई इम्तहान के बाद की छुट्टियों में मां के साथ अपनी ननिहाल डस्का गांव में गए। इस घटना को मेरी बाद की कल्पनाओं में एक सुंदर और विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

मामू खुद हमें लिवाने और इस शुभावसर के लिए पिता से रुपया उधार मागने आए थे। इस कारण हम बच्चों ने महसूस किया कि हमारे माता-पिता और मामू शरमसिंह मे कुछ चख-चख भी हुई, क्योंकि मां ने कहा, "उसके मैके के लोग अपने दामाद से हमेशा निर्लज्जता से पैसा मागते रहते हैं।" मुझे बाद में मालूम हुआ कि लोग "ऐसा नहीं करते।" आखिर 'पानी से खून गहरा है' के सिद्धान्त ने अपना काम किया।

पिता ने सोचा कि इम्तहान की सख्त मेहनत के बाद हमे छुट्टी दरकार है और मां को शिव से, जो हाल ही में बीमार रहा था, छुटकारा चाहिए। इसलिए शिव को 'छोटी मां' गुरदेवी के सुपुर्द किया गया। हमारे अत्यंत सुंदर कपड़े और आभूषण ट्रंको मे रखे गए और हमें रात की गाड़ी से गुजरावाला के लिए रवाना कर दिया गया जहा से हमें इक्के से डस्का जाना था।

पहली बात जिसने मेरे निरीह मन को प्रभावित किया, वह नौशहरा छावनी की और विशेषकर लालकुर्ती की साफ-सुथरी दुनिया के मुकाबले मे, जहा गोरे टामियों की बारकें थीं, मुझे गुजरांवाला का उपनगर बडा ही गदा और अव्यवस्थित जान पड़ा। गुजरांवाला की घनी आबादीवाली तग गलियां, टूटे-फूटे मकान, दीवारों पर गाय के गोबर के उपले और बदबूदार नालिया—मेरी नन्ही

आत्मा घबराई। स्टेशन से बाहर तांगों का अड्डा था और कोचवान चिल्ला-चिल्लाकर सवारियों को बुला रहे थे। मुझे उस समय चैन पड़ा जब हम किराया ठहराकर इक्के में बैठकर डस्का को चल पड़े। मां ने बहुत समझाया कि गुजरां-वाला नाम गूजरों के कारण पड़ा है, यहां पशु अधिक होने के कारण गंदगी है, पर इससे मैं संतुष्ट नहीं हुआ।

जब शहर पीछे छूट गया तो ठंडी हवा के झोंकों और कच्ची सड़क पर इक्के के झकोलों के कारण मुझे नींद आने लगी और मैं मां की गोद में पड़कर सो गया। लेकिन जब घंटा-सवा घंटा बाद मेरी आंख खुली तो अपने चारों तरफ हरियाली देखकर मन खिल उठा। और मेरी बालसुलभ कल्पना ने अनुमान लगाना शुरू किया कि कितने लाख हरी घास के डंठल, कितने करोड़ हरे पौधे और कितने हरे पत्ते होंगे जिनके कारण यह विशाल भू-भाग हरा दिखाई देता है। शायद पिछली रात वर्षा हुई थी क्योंकि धूल न थी और रास्ते की कीचड़ भी हरी-नीली थी। सब चीज़ें वसंत के दिन की गहरी स्निग्धता में डूबी जान पड़ती थीं। यह दृश्य उससे भिन्न था जो मैं गर्मी के दिनों में बर्नर पहाड़ियों पर देखा करता था और जो मेरे बचपन की पृष्ठभूमि था।

जब हम गांव के निकट पहुंचे तो दृश्य बदल गया। चारों तरफ सरसों के पीले खेत तीसरे पहर की हवा में लहलहा रहे थे जबकि स्निग्ध नीले आकाश में सूरज धधक रहा था। धरती का वह पीलापन और आकाश की नीलाहट मेरे मन पर ऐसी अंकित हुई कि बाद में जब कभी मुझे इन रंगों का ध्यान आया तो मध्य पंजाब के ये खेत हमेशा मेरी कल्पना में लहलहा उठे। कारण, शायद यह रहा हो कि वाकई एक बड़ा गांव मैंने पहली बार देखा था जो सीमाप्रान्त के किलों जैसे घरों से बने गांवों से भिन्न था। फिर यह वह गांव था जहां मेरी मां का जन्म हुआ था, जो उसकी तमाम कहानियों में आता था। और यह उसके पिता निहाल-सिंह का गांव था, अंग्रेज़ों के विरुद्ध अंतिम सिख लड़ाई में जिसके कारनामे निकट-वर्ती नगर सियालकोट के राजा रसालू की कहानी की तरह मेरे मस्तिष्क पर अंकित थे।

कौतूहल से फैली हुई मेरी बड़ी-बड़ी आंखों ने एक ही नज़र में लम्बे स्वस्थ सिख किसानों को धरती खोदते अथवा सिरों पर घास के बड़े-बड़े गट्ठर उठाए नंगे पां[illegible] जाते देखा जबकि उनकी औरतों के सिरों पर सरसों के ताजा साग के

टोकरे थे और वे पशुओं की हांके लिए जा रही थीं।

मेरा मामू दरमसिंह जो यात्रा में चुप और मौन रहा, बड़ा अभिमानी जान पड़ता था, क्योंकि उसने हम बच्चों को बताया कि वह हमें घर की भैंस का दूध पिला-पिलाकर कैसे कुछ ही दिन में मोटा-ताज़ा कर देगा। मां को उसकी बातें पसन्द नहीं थीं क्योंकि इसका अर्थ यह था कि हमें घर पर खाने को नहीं मिलता। मामू ने तब विषय बदल दिया और अपनी बहन को उन लोगों के बारे में बताने लगा, जिन्हें वह अपनी जवानी में जानती थी। लेकिन गणेश और मैं भैंस के बारे में उत्सुक थे इसलिए हमने मामू पर सवालों की बौछार कर दी, जैसे उसका नाम क्या है, वह कितना दूध देती है और क्या खाती है। मैं तो यहां तक बढ़ा कि उससे यह वादा ले लिया कि वह मुझे उसका दूध दुहने देगा, मैं उसे चरागाह में ले जाऊंगा और अपने साथ नौशहरा लेता आऊंगा।

आखिर रास्ता डस्का की पुलिस चौकी के बाहर एक छोटी गली में चौराहे पर खत्म हुआ। इक्का एक तंग बाज़ार में से होता हुआ, जिसमें किसानों की भीड़ थी और जिन्होंने मेरे मामू और मां को प्रणाम किया और हमें आशीर्वाद दिया, नाना निहालसिंह की हवेली के बाहर गली में रुका। दरवाज़े के दोनों ओर कुछ तेल डाला गया और हमने सकुचाते हुए आंगन में प्रवेश किया। जब मां एक लम्बी, गोरी स्त्री से, जो बाद में मालूम हुआ हमारी नानी गुजरी थी, रिवाज के अनुसार गले मिलकर रोने लगी तो हम और भी सकुचा गए। अब भीतरी कमरे से नाना निहालसिंह बाहर आए। वे हृष्ट-पुष्ट बूढ़े व्यक्ति थे, उनकी नाक और आंखें बाज़ जैसी थीं, और सुन्दर, सफेद छोटी-सी दाढ़ी थी और उन्होंने सफेद वस्त्र पहन रखे थे। मा ने घुटनों पर झुककर उन्हें प्रणाम किया। "नानी और नानाजी को 'पैरी पौना' कहो," मां ने हमें कहा, और हम दोनों ने हाथ जोड़कर बुजुर्गों के पांव छूए।

नानी ने हमें सस्नेह चूमा जबकि नाना ने हमारा सिर पलोसा और बारी-बारी हमारे चेहरे अपने हाथ की हथेलियों में थामकर पूछा कि हमने उनका साहस और वीरता कितनी अपनाई है।

मैं चूंकि लजाता नहीं था, इसलिए हम उनकी गोद में बैठ गए और पूछा कि जिस भैंस के बारे में हमें मामू ने बहुत कुछ बताया था, उसे हम अपने साथ नौशहरा ले जा सकेंगे? इसपर नाना खिलखिलाकर हंस पड़े और हमें भैंस

देखकर यह बताने को कहा कि आया हम उसे पसन्द भी करते हैं ? जब उन्होंने हमें यह विश्वास दिला दिया कि 'सुचि' हमारे साथ जाएगी तो हम उनके उपासक बन गए। फिर उन्होंने भैंस सुचि और छप्पर के नीचे बंधे हुए दूसरे पशुओं के बारे में बहुत-सी बातें सुनाईं, जिनमें घरेलू मुहावरों और कहावतों का पुट था। कुछ ही क्षण में हम एक-दूसरे के ऐसे मित्र बन गए जैसे हम उन्हें अपने जन्म से जानते हों।

जब हम पशुओं के बाड़े से उस धुंधलके में बाहर आए जो नीले आकाश से उतर रहा था तो डस्का के कच्चे मकानों पर पूर्ण निस्तब्धता छाई थी। तब जैसे कहीं दूर से, मकानों के नीचे से प्रार्थना की और घंटे-घड़ियालों की आवाज़ सुनाई पड़ी। नाना निहालसिंह भी अपने कंठ में कोई सिख प्रार्थना गुनगुनाने लगे। माला जपते हुए वे लम्बे-लम्बे वाक्यों में कभी-कभी हमसे बात भी करते थे। हमारे मुंह अपनी निगरानी में धुलाए और तब हमें मोटी-मोटी रोटियां गोश्त और सब्जियों के साथ खिलाईं जिनमें ढेर-सा मक्खन पड़ा हुआ था।

तब हमें बारी-बारी से उठाकर लकड़ी की सीढ़ी द्वारा मकान की बड़ी छत पर पहुंचाया गया जहां चारपाइयां पंक्तियों में बिछी हुई थीं। जब नाना निहालसिंह ने हमें अपनी चारपाई पर लिटाया ही था कि हमारे मामू दयालसिंह और सरदारसिंह आ गए, जो नज़दीक के गांव में गए हुए थे।

"ये तुम्हारे भानजे हैं।" नाना ने उन्हें बताया।

"एह, ये अपने बाप के बजाय अपनी मां पर अधिक पड़े हैं," मामू दयालसिंह ने कहा। वह मुस्कराते हुए चेहरे और उदार चित्त का विशालकाय व्यक्ति था।

"शायद ये मिठाई खाना पसन्द करें," मामू सरदारी ने कहा। उसका चेहरा सेब जैसा सुर्ख था। "मैं बरफी लाता हूं।" वह कहते ही चला गया।

जाने हमारे प्रति देहातियों के व्यवहार की यह सरलता, उदारता या स्निग्धता क्या थी कि हम उन्हें प्यार करने लगे। मेरा खयाल है कि यह उनकी स्निग्धता अतिथि-सत्कार ही थी, जिसके कारण हम उनसे हिलमिल गए। कारण,

जैसे-जैसे हम बड़े हो रहे थे, माता-पिता के साथ हमारे सम्बन्ध न सिर्फ विरोधी बल्कि अधिक से अधिक शिष्टतापूर्ण और साधारण बनते जा रहे थे। इन सरल और सुन्दर आत्माओं की अकस्मात् आभा ने हमारे हृदयों को गरमा दिया, हम-में एक नये उत्साह का संचार किया, जैसे हमें घूरे पर गुप्त खजाना हाथ लगा हो।

और इस खजाने का सबसे कीमती हीरा नाना निहालू था। खुद उनके बेटे भी नाना को इसी नाम से पुकारते थे। वे एक संयुक्त परिवार में इतने स्नेह, प्यार और बिना किसी नियम और आडम्बर के जीवन बिता रहे थे।

"मैं खालसा के लिए लड़ा हूं," नाना ने अंग्रेजों के विरुद्ध अंतिम सिख-युद्ध में अपनी वीरता की कहानी सुनाई। "मैं जानता हूं कि मेरी तरह तुम्हारी मां भी बागी है क्योंकि मैंने उसके मन में फिरंगियों के प्रति घृणा भर दी है, जिन्होंने हमें हराया नहीं बल्कि गद्दारों द्वारा खरीदा है।...मैंने खालसा के लिए युद्ध किया है और मुझे आशा है कि तुम बड़े होकर मेरे और अपनी मां की तरह फिरंगियों के बागी बनोगे। तुम अपने पिता की तरह उनकी नौकरी मत करना।..."

हमें विद्रोह की सीख देकर वे अपनी प्रसन्नता में लीन हो जाते, गुरुओं की प्रशंसा के शब्द दोहराते और माला जपते। जब मैं और गणेश ऊंघने लगते तो वे हमें एक साहसी भाषण से चौंका देते :

"बेटो, मैं खालसा के लिए लड़ा; लेकिन मेरे चचेरे भाई हरबंससिंह जैसे लोग भी थे जिन्होंने अपने-आपको फिरंगियों के हाथ बेचा और दूसरों की जमीन हथियाकर जमींदार बन गए। बेटो, यह मत भूलना कि गो गरीबों की रोटी रूखी है, पर वे सख्त जान हैं।..."

वे फिर अपनी स्मृतियों और कल्पनाओं में खो जाते, गुरुओं की वाणी पढ़ते और माला जपते। उनकी सफेद दाढ़ी और सफेद वस्त्र रात के अंधेरे में चमकते जबकि एक जुगनू चमचमाता हुआ चारपाइयों के पास से निकल जाता, जैसे वह रात के अन्तिम छोर की ओर बढ़ रहा हो और फिर कभी नहीं लौटेगा। पर दूसरे ही क्षण एक दूसरा जुगनू आकर मेरी आंखें चुंधिया देता और नींद उड़ जाती।

"बेटो, भाग्य कभी-कभी आता है; लेकिन जो हल चल... [illegible] खांचा काटता है, उसको कभी कोई अभाव नहीं सताता," नाना निहा[illegible]

शुरू करते। "मैंने इस इतने बड़े परिवार को बनाए रखा। मैं और तुम्हारे मामू कठोर परिश्रम करते रहे हैं। लेकिन हम प्रसन्न हैं क्योंकि जो मेहनत करते हैं वे सम्राटों की तरह खाते हैं। और तुम्हारी नानी—मैं तुम्हें कैसे बताऊं? पुराना अनाज, ताज़ा घी और अच्छी पत्नी—स्वर्ग के तीन स्तम्भ हैं!"

"नाना, क्या स्वर्ग आकाश में है?" मैंने पूछा।

"गुरु नानकदेव के कथनानुसार स्वर्ग वह राज्य है जहां मनुष्य के सब स्वप्न पूरे होते हैं। वह आदर्श जीवन है···" नाना एक बार शुरू करके गुरु नानकदेव का उपदेश सुनाना जारी रखते और ग्रंथ साहब से शब्द पढ़कर उसकी पुष्टि करते। यह उपदेश और शब्द सुनते-सुनते हमें नींद आ जाती। मगर मुझे याद है कि उस रात मैं नींद से संघर्ष करता रहा क्योंकि जैसे रात का अन्धकार गहरा होता जा रहा था, छतों पर रौनक बढ़ रही थी। वातावरण कानाफूसी, प्रार्थनाओं और कहकहों से मुखरित था, जैसे अधिक से अधिक लोग जीवन के बहाव में बहते हुए दिन-भर के काम से रात की स्निग्ध गोद में लौटे हों और तमाम गांव में उनके उत्साह की चहल-पहल हो।···

मामू दयालसिंह ने हमें सुबह-सवेरे जगाकर पूछा कि क्या हम खेतों में घूमने और सूरज निकलने से पहले-पहले नहर में नहाने चलेंगे। अभी नींद पूरी न होने से हमारी आंखें बोझल थीं, पर इस शब्द ने हमपर जादू का असर किया। जब से हमने लुंडा नदी के किनारे सैर को जाना और पिता के हाथों में तैराकी सीखना शुरू किया था तब से तैरने के विचार में हमारे लिए जितना आकर्षण था उतना मां के सन्दूक से 'ओह कुछ' मिठाई और मेवों के अतिरिक्त और चंद ही चीज़ों में था। गणेश और मैं तुरन्त उठे और आंखें मलते और लड़खड़ाते हुए मामू दयालसिंह के पीछे चले। हमें बताया गया कि नाना निहालू, मामू शरमसिंह और मामू सरदारसिंह पहले ही 'जंगल-पानी' के लिए खेतों में जा चुके हैं।

"'जंगल-पानी' क्या होता है?" मैंने मामू से पूछा, क्योंकि मैं नाना से मिलने के लिए उत्सुक था। बूढ़े में कुछ ऐसी बात थी कि उनसे स्नेह-सम्बन्ध स्थापित हो गया था।

"बेटा, हम गांव के लोग खेतों में शौच जाते हैं और फिर कुएं या नहर पर नहाते हैं। इसीको जंगल-पानी कहते हैं।"

मुझे ये शब्द अच्छे लग रहे थे और मैं मामू के पीछे-पीछे फुदक रहा था।

थोड़ी ही देर में हम गली से निकलकर खेतों को जा रही पगडंडी पर चलने लगे। रात की ओस घास और पौधों पर पड़ी थी और वह इतनी अधिक थी कि मेरा निरीह मन आश्चर्यचकित था। यह कैसा चमत्कार था कि हर पत्ती और फूलों की प्यालियों में पानी की नन्ही-नन्ही बूंदें इतनी अधिक संख्या में एकत्रित हो गईं। अपनी नासमझी में मैंने ओस को हाथों में इकट्ठा करना चाहा, शायद रहस्य को समझने का मेरा यही ढंग था।

मैं ओस से खेलता हुआ पीछे छूट गया और मामू दयालसिंह नीम से दातूनें तोड़ने लगा जो मसूढ़ों के लिए गुणकारी समझी जाती थीं। जब वह दातून तोड़ और बना चुका तो उसने मुझे पुकारा और हम आगे चले। पहले ही बहुत-से मर्द, औरतें और बच्चे नहर की ओर जा रहे थे।

हमारे शौच से निवृत्त होते-होते सूरज चढ़ आया और हम खेतों में से नहर की ओर चले। अब ओस की हरएक बूंद भाला था जिसके विरुद्ध तलवार की जरूरत थी। मैंने मामू से कुल्हाड़ी लेकर संजरनुमा थूहरों से युद्ध किया। इस लड़ाई में व्यस्त मैं इतना अंधा-धुंध दौड़ रहा था कि उदार हृदय मामू दयालसिंह भी, जिसने अब तक मुझे नहीं झिड़का था, इस उच्छृंखलता के लिए मुझे मना करने पर मजबूर हुआ।

मगर मैं कब माननेवाला था। मेरे इस युद्ध को अब नहर में एक दूसरी शरारत का रूप धारण करना था। गणेश पहले ही कपड़े उतारकर नहर में खड़ा था और पानी इधर-उधर उछाल रहा था। मैंने झटपट कपड़े उतारे और किनारे के निकट पानी में जा घुसा। गणेश के लाख मना करने पर भी मैंने उसपर पानी फेंकना शुरू कर दिया। मेरा भाई चिढ़ गया और उसने नरमी से मुझे रोकना चाहा। मगर मैंने खेल तब तक जारी रखा जब तक उसने आपे से बाहर होकर मुझे गालों नहीं दीं। अब मैं उसपर टूट पड़ा और हम आपस में गुत्थम-गुत्था हो गए। जब हम डूबने ही वाले थे मामू दयालसिंह लपककर आया और उसने हमें अलग-अलग कर दिया।

"बड़े भाई से क्यों लड़ते हो ?" मामू ने मुझसे कहा।

"यह सड़ियल मिजाज है और मेरे साथ खेलता नहीं।"

"तुम्हें किसीसे लड़ना नहीं चाहिए।" मामू ने नसीहत की।

चाहे मैंने गणेश को छोड़ दिया, पर मैंने मामू को सहसा जो उत्तर दिया

उससे मुझे अनजाने ही आपसी विरोध का मुख्य कारण मालूम हो गया। ये शब्द चूंकि गांव के खुले, स्वच्छंद वातावरण में कहे गए थे जहां खुद हवा भी स्निग्धता उत्पन्न करती थी और जीवन के प्रति आनन्दपूर्ण भाव उपजाती थी, इसलिए वे उसके बारे में हमेशा के लिए मेरा निर्णय बन गए।

नहर में नहाने के बाद हम कुएं वाले कुंज की ओर चले जो गांव के निकट पारिवारिक भूमि के मध्य में था। वहां नाना निहालू मूंज की चारपाई पर बैठे दरबार लगाए हुए थे। चारपाई आधी छाया और आधी धूप में थी।

उनके चारों तरफ सरसों के हरे-पीले खेत थे, सिर पर पेड़ों के हरे-भूरे पत्ते थे और कोमल सुनहरी धरती उनकी दृष्टि के नीचे दृढ़ता से बैठी थी। मैंने नौशहरा में बाबू चत्तरसिंह के मकान की दीवारों पर गुरुओं के जो चित्र देखे थे, नाना का सफेद दाढ़ीवाला गोरा और मुस्कराता हुआ चेहरा बिलकुल उन्हीं जैसा जान पड़ता था। मैंने उनके व्यक्तित्व की स्निग्धता कल शाम से भी अधिक महसूस की। वे हर एक बात को स्वाभाविक प्रमोद से स्वीकार करते थे और मनुष्य उनके सामने सहज भाव धारण कर लेता। इसीलिए उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए मुझे शरारत की जरूरत नहीं पड़ती थी।

जब हम उनके पास चारपाई पर बैठ गए तो मामू सरदारी नाश्ते के लिए छाछ की बाल्टी, पूरियां और आम का अचार लाया।

मामू शरमसिंह और दयालसिंह खेत का काम छोड़कर नाश्ता करने आ गए। ये चीजें मुश्किल से हममें बांटी गई होंगी कि एक पतला-दुबला विचित्र-सा व्यक्ति वहां आया। उसकी आंखें बड़ी-बड़ी और फूली हुई थीं; चाहे ऊपर के होंठ पर मूंछें नहीं थीं, पर तीखी ठोड़ी पर बकर-दाढ़ी थी। वह नाना निहालू के पास बैठ गया।

"सतश्री अकाल, ताया निहालू !" उसने आंख झपकाते हुए कहा। "खाने की सुगन्ध पाकर मैं यहां चला आया।"

"आओ फजलू, आओ ! हमारे सिर आंखों पर।" नाना ने कहा। तब उन्होंने सरदारी से संकेत किया कि वह उसे भी नाश्ता दे।

"एह," फजलू बोला, "दोस्त को मुसीबत में परखो, गाय को माघ-फागुन

में और बीवी का जब कोठी में दाने न हों।"

नाना सो नहीं रहे थे बल्कि माला जपते हुए सुबह की प्रार्थना कर रहे थे। फजलू के यह लोकोक्ति कहने से वातावरण में कुछ तनाव-सा आ गया। बूढे ने इसे भांप लिया और वे पलकें उठाकर सानन्द मुस्कराए। पर फजलू कुछ अधिक व्यग्र हो गया जान पड़ता था क्योंकि उसने कंधे हिलाकर सिर से नहीं-नहीं कहा लेकिन खाना लेने के लिए हाथ फैला दिए।

"ताया, ये लड़के तुम्हारे नवासे होंगे?" फजलू ने अपना मुर्गे जैसा सिर घुमाकर हमें देखा। पीली पगड़ी उसकी कलंगी थी। ग्रास तोड़ते हुए उसने फिर कहा, "बड़े ही भले लड़के हैं।" और उसने एकसाथ दो पूरियां निगल लीं। 'छोटा बदमाश मालूम होता है। उसने नज़र में अपने बड़े भाई को पीटा। यह सुंदरई का सच्चा बेटा है। बचपन में वह भी बड़ी नटखट और लड़ाका थी। लेकिन अल्लाह मियां इनकी उम्र दराज करे···पढ़े-लिखे बाप के बेटे हैं, बाबू बनेंगे। मैं चाहता हूं कि सुन्दरई का घरवाला भी आ जाता क्योंकि वह मेरी दरखास्त लिख देता। मैंने सुना है कि डिप्टी कलक्टर साहब बहादुर इस साल तमाम गरीब किसानों का लगान कम करेंगे। मैं भी दरखास्त दे देता।···"

"फजलू, तुमने यह कहां से सुना?" मामू दयालसिंह ने पूछा।

"भाई, मैं जाति का अराईं हूं और हमारी बिरादरी के बहुत-से लोग ऊंचे पदों पर पहुंच गए हैं। तुमने शहाबुद्दीन थानेदार का नाम सुना होगा। शेख अब्दुलकादिर बैरिस्टर भी हमारी बिरादरी का है। इसके अलावा और कई आदमी हैं।···जो खबर तुम तक नहीं पहुंचती, मुझ तक पहुंच जाती है क्योंकि मैं अपने कान लगाए रखता हूं।···"

"और आंखें खुली!" मामू सरदारी ने व्यंग्य किया।

"एह, छोटे भाई, तुम मुझपर हंस सकते हो, क्योंकि मेरे पास [illegible] छोटा-सा खेत है और तुम हवेलीवाले कहलाते हो। लेकिन मेरे [illegible] बहुत है, जो कभी इस्तेमाल नहीं हुआ।"

"बेशक, आपने शरीर के बजाय दिमाग इस्तेमाल किया [illegible]" दयालसिंह ने कहा।

"मगर इन्होंने दिमाग भी खराब कर लिया होता जैसे [illegible] है, तब तो मुसीबत ही आ जाती।" मामू सरदारी ने कहा।

"तुम्हारा खयाल है कि बाबू बन जाने से मैं पागल हो जाता," फजलू ने नाराज़ होकर कहा।

"ओह, बूढ़े आदमी से मज़ाक मत करो," शरमसिंह ने अपने भाइयों को डांटा।

"हमारा फजलू क्या है, बस हीरा है !" नाना ने मेहमान को खुश करने के लिए कहा।

"बेशक, गुदड़ी का लाल !" मामू सरदारी बोला।

"मुझे वह मज़ाक पसन्द नहीं जिससे किसीके जज़बात को ठेस लगे। वैसे तुम जानते हो, थोड़ी हंसी मुझे भी पसंद है।" फजलू ने क्षुब्धस्वर में कहा।

"लो, छाछ पियो और अपने-आपको ठंडा करो," सरदारी ने उसे खुश करने के लिए कहा।

"ज़रा रुको, मैं अपना ठूठा ले आऊं," फजलू बोला और तहमद समेटकर लंगड़ी बतख की तरह चला।

"नाना, यह फज़लू कौन है ?" मैंने पूछा।

"बेटा, यह किसान है जिसने कर्ज़ में अपनी बहुत-सी ज़मीन खो दी। अब यह छोटा-सा टुकड़ा सब्ज़ी का बोता है और तुम्हारे मामू उसपर हंसते हैं।"

"सिर्फ मामू ही नहीं सारा गांव हंसता है," सरदारी बोला।

"सरदारी, भगवान के कोप से डरो," नाना ने कहा।

"बाबा, कुछ लोग इतने समय तक इन्तजार करते हैं कि उन्हें अपनी किस्मत को रोना पड़ता है। फजलू भी उनमें से एक है। बातें तो देखो कैसी करता है···" सरदारी बोला।

"अपनी इन बातों के बावजूद उसके जो दिल में है, वह कह नहीं पाता," नाना ने उदास स्वर में कहा। "कुछ बातें ऐसी हैं जो तुम नौजवान नहीं समझते। फजलू की इन बातों के पीछे जो मूक आत्मा है उसका भेद कोई नहीं कह पाएगा।"

नाना ने जो कुछ कहा मैं नहीं समझ पाया और यह भी नहीं समझ पाया कि फजलू की बात करते हुए वे इतने उदास क्यों थे हालांकि 'अराई' मुझे भी उतना ही हास्यास्पद जान पड़ता था जितना मामू सरदारी को।

"वह अपना ठूठा लिए आ रहा है !" सरदारी बोला।

और हमने फजलू को आते देखा। वह अब भी उसी तरह लंगड़ा रहा था जैसे अपने प्याज़ के खेत को जाते हुए लंगड़ा रहा था।

"तो बेटा, तुम्हारे लिए मेरे बाग का तोहफा है।" उसने गणेश और मुझसे कहा, और हम दोनों को एक-एक गाजर दी।

"ओह चाचा फजलू, ये शहर के बाबू हैं, बन्दर नहीं!" सरदारी बोला।

"ये मेरे बेटे हैं," फजलू ने कहा। "और यह तुम्हारी मां के लिए है," उसने हमें प्याज़ की टोकरी दी।

"प्याज़!" सरदारी ने उपहास किया।

"नहीं, ये फूल हैं।" नाना बोले और फिर मुंह बनाकर सरदारी से कहा, "फजलू को छाछ दो।"

फजलू ने जब छाछ ली तो उसका सिर झुका हुआ था। उसकी आंखें बाहर को उभरी होने के बजाय अन्दर को धस गई थीं, उसका कठोर मुख पीला पड़ गया था, और दाढ़ी लगभग बालों भरी छाती को छू रही थी। मैंने जैसे एक क्षण में भराई की उदास और बहुत-सी बातों के पीछे फजलू की मूक आत्मा को भांप लिया।

"जाओ बेटा, कुएं पर खेलो और गादी पर बैठकर बैलों को हांको।" नाना ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा।

मैंने महसूस किया कि फजलू की भांति नाना भी उदास थे और उसे कुछ कहना चाहते थे। सो मैं कुएं की ओर दौड़ा और खुश था कि लकड़ी की सीट पर बैठकर बैलों को हांकूंगा।

गणेश मेरे पीछे आया लेकिन मैं उससे बहुत आगे निकल आया था और पहले पहुंचने का आनन्द ले रहा था।

खेतों की मेड़ों पर, जो गांव की कच्ची दीवारों को छू रही थीं, ज्यों-ज्यों दिन चढ़ रहा था अधिक से अधिक लोग काम-काज के लिए बाहर निकलते हुए दिखाई देते थे। कुछ खदकें खोदने जा रहे थे, उनके कंधों पर कुदालें [illegible] फावड़े और बगल में टोकरे थे। कुछ नदी कच्ची सड़क पर खाद के छा[illegible] रहे थे, कुछ फसल कट जाने के बाद की खूंटों वाली धरती में —

चराते हुए क्षितिज पर धब्बे-से जान पड़ते थे। जब मैं रहट में जुते हुए बैलों के पीछे गादी पर बैठा चक्कर पर चक्कर लगा रहा था तो प्रसन्नता और उत्साह से इतना फूल गया था कि फट जाने का अंदेशा था। यहां नौशहरा की तरह पिता की झिड़की अथवा मास्टर की चपत के भय से सवाल निकालने अथवा पाठ कंठस्थ करने की कोई भी बात नहीं थी। यहां तो संसार उतना ही खुला था जितना कि आकाश, फिर भी उतना ही रहस्यमय जितनी कि किसानों की बुझारतें जो मां कभी-कभी अवकाश के समय शाम को बूझने के लिए कहा करती थी। मनोहर दृश्य से मेरा तादात्म्य हुआ तो मैं गणेश से अपनी स्थाई लड़ाई भी भूल गया और उसे सहर्ष अपने साथ गादी पर बैठने दिया।

ज्यों-ज्यों दोपहर होती थी ठंडी सुबह गरम होती जाती थी। गणेश और मैं आंखें आधी बन्द करके कम्पित धुंध पर रंगों के बदलते हुए आकार तब तक देखते रहते जब तक कि हम थक जाते और भूख लग आती।

लगता था कि नाना के परिवार ने दिन-भर का एक नियत कार्यक्रम अपना रखा है। नानी चूंकि शरमसिंह के विवाह-सम्बन्धी सैकड़ों बातों की व्यवस्था में व्यस्त थी, इसलिए भोजन गांव के किसी लड़के के हाथ आया और हम सबने नाना के पास पेड़ों की छाया में इकट्ठे बैठकर खाया। मकई की स्वादिष्ट रोटियां थीं, सरसों का साग, मक्खन, दही और छाछ थी। यह स्वादिष्ट भोजन मैंने कितनी उत्सुकता से खाया, यह मैं कभी नहीं भूलूंगा। जिन्दगी में यह पहला अवसर था कि कोई हमारे कम खाने की आलोचना करे बल्कि मामू हमारी थालियों में ये सब वस्तुएं खूब डाल रहे थे और बड़े स्नेह और उदारता से हमें अधिक से अधिक खाने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे।

खाना खाते ही हमें नींद-सी आने लगी और सारी धरती ऊंघती-सी जान पड़ी। यह हमारी शारीरिक तुष्टि, बढ़ती हुई धूप और खेतों की चमक का समूचा प्रभाव था। इससे पहले कि हम यह जानें कि हम कहां हैं, हम नाना निहालू की चारपाई के निकट पड़ी दूसरी चारपाई पर पड़े सो रहे थे।

जब हमारी आंख खुली तो दोपहर ढल चुकी थी और मामू सरदारी थोड़ा परे बैठे ठंडाई रगड़ रहे थे। हमने कुएं के ताजा पानी में मुंह धोया। तब हमें बादाम की ठंडाई पीने को मिली। अपनी-अपनी पसन्द की बात है, ठंडाई मुझे अच्छी नहीं लगी जो मैंने लगभग उलट दी।

मामू अपने-अपने काम समाप्त कर चुके थे। धरमसिंह ने पानी के लिए नालियां खोदी थी और सरदारी ने ठंडाई रगड़ी थी। अब वे घर चलने को तैयार थे।

"अगर तुम भैंस को साथ ले जाना चाहते हो, तो मेरे साथ आओ, और मैं तुम्हें दिखाऊंगा कि उसे कैसे नहलाया, खिलाया और दूहा जाता है।"

इस निमंत्रण पर मेरी बाछें खिल गईं और मैंने जिद की कि भैंस और बैलों के चारे में से कुछ मैं भी उठाऊंगा जबकि गणेश नाना के साथ घर जाने के लिए रुका रहा। मैं मामू धरमसिंह के साथ चला ताकि चरवाहे से, जो उसे दिन-भर चराने के लिए ले गया था, भैंस ले आएं।

मगर भैंस सुचि के मन में कुछ और था। उसने जब देखा कि एक अजनबी और वह भी बालिश्त-भर का लड़का उसकी पीठ पर सवार है तो उसे यह बहुत अखरा। ज्योंही मैंने उसे एड़ लगाई तो वह तुरन्त दौड़कर तालाब में घुसी और मुझे डुबो देने का प्रयत्न करने लगी।

सुचि के इस निर्णय पर मामू धरमसिंह बड़ा घबराया। इस बात पर अफसोस करते हुए कि क्यों मुझे भैंस की पीठ पर बैठाया और इस भय से कि कहीं मैं डूब न जाऊं, मामू ने मुझे एड़ लगाने के लिए झिड़कना शुरू किया। सुचि समझी कि झाड़ उसपर पड़ रही है और इसे अपना और भी अपमान महसूस किया, इसलिए उसने कदम पहले से तेज कर दिया और वह झूलती-झिल्लाती और नथने फड़फड़ाती हुई तालाब के मध्य में चली गई। इन परिस्थितियों में इसे चमत्कार ही समझिए कि मैं भैंस की कोहान से चिपटा रहा। पर इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि मैं डर गया था और मैं भय से चीख रहा था। यह दूसरी बात है कि चीखें मेरे मुंह से बाहर नहीं निकल रही थीं।

इस समय एक देहाती लड़के ने पानी में छलांग लगाई और वह तैरकर भैंस के पास आ गया। जब तक मामू धरमसिंह कपड़े उतारकर और तैरकर मेरी सहायता को नहीं आ पहुंचा उसने मुझे मजबूती से पकड़े रखा। मामू ने मुझे अपने कंधों पर बैठाया और तैरकर वापस आ गया। वह इस ख्याल से बड़ा नाराज और घबराया हुआ था कि कहीं मैं डूब जाता।

लेकिन अब मुश्किल काम सुचि को यह समझाना था कि वह एक बालिश्त-भर के लड़के के पीठ पर चढ़ जाने से इतनी नाराज न हो और तालाब से निकल-

कर घर को चले।

आधा दर्जन आदमी लाठियां हाथ में लिए दो घण्टे तक संघर्ष करते रहे, तब कहीं भैंस तालाब के पानी, कीचड़ और दलदल से बाहर निकली।

उस दिन मेरे कारण मामू को जो परेशानी उठानी पड़ी, मेरा खयाल है कि इसके लिए उसने मुझे कभी क्षमा नहीं किया।

"आखिर तुम हो तो एक शहरी आदमी और बाबू!" उसने व्यंग्य किया।

जब हम घर लौटे तो आंगन में ब्याह-सम्बन्धी तैयारियों की चहल-पहल थी।

सेहन के एक कोने में एक आधा नंगा और मोटा हलवाई बैठा मट्ठियां तल रहा था जो बिरादरी में बांटी जानेवाली थीं। चिकने कपड़ोंवाले उसके दो सहायक कड़ाहे के पास बैठे बूंदी के लड्डू बांध रहे थे।

ड्योढ़ी में कुछ दर्जी बैठे रेशमी दुपट्टों पर अपनी-अपनी तेज़-तेज़ अंगुलियों कशीदा काढ़ रहे थे।

औरतें मकान के दरवाज़े पर बैठी ऊंचे-ऊंचे स्वरों में बातें कर रही थीं।

मामू शरमसिंह, गणेश और मैं सुचि को हांकते हुए तबेले की ओर जा रहे थे कि सहसा मां की आवाज़ कान में पड़ी। वह घायल पक्षी की तरह चीख रही थी। तब मैंने उसे रोते और विरोध करते सुना जबकि बीच-बीच में दूसरी औरतें उसे टोकती थीं।

पिता जब झिड़कते थे, अथवा मेरी बीमारी में या फिर अपढ़ द्रौपदी के साथ हरीश की शादी के विचार से जब उसका मन भर आता था तो मैंने उसे नौशहरा में रोते सुना था। पर उसकी ये निराश और हताश चीखें मैंने पहले कभी नहीं सुनी थीं।

मैं और गणेश उसकी ओर भागे। पर हम संकोच के कारण उसके नज़दीक नहीं जा सके क्योंकि औरतें पंचम स्वर में लड़-झगड़ रही थीं और एक-दूसरी की शिकायत कर रही थीं।

नानी ने आकर पूछा कि क्या हम मट्ठी खाना पसंद करेंगे।

इसपर मां का पारा चढ़ गया और वह बोली, "नहीं, नहीं, मेरे बच्चे

तुम्हारे घर की कोई भी चीज़ नहीं खाएंगे। मैं इस खयाल से चली आई कि तुमने यह महसूस कर लिया होगा कि जैसा अपमान मेरा पिछली बार आने पर हुआ था, मैं बर्दाश्त नहीं करूंगी। पर मैं देख रही हूं कि तुम मेरे सौभाग्य से और इस बात से जलती हो कि हरीश के पिता के पास तुम्हारे दूसरे दामादों से अधिक पैसा है···"

"नी, अपने खसम का धन अपने पास रख, हमें इसका ताना मत दे!" मेरी मां की विधवा बहन अमृतकौर ने कहा।

"खसमांनू खानियां!" मां चिल्लाई। "तुम्हीं इस सारी मुसीबत का कारण हो। तुमने अपने खसम को खाया और तुमसे यह सहन नहीं होता कि मेरा जीवित है। कंवारपन में भी तुम मुझसे जलती थी क्योंकि पिता ने घर की चाभियां मुझे दे रखी थीं। अब मेरी छाती पर चाभियों का जो गुच्छा बंधा है, तुम उसे भी नहीं देख सकती। तुम्हारा पति मर गया तो यह तुम्हारी अपनी करनी आगे आई। मैं तो उसे मारने या जहर देने नहीं आई। जब भी वह बीमार पड़ता था तुम उसे छोड़कर यहां क्यों भाग आती थीं? तुम अच्छे कपड़े पहनने और मां की दहलीज़ पर बैठकर बातें मटकाने का शौक न पालती···"

"नी, तुम मुझे नसीहत करनेवाली कौन हो?" अमृतकौर चीखी। "पिता को तुम इतनी प्यारी थीं कि हमारे लिए तो उनके पास न पैसा था न समय। तुम चूंकि बड़ी थी, इसलिए घर का सारा ज़ेवर तुम्हारे दहेज में दे दिया। इसमें क्या बुराई है अगर उन ज़ेवरों के बदले इस घर में अब कुछ लौट आए?"

"नी, देखो तो दुनिया में क्या अंधेरा छा गया!" मां ने उत्तर दिया। "हाय, अब तुम मेरी हर चीज से जलती हो! मेरे दहेज में कौन-से ज़ेवर मिले? सोने की दो बालियां और चांदी के दो कंगना! मां यहां है, उसीसे पूछ लो···"

"नहीं सुंदरई, हमने तुम्हें हार भी दिया था," नानी बोली।

"मैं जानती हूं, तुम भी मेरे खिलाफ हो," मां ने कहा। "तुम्हें याद नहीं कि हार उस समय गिरवी पड़ा था। तुमने धरमसिंह की पत्नी के लिए जो दहेज तैयार किया है, उसमें हार मुझे आज ही दिखाया।···हाय, ऐसा झूठ भी क्या!"

"तुम समझती हो कि हर कोई तुम्हारे खिलाफ है," मौसी अमृतकौर ने कहा।

"पर तुम हो, तुम हो, तुम हो!" मां चिल्लाई, "जब से मैं [illegible] तुम मेरे खिलाफ बातें बना रही हो। ओह, मुझे इस बात का बड़ा दुख है।

हूं, पिता के घर में मुझे गालियां मिलती हैं और अपमान होता है।"

और वह सिर पीटकर रोने लगी।

उसे रोता देख हम भी रोने लगे। एक तो हम लड़ाई की भयंकरता से डर गए और दूसरे मां से सहानुभूति थी।

"आओ बेटा, चलने की तैयारी करो," मां ने कहा। "हम वहां नहीं ठहरेंगे, जहां हमारा अपमान हो। मुझे अफसोस है कि हम यहां आए ही क्यों!"

"जाने का बहाना मुझे मत बताओ!" अमृतकौर बोली।

"नी, चुप रह," नानी ने उसे कहा।

"हां, हां, अमृतकौर, बड़ी बहन से तुम्हारा यह व्यवहार अच्छा नहीं," पड़ोस की एक स्त्री ने कहा। "बहन सुंदरई, उसकी बात छोड़ो। आखिर बेचारी विधवा है..."

"विधवा हूं इसलिए मुझपर दया मत करो!" अमृतकौर ने प्रतिवाद किया।

मां का धैर्य टूट गया। एक दूसरी स्त्री की सहानुभूति पाकर वह फूट-फूटकर रोने लगी।

इसी क्षण नाना निहालू आ गए। मां की सुबकियां सुनकर वे उसके पास गए और उसका सिर पलोसकर बोले, "मेरी बेटी, ये गांव की औरतें नहीं जानतीं कि तुम कितनी अच्छी हो। मेरे घर में साधु-सन्तों की जितनी सेवा तुम करती थीं मेरी कोई भी बेटी नहीं करती थी। जब से तुम गई हो साधु नहीं आते। और अब यह घर पवित्र नहीं रहा। तुम्हारे रहते इस घर में जो बरकत थी, वह भी अब नहीं है। ये सब तो तुमसे जलती हैं। अमृतकौर तो विधवा है और तुम जानती हो।..."

"बापू, तुमने मेरे विरुद्ध हमेशा इसीका पक्ष लिया," अमृतकौर ने कहा और रोने लगी।

"नी, होश कर, इतनी बड़ी हो गई और ऐसे रोने लगी!" नाना ने कहा।

"पर मैं तो जाना चाहती हूं," मां ने कहा।

"मेरी बेटी, भाई का व्याह पवित्र किए बिना तुम कैसे जा सकती हो। फिर मेरे ये नवासे! मैं कुछ दिन उन्हें अपने पास रखूंगा।"

हम अपनी आंखें मल रहे थे और सुबकियां भर रहे थे। हमें लड़ाई का कारण मालूम नहीं था; पर वातावरण की कुंठा से हमारी आंखों में भी आंसू आ गए।

जब नानी ने पीतल की दो प्लेटों में मट्ठी और लड्डू लाकर हमारे सामने रखे तो हमारे आंसू पुछ गए।

हम अभी खा रहे थे कि हवेली के आंगन में अंधेरा छा गया। मिट्टी के दिए जलाए गए। मेरी मां विक्षुब्ध मन से चारपाई पर लेट गई और मौसी अमृतकौर अपने कमरे में चली गई। बाकी सब औरतें मकान की छत पर इकट्ठी होकर ब्याह के गीत गाने और ढोलकी बजाने लगीं।

मैं छत पर लड़कियों में जाने के लिए ज़िद करने लगा। जब वे ढोलकी बजा रही थीं, मैं मौसी अमृतकौर की बेटी और अपनी मौसेरी बहन दुर्गी की गोद में जा बैठा।

वह अपनी सुराहीदार सुंदर गरदन आगे निकाले बैठी थी। मुझे उसकी गोद की स्निग्धता और उसके सांस की सुगंध आज भी याद है। जब वह गीत के टप्पे दोहरा रही थी तो मैं उसके मधुर स्वर की लय और घुटनों की मित्रता से विमुग्ध हो रहा था। उस रात चूंकि मुझे उसके घुटने पर सिर रखे-रखे नींद आ गई; इसलिए 'लच्छी' का रोमांचकारी गीत भी मेरे मस्तिष्क पर अंकित हो गया :

> आखाँ नी, पिंड विच दो लच्छियाँ
> छोटी लच्छी ने लोहड़ा मारया
> छल्लियाँ निकल पइयाँ !
> आखाँ नी, लच्छिए तेरे बंद न बणे
> मुंडे मर गए कमाइयां करदे !
> आखाँ नी, तेरे बंद न बणे !...

मैं अपने मामू धरमसिंह, दयालसिंह और सरदारसिंह की तरह भैंसों को दूहना, चित्रा और रौंदू बैलों के साथ हल चलाना और पशुओं के लिए गंडासे से चारा काटना चाहता था। पर उनके पास इसका एक ही जवाब था—"तुम शहरी बाबू हो।"

मौसेरी बहन दुर्गी के संगीत में मुझे सुख और आनंद का अनुभव होता।

उम्र में मुझसे वह कुछ बड़ी थी। इस्का की मेरी पहली यात्रा के हर्ष-विषादयुक्त संस्मरणों में वह एक नन्हे विचित्र और सुगंधित पुष्प के सदृश यों उभर आती है, जैसे वसंत में एक कली की पखड़ियां खिल रही हों, जैसे,

मनुष्य की जानकारी में प्रवेश करता है, वैसे ही उसने मेरी आत्मा में प्रवेश किया, व्यक्तित्व के कुछ पहलुओं के साथ नहीं, वल्कि सम्पूर्ण रूप से लगता था कि वह मेरे कानों में स्वर-माधुर्य वनकर रहती है, शरीर में स्फूर्ति वह है, मेरी आंखों में नींद वही है, मेरी नाक में उसके शरीर की सुगंध वसी है। जव वह इधर-उधर घूमती थी तो उसके यौवन की चेष्टाएं उसे मेरी समस्त प्रेरणाओं में संजो देती थीं। शायद कारण यह हो कि मेरी इंद्रियां उसके शरीर से निकलने-वाली स्निग्धता को ग्रहण करने के लिए तत्पर रहती थीं या शायद मेरी आत्मा उसके चुस्त गात के संगीत में झूमती थी। अथवा क्या यह मेरी इस कोमल अवस्था में उसके प्रभाव के वहुत-से जादुओं का मेरी चेतना में संयोग-मिलन था?

उसने मुझे अपनी वह सव गुड़ियां दिखाईं जो उसने कपड़े के छोटे-छोटे टुकड़ों में रूई भरकर बनाई थीं। निस्संदेह मैंने तुरंत कहा कि वह एक गुड्डा मेरे लिए भी वना दे।

उस स्निग्धता और उदारता से, जो मेरे हम-स्कूलों में नहीं थे, उसने तुरंत गुड्डा बनाना शुरू कर दिया। उसने अपनी मां के चर्खे के पास पड़ी हुई छोटी-सी टोकरी में से रूई ली और उसे एक मोटे कपड़े के लम्वे चिथड़े में लपेटकर दोनों सिरों को सी दिया। इसे दो हिस्सों में वांटकर सीवनें डाली गईं, विशेषकर ऊपर के भाग में और शीघ्र ही उसका सिर और दो लम्वी टांगें वन गईं। एक छोटे-से काले धागे से उसका मुंह, आंखें और नाक वन गई। तव हम उस दर्ज़ी के पास गए जो शादी के कपड़े सी रहा था और उससे रेशमी टाकियां और सुनहरी फीता मांगने लगे। दुर्गी की तेज़ अंगुलियों ने जल्दी ही एक साफा, एक कोट और चुस्त पायजामा सी दिया और फिर सफेद गोटे की तलवार थमाकर गुड्डे को पूरा सिपाही वनाकर मुझे दे दिया।

तव वह मुझे अपने गुड़ियाघर में ले गई और मेरे हीरो को अपनी एक अप्सरा के पहलू में रख दिया और हमने उन दोनों का व्याह रचाया।

तव दुर्गी ने दूल्हा-दूल्हन में यह वातचीत कराई:

"ओ मेरे प्रीतम, तुम कहां से आए हो? तुम्हारा नाम क्या है? मेरे लिए क्या उपहार लाए हो? चमेली के फूल या मौलश्री के?"

"मेरी प्यारी, मैं तुम्हारे लिए अपने-आपको लाया हूं, मोतिया का हार लाया हूं और तुम्हारे शरीर पर छिड़कने के लिए गुलाव लाया हूं।"

"और मिठाइयां क्या लाए हो ?"

"मैं तुम्हारे लिए मीठे पेड़े और गरमा-गरम लड्डू लाया हूं।"

"जहर हलवाई का बनाया हुआ।"

"नहीं, मिठाई है और मैं तुम्हारे लिए अपने मीठे बोल भी लाया हूं।"

"अच्छा, इसमें मैं अपनी सांस की सुगंध मिला दूंगी।"

तब दुर्गी ने दोनों गुड़ियों का आलिंगन और चुम्बन कराया। उसने मुझे कुछ छंद सुनाए। वैसे तो गुड़िया एक-दूसरे को सुना रही थीं; पर वास्तव में उनका सम्बंध हम दोनों से था। विचित्र बात यह हुई कि मेरे मन का सारा संकोच धुल गया, दुर्गी की तरह उत्साह में भरकर मैं खेलने लगा और सारे दिन मगन रहा।

हम दोनों एकसाथ कुम्हार के घर गए और अपनी रसोई के लिए खिलौने बर्तन लाए, मिट्टी का एक छकड़ा लाए जिसमें बैल जुते हुए थे, मिट्टी की एक सीटी, पिंजरे में बंद एक पक्षी और किसान गृहस्थी की दूसरी चीजें लाए। कपड़े बनाने के लिए हम गांव के जुलाहे से आधा गज कपड़ा लाए। लोहार से हलकी कुदाल लाए। ग्वाले के घर से हम दूध लाए। इस सबको पवित्र बनाने हम मंदिर गए और एक पीपल के पेड़ के तले शेषनाग की वेदी पर दूध डाला। खेल में हम इतने खोए रहे कि दोपहर का खाना खाना भी भूल गए। हम दोनों की माताएं चिंतित होकर हमें खोजने लगीं। दुर्गी और मुझमें जो स्नेह पैदा हो गया था, उसके कारण वे एक-दूसरी से और घृणा करने लगीं।

हमने अपने लिए खेल और आनंद का जो वातावरण बना लिया था, उसमें दोपहर के खाने से कुछ विघ्न नहीं पड़ा। दुर्गी के बरामदे में जो झूला पड़ा हुआ था, हम उसपर झूलने लगे। मेरी मौसेरी बहन गद्दी पर बैठी थी और मैं उसकी गोद में। कुछ गिरने के भय से और कुछ उसके स्पर्श के शारीरिक सुख के कारण मैंने उसे मजबूती से पकड़ रखा था। जब हम पेंग चढ़ाते थे तो दुर्गी मीठे स्वर में गाती थी :

बहनो, वसंत आया
वसंत आया
मधुमक्खियां बटोर रही हैं
फूलों से शहद, बहनो!

इससे पहले कि मैं जानूं कहां हूं, मुझे नींद आ गई। एक तो मैं सुबह को

मनुष्य की जानकारी में प्रवेश करता है, वैसे ही उसने मेरी आत्मा में प्रवेश किया, व्यक्तित्व के कुछ पहलुओं के साथ नहीं, वल्कि सम्पूर्ण रूप से लगता था कि वह मेरे कानों में स्वर-माधुर्य वनकर रहती है, शरीर में स्फूर्ति वह है, मेरी आंखों में नींद वही है, मेरी नाक में उसके शरीर की सुगंध वसी है। जव वह इधर-उधर घूमती थी तो उसके यौवन की चेष्टाएं उसे मेरी समस्त प्रेरणाओं में संजो देती थीं। शायद कारण यह हो कि मेरी इंद्रियां उसके शरीर से निकलनेवाली स्निग्धता को ग्रहण करने के लिए तत्पर रहती थीं या शायद मेरी आत्मा उसके चुस्त गात के संगीत में झूमती थी। अथवा क्या यह मेरी इस कोमल अवस्था में उसके प्रभाव के वहुत-से जादुओं का मेरी चेतना में संयोग-मिलन था?

उसने मुझे अपनी वह सव गुड़ियां दिखाईं जो उसने कपड़े के छोटे-छोटे टुकड़ों में रूई भरकर वनाई थीं। निस्संदेह मैंने तुरंत कहा कि वह एक गुड्डा मेरे लिए भी वना दे।

उस स्निग्धता और उदारता से, जो मेरे हम-स्कूलों में नहीं थे, उसने तुरंत गुड्डा वनाना शुरू कर दिया। उसने अपनी मां के चर्खे के पास पड़ी हुई छोटी-सी टोकरी में से रूई ली और उसे एक मोटे कपड़े के लम्वे चिथड़े में लपेटकर दोनों सिरों को सी दिया। इसे दो हिस्सों में वांटकर सीवनें डाली गईं, विशेषकर ऊपर के भाग में और शीघ्र ही उसका सिर और दो लम्वी टांगें वन गईं। एक छोटे-से काले धागे से उसका मुंह, आंखें और नाक वन गई। तव हम उस दर्जी के पास गए जो शादी के कपड़े सी रहा था और उससे रेशमी टाकियां और सुनहरी फीता मांगने लगे। दुर्गी की तेज़ अंगुलियों ने जल्दी ही एक साफा, एक कोट और चुस्त पायजामा सी दिया और फिर सफेद गोटे की तलवार थमाकर गुड्डे को पूरा सिपाही वनाकर मुझे दे दिया।

तव वह मुझे अपने गुड़ियाघर में ले गई और मेरे हीरो को अपनी एक अप्सरा के पहलू में रख दिया और हमने उन दोनों का व्याह रचाया।

तव दुर्गी ने दूल्हा-दूल्हन में यह वातचीत कराई:

"ओ मेरे प्रीतम, तुम कहां से आए हो? तुम्हारा नाम क्या है? मेरे लिए क्या उपहार लाए हो? चमेली के फूल या मौलश्री के?"

"मेरी प्यारी, मैं तुम्हारे लिए अपने-आपको लाया हूं, मोतिया का हार लाया हूं और तुम्हारे शरीर पर छिड़कने के लिए गुलाव लाया हूं।"

"श्रौर मिठाइयां क्या लाए हो ?"

"मैं तुम्हारे लिए मीठे पेड़े श्रौर गरमा-गरम लड्डू लाया हूं।"

"जहर हलवाई का बनाया हुग्रा।"

"नहीं, मिठाई है श्रौर मैं तुम्हारे लिए श्रपने मीठे बोल भी लाया हूं।"

"ग्रच्छा, इसमें मैं श्रपनी सास की सुगंध मिला दूंगी।"

तब दुर्गा ने दोनों गुड़ियों का श्रालिंगन श्रौर चुम्बन कराया। उसने मुझे कुछ छंद सुनाए। वैसे तो गुड़ियां एक-दूसरे को सुना रही थीं; पर वास्तव में उनका सम्बंध हम दोनों से था। विचित्र बात यह हुई कि मेरे मन का सारा संकोच धुल गया, दुर्गा की तरह उत्साह में भरकर मैं खेलने लगा श्रौर सारे दिन मगन रहा।

हम दोनों एकसाथ कुम्हार के घर गए श्रौर श्रपनी रसोई के लिए खिलौने बर्तन लाए, मिट्टी का एक छकड़ा लाए जिसमें बैल जुते हुए थे, मिट्टी की एक सीटी, पिंजरे में बंद एक पक्षी श्रौर किसान गृहस्थी की दूसरी चीजें लाए। कपड़े बनाने के लिए हम गांव के जुलाहे से श्राधा गज कपड़ा लाए। लोहार से हलकी कुदाल लाए। ग्वाले के घर से हम दूध लाए। इस सबको पवित्र बनाने हम मंदिर गए श्रौर एक पीपल के पेड़ के तले शेषनाग की वेदी पर दूध डाला। खेल में हम इतने खोए रहे कि दोपहर का खाना खाना भी भूल गए। हम दोनों की माताएं चिंतित होकर हमें खोजने लगीं। दुर्गा श्रौर मुझमें जो स्नेह पैदा हो गया था, उसके कारण वे एक-दूसरी से श्रौर घृणा करने लगीं।

हमने श्रपने लिए खेल श्रौर श्रानंद का जो वातावरण बना लिया था, उसमें दोपहर के खाने से कुछ विघ्न नहीं पड़ा। दुर्गा के बरामदे में जो झूला पड़ा हुग्रा था, हम उसपर झूलने लगे। मेरी मौसेरी बहन गद्दी पर बैठी थी श्रौर मैं उसकी गोद में। कुछ गिरने के भय से श्रौर कुछ उसके स्पर्श के शारीरिक सुख के कारण मैंने उसे मजबूती से पकड़ रखा था। जब हम पेंग चढ़ाते थे तो दुर्गा मीठे स्वर में गाती थी :

बहनो, वसंत श्राया
वसंत श्राया
मधुमक्खियां बटोर रही हैं
फूलों से शहद, बहनो!

इससे पहले कि मैं जानूं कहां हूं, मुझे नींद श्रा गई। एक तो मैं सुबह की

दौड़-धूप से थक गया था, दूसरे दोपहर को भारी खाना खाया था और फिर दोपहर बाद की गर्मी भी नींद लानेवाली थी।

दिन ढले जब मेरी आंख खुली तो मैंने देखा कि दुर्गी के पास मेरा रिक्त स्थान गणेश ने हथिया लिया है और वह उसके साथ 'गीटे' खेल रहा है।

पहले तो मैं उनींदी आंखों से उनका खेल देखता रहा। उनमें से कोई एक गीटे हवा में उछालता और हाथ की पुश्त पर उन्हें लोकता था, दोबारा उछालकर हथेली पर लोकता और जो हाथ में आ जाते उन्हें जीत लिए समझता। जो गीटे बाकी रह जाते, उन्हें अपने हाथ का एक गीटा उछालने और लोकने के बीच धरती पर से उठाता।

गणेश और दुर्गी के हाथ की सफाई देख मुझे भी खेल में शामिल होने का शौक चर्राया।

पर गणेश ने यह बात नहीं मानी।

और मेरी निरीह आत्मा के लिए इससे भी कठोर आघात यह था कि दुर्गी भी मुझे साथ खिलाने को तैयार नहीं थी।

मैं उत्तेजित हो उठा और मैंने गणेश के गीटे छीनकर खेल बिगाड़ दिया।

अधीरता और क्रोध से गणेश का मुंह बिगड़ गया और उसने मुझे जन्नाटे का चांटा रसीद किया।

गणेश और मेरी छिनाल 'दुल्हन' मकान के दूसरे कोने में जाकर खेलने लगे जबकि मैं फर्श पर लेटा जोर-जोर से रो रहा था ताकि कोई सुने और मुझे उठाए।

जब कोई उधर न आया तो मैं आंख मलता और सुबकियां भरता हुआ आंगन में गया और मां से शिकायत की कि गणेश और दुर्गी ने मुझे पीटा है।

मां शायद कल की लड़ाई से इतनी विक्षुब्ध थी कि दुर्गी के विरुद्ध भड़क उठी, "यह विधवा की बेटी दुर्गी कौन होती है जो मेरे बेटे को मारे?"

"तुम मुझे विधवा मत कहो!" दुर्गी की मां मौसी अमृतकौर ने कहा। "तुम मुझे खाहमखाह कोसती हो, इसे तुम्हारे अपने बेटे ने मारा होगा।"

"क्या उस खसमखाने गणेश ने तुम्हें मारा है?" मां ने पूछा।

"नहीं, दुर्गी ने मारा है," मैंने झूठ बोला।

"सुन रही हो," मां ने दुर्गी से कहा, "तुम्हारी बेटी ने मारा है। वह बिल-

कुल तुमपर पड़ी है।"

"जा नी, जा !" अमृतकौर चिल्लाई, "मेरी बेटी को रहने दे ! तुमसे यह सहन नहीं होता कि तुम्हारी अपनी बेटी नहीं है, तुम सिर्फ लड़के ही जन सकती हो !"

यह ताना सुनकर मा चिढ़ गई।

"तुम इस बच्चों की लडाई को लेकर मुझपर क्यों चढ़ दौड़ी हो ?" उसने कहा, 'कल तुमने मेरे पति और मेरे घर से जलकर मेरी जान खाई, और आज तुम इसलिए खाना चाहती हो कि मैंने बेटे जने। सिर्फ इसलिए कि तुम्हारे बेटा नही हुआ ! तुम इतनी नीच क्यो हो ?"

"नीच कौन है ?" अमृतकौर बोली, "तुम हो, मैं नही। पास न होने से कोई नीच नही बन जाता। सिर्फ वही लोग नीच होते हैं, जिनके पास इतना होता है जितना तुम्हारे पास है।"

"नी, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि तुम मुझसे बदला ले रही हो ?" मा ने विरोध किया।

"दूसरे लोगों से पूछो, वे तुम्हारे बारे में क्या कहते हैं ! मां-जाए भाई को भी उधार नहीं दे सकती ! अपने पति को सिखाया कि दो-तीन सौ से अधिक मत देना !"

"नी, दुनिया में अंधेरा छाया है !" मां चिल्लाई, "हाय, नी, इन हरामखोरों को देखो ! मैंने हमेशा अपने पति की खून-पसीने की कमाई इन्हें दी और कभी पैसा वापस नहीं मागा। तुम मुझपर न देने का आरोप कैसे लगाती हो ?"

"ऊंचा बोल के सच्ची नही बन जाओगी," अमृतकौर ने कहा। "सचाई यह है कि तुम अब हमारी नहीं रही। गाव से जाकर तुम शहरी बन गई। जिस बिरादरी में तुम्हारा जन्म हुआ अब तुम उसीसे घृणा करती हो। बूढे पिता नही समझते कि तुम उनकी सहायक नहीं रहीं। तुम जिन बाबूओं, व्यापारियों और लाला लोगों में रहती हो, तुमने भी उन्होंकी आदतें अपना ली हैं।"

'है, है, तुम ऐसी बातें कैसे कहती हो ?" मां चिल्लाई।

"वे सच्ची हैं।" अमृतकौर ने उत्तर दिया।

"यह भी कोई मायके आना है।" मां ने आखों में आंसू भरकर कहा, "जब भी मैं इसके आई हूं, हमेशा रोते-झीकते लौटी हूं।"

"अगर तुम मुस्कराती हुई आओ तब तुम हंसती हुई लौटोगी," नानी गुजरी ने कहा।

"अगर तुम सुसराल के बजाय मायके से अधिक प्यार करतीं तो तुम अधिक प्रसन्न होतीं," एक दूसरी बूढ़ी स्त्री ने कहा।

यह फटकार मां के लिए असह्य थी। उसने सिर दुपट्टे में छिपा लिया और सुबकने लगी।

"काश, हम यहां न आते," वह चिल्लाई।

मेरी और दुर्गी की लड़ाई चूंकि मां और उसके ग्रामीण सम्बन्धियों में कलह का कारण बनी, इसका मुझे अफसोस था लेकिन मां और मौसी अमृतकौर ने कल जो क्रोध में भरकर एक-दूसरी को गालियां दी थीं, वे भी मुझे याद थीं, इसलिए स्पष्ट था कि उनकी लड़ाई का सिर्फ मैं ही कारण नहीं।

"वह मुआ गणेश कहां है ?" मां बोली, "उसे कहो कि आकर तैयार हो जाए। हम चलेंगे।"

"तुम हमें इस प्रकार की धमकियां मत दो," अमृतकौर चिल्लाई। "अगर तुम्हें यों ही रंग में भंग डालना था तो फिर तुम आईं ही क्यों ?"

मौसी अमृतकौर ने जिस ढंग से अपना काला चेहरा टेढ़ा किया, मैं डर गया। उसकी आंखें लाल थीं। उसकी बाछें झाग से भर गई थीं। उसने जिस क्रोध और भयंकरता से मां पर आक्रमण किया उसे मैं भूल नहीं सका। उस छोटी अवस्था में भी मैंने उस कटुता और द्वेष को भांप लिया जो इस आक्रमण के पीछे हमारे परिवार के प्रति उसके मन में था। नाना, उनकी हवेली और खेतों के प्रति हालांकि स्वाभाविक स्नेह उत्पन्न हुआ था, पर अब दुर्गी और गांव के विरुद्ध मेरा मन आक्रोश से भर गया। अब मेरे लिए यह निर्णय करना भी कठिन था कि दुर्गी जो सुबह मेरी मित्र बन गई थी और जिसने शाम को मेरी उपेक्षा की, मैं उसके प्रति क्या रवैया अपनाऊं।

मुझे जीवन की अस्थिरता की एक विचित्र भावना अनुभव होने लगी।

मां ने आंखें पोंछ डालीं और सामान बांधने के लिए भीतर कमरे में चली गई।

मैं उसके पीछे-पीछे गया और मैंने देखा कि जब वह सामान की गठरी बांध रही थी तो सुबक भी रही थी। कभी-कभी तो वह पगला गई जान पड़ती क्योंकि

वह रोते-रोते अपने-आपसे बोलती थी। शायद वह खुलकर रोना चाहती थी; इसलिए उसने मुझे पकड़कर छाती से लगाया और फूट-फूटकर रोने लगी।

तब उसने अपने-आपको संयत किया और गणेश से, जो आ गया था, गठरी सिर पर उठाने को कहा जबकि सूटकेस उसने खुद उठाया। हम चल पड़े।

बिरादरी की कुछ औरतों ने मां से कहा, "सुदरई, जाओ मत ! इस तरह जाना शुभ नहीं होता ! बहनें आपस में लड़ ही पड़ती हैं।"

लेकिन नानी गुजरी और मौसी अमृतकौर चुप रहीं।

"वे चाहती हैं कि मैं चली जाऊं," मां ने नानी और मौसी की ओर संकेत करते हुए कहा। "वे मेरे आने से खुश नहीं हैं। फिर मेरे रहने से लाभ ही क्या ?"

मैं गहरे होते हुए अंधेरे से डर गया था, इसलिए चाहता था कि नाना या कोई मामू यहां आ जाए और मां को रुक जाने के लिए कहे। मगर कोई नहीं आया। हम एक अनाथ परिवार की तरह निराश और हताश हवेली से निकले।

"इस समय गुजारावाला के लिए इक्का मिलना सम्भव नहीं," मां ने कहा, "हम रात को मंदिर में रहेंगे।"

ड्योढ़ी में जो दर्जी काम कर रहा था, मां ने उससे कहा कि वह हमें मंदिर तक छोड़ आए।

गांव की औरतें और मर्द कनखियों से हमारे इस छोटे-से जुलूस को देख रहे थे। कुछ लोगों ने मां से पूछा, "बहन, तुम इतनी जल्दी क्यों जा रही हो ? अभी तो शादी भी नहीं हुई ? बात क्या है ?"

मां रोने लगीं और कोई उत्तर नहीं दिया।

लेकिन हम गली के नुक्कड़ तक ही पहुंचे थे कि मामू धरमसिंह, दयालसिंह और सरदारसिंह सब आ गए और झुककर मां के पांव पकड़ लिए।

"हमें माफ करो," उन्होंने कहा। "ये औरतें पागल हैं। इन्होंने तुम्हें सताया है। तुम्हारा क्रोध उचित है। लेकिन ब्याह से पहले तुम्हारे चले जाने की शर्म हम कैसे सहन करेंगे ?"

"लेकिन जब मैं जानती हूं कि मेरी अपनी मां मेरे खिलाफ है और मुझे नहीं चाहती तो मैं कैसे ठहर सकती हूं ?" मां ने उत्तर दिया।

"बाबा आज उसकी खबर लेगा," मामू सरदारी ने कहा। "उसने मुझे भी

इसलिए घर से निकाल दिया था कि मैं अपने दोस्तों के साथ खेलने चला गया था। बड़ी बहन, तुम चलकर मेरे कमरे में रहो।"

"नहीं," मां बोली। "मैं रात धर्मशाला में बिताऊंगी और सुबह इक्का लेकर गुजरांवाला चली जाऊंगी।"

"जब तक तुम लौटोगी नहीं, हम तुम्हारे पांव नहीं छोड़ेंगे," उन्होंने कहा।

कुछ मिनट तक सब मौन और स्थिर रहे।

आखिर गांव के दूसरे लोग इकट्ठे हो गए। मेरे मामुओं के साथ वे भी मिन्नत-समाजत करने लगे और मां की आवाज़ उनकी प्रार्थना में डूब गई।

हमारा जुलूस फिर घर लौटा।

मामू सरदारसिंह हमें अपने कमरे में ले गया। हवेली की ड्योढ़ी की छत पर यह एक छोटा-सा कमरा था, जिसमें लकड़ी की छोटी-छोटी खिड़कियां थीं और दीवारों पर सिख-धर्म के दसों गुरुओं के सुन्दर चित्र लगे हुए थे।

मैं और गणेश खिड़कियों में बैठकर नीचे गली में से गुज़रते हुए किसानों को देखने लगे। हम शीघ्र ही भयंकर लड़ाई की बात बिलकुल भूल गए जबकि मां दुःख और थकान से निढाल होकर सो गई।

मामू सरदारसिंह ने हमें प्यार किया और स्वादिष्ट मिठाई खिलाकर हमारा मन जीत लिया। चाहे वह मां को खिलाने में सफल नहीं हो पाया, पर गांव की बढ़िया दुकान पर से हमारे लिए मांस लाया।

भोजन के उपरान्त उसके कुछ नौजवान मित्र आ गए और उनके कहने पर उसने वारिसशाह के महाकाव्य 'हीर-रांझा' में से कुछ अंश अत्यन्त मधुर स्वर में गाकर सुनाए।

लगता था कि उसकी आवाज़ किसी विचित्र शक्ति की लाल अग्नि से निकल रही है। और वह किसानों की सरल मधुर पंजाबी में एक अद्भुत गीत की वक्र रेखा पर यात्रा कर रही है। कमरे में जितने लोग थे, इसने उन सबके हृदय में आग-सी लगा दी और वे चिल्लाए, "वाह ! वाह !" जब कवि वारिसशाह के वे बोल दोहराए जा रहे थे जो नायिका हीर ने नायक रांझा के वियोग में कहे थे तो कमरे में एक स्थिर मुग्धता छाई थी, जिसे शाम की लालिमा ने और भी सुखद

बना दिया था।

मैं वह शाम कभी नहीं भुला पाया हूं। चाहे मैं हीर-रांझा के प्रेम के बारे में वारिसशाह के महाकाव्य का अर्थ भली प्रकार नहीं समझ पाता था, लेकिन मामू सरदारी के स्वर-माधुर्य ने मेरे रोंगटे खड़े कर दिए। इससे मेरे मन में पंजाबी भाषा के लिए जो प्रेम उत्पन्न हुआ, वह हमेशा बना रहा। उसकी ताल और लय इतनी आकर्षक थी कि मेरे बाल-सुलभ मन को, जो अब तक छावनी में अंग्रेज़ी गिटपिट का आदर करता आया था, जिसने कस्बे के आम लोगों की सीधी-सादी पंजाबी की हमेशा उपेक्षा की थी, अब ऐसा लगा कि मां के मुंह से निकलनेवाले हर शब्द की पूजा न करके मैं एक गम्भीर पाप करता आया हूं। अपनी आत्मा में कहीं न कहीं मैंने महसूस किया कि मां पर निर्भर होने के बावजूद हम अब तक माता की बजाय अपने पिता के बेटे अधिक थे। मामू नरसिंह क्यों हमें 'शहरी और बाबू' होने का ताना देते थे, इसका अर्थ कुछ-कुछ अब समझ में आया। नानी और मौसी अमृतकौर के मन में मां के प्रति और उस परिवार के प्रति जिसमें वह ब्याही गई थी, जो अवज्ञा थी उसका आधार भी अब समझ में आया।…

कुछ भी हो, मेरा खयाल है इस शाम से मेरे मन में मां के लिए नई मुहब्बत पैदा हुई। चाहे उसके सम्बन्धी उसे गांव की गद्दार कहते थे, पर मैं उसे इस कस्बे गांव की आत्मा समझने लगा। उस दिन वे सब कहानियां और कथाएं जो उसने हमें सुनाईं, और वे गीत जो उसने गाए मेरे मन में उन कहानियों और गीतों से अधिक आकर्षक और महत्त्वपूर्ण बन गए जो मैंने अपनी स्कूली पुस्तकों में पढ़े थे। दरअसल पंजाबी की उन सरल बोलियों ने जो मामू सरदारी ने मधुर स्वर में गाईं, छावनी के क्वार्टरों की उन दीवारों को तोड़ दिया जिनमें हम रहते थे, और लालकुर्ती की बारकों और लुंडी नदी पर बने साहबों के बंगलों को नष्ट करके मुझे खेतों, पहाड़ों और पत्थरों में से, ग्राड ट्रंक रोड पर से उस देश की ओर ले चलीं जहां क्षितिज नहीं थे और अगर कुछ था तो वे मध्य पंजाब के खुले विस्तृत खेतों के दृश्य थे जिनके ऊपर विस्तृत आकाश था और जो पहाड़ों में दूर, दूर—बहुत दूर जाने कहां तक चले जाते थे।

गांव और उसकी प्रसन्नताओं के बारे में मैं इतना उत्साहित हुआ कि जब मामू सरदारी ने तनिक गाना बन्द किया तो मैंने मां से पूछा कि क्या राजा रसालू

जिसके कारनामों की कहानी उसने मुझे नौशहरा में सुनाई थी, कभी डस्का में भी रहा था या वहां आया था क्योंकि मैं जानता था कि डस्के और सियालकोट में दस मील का अन्तर है। मां ने मुझे बताया कि बहुत राजा और वीर पुरुष डस्का आ चुके हैं।

अपने कौतूहल के किनारे-किनारे सोचते हुए मैंने छाया-रूप देखे जो तपते हुए सूरज के नीचे पुराने दिनों की विशाल खोह में अथवा अतीत की गहरी अंधेरी रातों में विलीन हो गए थे। अपने मित्रों के आग्रह पर मामू सरदारी ने कुछ और गीत गाए। इनमें से एक गीत कवि बुल्लेशाह का लिखा हुआ था। यह गीत भी हीर-रांझा के प्रेम के सम्बन्ध में होने के कारण मेरे मस्तिष्क पर अंकित हो गया। गीत इस प्रकार था :

मेरा मन प्रियतम के लिए आतुर है
कुछ प्रेमी हंसते और हंस-हंसकर बातें करते हैं
जबकि दूसरे इस वसन्त ऋतु में भी रोते हुए घूम रहे हैं
मेरा मन आतुर है…

क्या यह इसमें निहित वियोग की भावना थी या फिर इसका कारण यह। कि उस समय डस्का में वसन्त का मौसम था कि ये पंक्तियां मेरे मन पर अंकित हो गईं जबकि वारिसशाह की मौलिक कविता में से सिर्फ टीप के बन्द ही याद रह पाए। मेरा खयाल है इसका कारण था कविता की सरलता जबकि वारिसशाह की शैली संश्लिष्ट और कठिन थी। उदाहरण के लिए मुझे याद है कि वारिसशाह के बारे में बात करते हुए मामू सरदारी ने कहा था कि कवि ने घोड़े के खुर को बीस ढंग से बयान किया है। लेकिन कई बार आदमी एक रमणी के आंचल का किनारा छूकर ही सुन्दरता को समझ लेता है। एक बालक के मन का विकसित होना ऐसी ही विलक्षण प्रक्रिया है जैसा कली का खिलना अथवा फल का पकना; स्निग्धता का स्पर्श-मात्र उसे सूरज के सदृश चमका देता है।

जब सब चले गए तो उस रात हमने वह भोजन किया जो मामू सरदारी गांव के तन्दूरिए की दुकान से विशेष रूप से हमारे लिए लाया था। तब हम उसके कमरे की छत पर सोने चले गए। हीर-रांझा की मुहब्बत के बारे में जो गाना उसने हमें सुनाया था उससे मैं इतना प्रभावित था कि मैंने मामू से कहा कि वह सोने से पहले हमें इस मुहब्बत की कहानी सुनाए। इस हठ के लिए मां ने मुझे फटकारा

और कहा कि मामू ने हमारे लिए इतना कुछ किया है, अब मैं उसे सोने दूं। पर मैं कब माननेवाला था, तकाज़ा जारी रखा।

मामू सरदारी मुखक, उदार और सहृदय व्यक्ति था। उसने मुझे और गणेश को पूरी कहानी सुनाई। चाहे मेरी आंखें झपक-झपक गईं, पलकें नींद से भर गए, सिर तीन-चार बार पीछे गिरा, पर मैंने कहानी ध्यान से सुनी। उसका सुनाने का ढंग सरस था। उस समय मैं और तो कुछ अधिक नहीं समझता था, पर उसके शब्द मुझे याद हैं।

"कहते हैं कि हीर उत्तरी पंजाब में एक छोटे-से राज्य के सरदार की बेटी थी। जब वह अभी छोटी-सी लड़की थी पिता ने उसकी सगाई एक पड़ोसी राज्य गेड़ा के सरदार के बेटे सैदा से कर दी।

"हीर जब जवान हुई तो वह एक अत्यन्त सुन्दर रमणी थी। उसके सौंदर्य की ख्याति दूर-दूर फैल गई।

"एक दूसरे पड़ोसी सरदार के आठ बेटे थे। उन सबमें छोटा रांझा बहुत ही सुन्दर था। पिता उससे प्यार करता था। इसी कारण भाई उससे ईर्ष्या करने लगे। इसलिए जब उनका पिता मर गया तो उन्होंने रांझे को सम्पत्ति में से बिना कोई हिस्सा दिए घर से निकाल दिया।

"रांझा जंगलों में घूमता हुआ चिनाब नदी के किनारे पहुंचा। वह पार जाने के लिए कोई किराये की नाव देख रहा था कि उसकी नज़र एक सुन्दर नाव पर पड़ी। उसने नाववाले से नदी पार पहुंचाने को कहा। उसने इनकार कर दिया। रांझा बहुत थक गया था इसलिए नाववाले से उसने पूछा कि क्या वह नाव में कुछ देर आराम कर सकता है। नाववाले को नौजवान पर दया आई और उसने आज्ञा दे दी। रांझा नरम-नरम बिस्तर पर पड़कर सो गया।

"कुछ देर बाद शोर से उसकी नींद खुल गई।

"रांझे ने आंखें खोलीं तो हीर सामने खड़ी थी।

"हीर ने पहले मल्लाह को डांटा कि उसने क्यों एक अजनबी को उसकी नाव में घुसने दिया।

"रांझा हीर से मुख़ातिब हुआ और उसने कहा कि थके हुए यात्री पर वह क्यों इतना नाराज़ होती है? वह मुस्कराई। तब उनकी आंखें चार हुईं और वे एक-दूसरे से प्रेम करने लगे।

"सुन्दर हीर ने रांझे को ग्वाले की नौकरी दे दी और वह नित्य छिपकर उससे मिलने लगी।

"आखिर हीर-रांझा के प्रेम का भेद खुल गया। पिता ने हीर का ब्याह तुरन्त खेड़ा कर दिया।

"हीर को रांझे से बिछुड़ने का दुःख था और उसने अपने पति सैंदा से बात तक नहीं की।

"हीर के पिता ने रांझे को अपने राज्य से निकाल दिया। इसलिए वह वहां से रंगपुर चला गया जहां हीर ब्याही गई थी। उसने जोगी का रूप धारण कर लिया था।

"उसने हीर से सम्पर्क स्थापित कर लिया और सैंदे की बहन सहती की सहायता से वह एक रात हीर को वहां से ले भागा। सहती भी उसी रात अपने प्रेमी मुराद के साथ चली गई।

"सैंदा ने अपने आदमी प्रेमियों के पीछे दौड़ाए। सहती और मुराद तो भाग निकले; पर हीर-रांझे को पकड़कर वापस लाया गया।

"उन्हें काज़ी के सामने पेश किया गया। रांझे को वहां से निकाल दिया गया जबकि हीर को पहरे में सुरक्षित रखा गया।

"जब प्रेमियों को दंड दिया गया तो रंगपुर शहर को आग लग गई। आग लगने का कारण यह बताया जाता था कि हीर-रांझे की आहों ने शहर की बुनियादों को फूंक दिया है।

"हीर की शादी टूट गई, और रांझे को वापस बुलाकर हीर को उसके हवाले कर दिया गया।

"प्रेमी हीर के मायके पहुंचे। अब उनका स्वागत हुआ।

"रांझा अकेला अपने घर गया ताकि बरात लेकर आए और हीर को ब्याह कर ले जाए।

"इधर हीर के मामा कैदू ने जो रांझे से घृणा करता था, हीर से सहानुभूति जताते हुए कहा कि रांझा राह में कत्ल हो गया।

"हीर बेहोश होकर गिर पड़ी।

"इस बेहोशी की हालत में हीर के भाई और चाचा ने उसे जहर पिला दिया। इससे वह मर गई।

"रांझा के पास हीर की मृत्यु का सन्देश भेजा गया।
"रांझा सचाई मालूम करने दौड़ा आया।
"उसे हीर की कब्र पर ले जाया गया।
"वह यह आघात सहन न कर सका और अपनी प्रेमिका की कब्र पर रोते-रोते मर गया।"

नानी, मौसी और मां में समझौता होने भी नहीं पाया था कि उनमें सुबह फिर झगड़ा हो गया।

कुछ मां के लिए स्नेह और सम्मान के कारण और कुछ परिवार में शांति स्थापित करने के लिए नाना ने सुझाव दिया कि गणेश को शरमसिंह का शहबाला बनाया जाए और जब बारात दूसरे गांव को रवाना हो तो गणेश को दूल्हे के पीछे घोड़ी पर बैठाया जाए। सुझाव चूंकि घर के बड़े ने रखा था, इसलिए सबने चुपचाप सुना और स्वीकार कर लिया। जब तक नाना आंगन में बैठे माला जपते रहे, हमारे प्रति विशेष स्नेह दिखाया गया और हमें मिठाई खाने और छाछ पीने को दी गई। ज्योंही वे खेत में कुएं पर चले गए, अमृतकौर ने मां पर आक्रमण शुरू किया।

पहले तो वह अपने-आप बड़बड़ाती रही। तब नानी से कुछ कानाफूसी की। बाद में जब मां गणेश से कह रही थी कि वह कुएं पर जाकर अच्छी तरह स्नान कर ले तो अमृतकौर स्वर में कटुता भरकर बोली, "हां, बन्दर-मुंह, अपना शरीर खूब मल-मलकर साफ करना। यह कितना बड़ा अपशकुन है कि शरमसिंह का शहबाला लंगूर बनेगा।"

"नी, अंधेर है अंधेर, दुनिया पर अंधेर छाया है! तुम मेरे बेटे के बारे में ऐसी बातें कैसे करती हो?" मां बोली।

"दुनिया में कोई अंधेर नहीं," मौसी ने उत्तर दिया। 'यह बात स्पष्ट है कि अगर किसीके पास पैसा हो तो वह कुछ भी खरीद सकता है। इस कलियुग में सूदखोरों और बाबुओं का राज है। किसान बेचारे तो मजूरे बनते जा रहे हैं। हमारे बच्चे नंगे और मुरझाए हुए जन्मते हैं और सारी उम्र नंगे और मुरझाए रहते हैं।"

"वे जो घृणा करते हैं अपने लिए मुसीबतें सहेड़ते हैं," मां ने कहा।

"तो क्या हम अपना थूक निगल लें और प्रलय का इंतज़ार करें ?" अमृतकौर चिल्लाई।

"बहन, मैंने तो बापू से नहीं कहा था कि मेरा बेटा शरमसिंह के पीछे घोड़ी पर बैठे," मां ने विनीत भाव से कहा।

"तुम जितना शिष्टता का स्वांग भरती हो, उतनी ही तुम्हारी पोल खुलती है," अमृतकौर ने आक्षेप किया। "शहर में जाकर तुम्हें धीरे बोलना आ गया है। तुम बड़ी भलीमानस बनती हो !"

"हाय रब्बा !" मां ने लम्बी सांस छोड़ी, "मैं क्या करूं ? यह दुनिया तो किसी तरह जीने ही नहीं देती।"

"बहन, हमारे तो जो मन में होता है वह हम साफ़-साफ कह देती हैं," अमृतकौर ने कहा। "सांपों को शिकायत का कोई अधिकार नहीं है !"

"बेटो, आओ हम चलें।" मां ने कहा और वह हताश-सी हमारे पास वहां आई जहां हम नाना की चारपाई पर छाया में बैठे थे। झगड़े में हारकर वह हथेलियां मलकर हमारे हाथों की मैल उतार रही थी।

"इस शुभ वातावरण को बिगाड़ो मत !" नानी गुजरी ने कहा, "हमें बार-बार क्या धमकाती हो ? जाना है तो जाओ। तुम्हारे पिता ने तुम्हारा मिज़ाज बिगाड़ दिया। तुम अब भी यह समझती हो कि उसकी बीवी मैं नहीं तुम हो..."

"हाय, हाय ! तुम मेरी मां होकर ऐसी बातें कैसे कहती हो?" मां चिल्लाई। "तुम में इतना ज़हर क्यों भरा है ?"

"अब तनो मत," नानी ने कहा, "तुम्हारे तो अकल के दांतों में ही ज़हर था। मुझे अच्छी तरह याद है..."

"फिर भी यह हमेशा चिल्लाती है कि मैं बड़ी भोली हूं," मौसी अमृतकौर ने ऊपर से कहा।

मां यह सब सहन न कर पाई और वह दुपट्टे से मुंह ढांपकर रोने लगी।

"मां, रोओ मत," मैंने उसके निकट जाकर कहा, जबकि गणेश भय और दुख से पीला पड़ा चारपाई पर बैठा रहा।

"आओ बेटो, हम चलेंगे," मां ने रोते-रोते कहा। और मैं जानता था कि यह उसका अन्तिम निर्णय है।

"तुम रोती रहो।" मौसी अमृतकौर ने कठोर बनकर कहा, "इसके लिए तुम खुद दोषी हो। हमपर आरोप मत लगाओ।"

"हे भगवान, मुझे शान्ति दो!" मां चिल्लाई।

मेरी सहानुभूति से प्रोत्साहित होकर जैसे मेरे स्पर्श ने उसमें नई शक्ति का संचार किया हो। उसने नानी और मौसी की ओर देखा और वह चिल्लाई, "हम जा रहे हैं, हम जा रहे हैं; पर अगर कहीं भगवान है तो तुम्हें भी इसका दण्ड मिलेगा!"

"जाओ, और इस शुभदिन पर अपनी काली ज़बान से हमें शाप मत दो," अमृतकौर ने चुनौती दी।

मां अपनी जगह से उठ खड़ी हुई और रोते-रोते मुझे और गणेश को साथ लिया।

हमारा सामान कल शाम ही से मामू सरदारी के कमरे में बंधा पड़ा था।

मां पड़ोस से अपनी जान-पहचान के एक जुलाहे के लड़के को बुला लाई और हमारा जुलूस घर से चला।

नाना कुएं पर थे और मामू ब्याह की तैयारियों में व्यस्त थे; इसलिए कोई हमें वापस बुलाने नहीं आया।

अब रोने की हमारी बारी थी, क्योंकि हमें जाने से पहले नाना अथवा मामू सरदारी से न मिलने का अफसोस था। मां की नानी और मौसी के साथ लड़ाई ने हमें परेशान करना शुरू किया। हमें डर था कि पिता सुनेंगे तो क्या कहेंगे, क्योंकि वे तमाम झगड़ों में परिवार के लोगों के विरुद्ध दूसरों का पक्ष धारण करते थे। मैं अपने नन्हे हृदय के गुप्त स्थानों में महसूस कर रहा था कि मां और मौसी में जो शत्रुता है उसके कारण मैं अब कभी दुर्गी के साथ नहीं खेल पाऊंगा और उसका आलिंगन नहीं कर पाऊंगा जैसे कल सुबह किया था।'''

इक्का पुलिस चौकी के करीब मां ने तांगा-स्टैंड पर कोचवान से किराया तय किया और हम तांगे में बैठ गए। ज्योंही एक्का सड़क पर आगे बढ़ा मुझे नींद ने आ दबोचा और इक्का लौटने की रही-सही आशा रात के अंधकार में विलीन हो गई।

डल्का में थोड़े दिन खेल-कूद और रंगरेलियां मनाने के बाद नौशहरा में जीवन फिर हर्ष-विषाद के उसी पुराने ढर्रे पर आ गया।

जब मैं पलटकर बचपन के इस ज़माने की ओर देखता हूं तो मेरे मन में वही भावना उठती है, जो जीवन के अंतिम चरण में अकसर लोगों के मन में होती है। अर्थात् हम अतीत के उन सुखद और निरीह दिनों की कामना करते हैं जब हम 'स्वर्ग' में झूलते थे। कुछ लोगों के नज़दीक बचपन का जीवन 'स्वर्णयुग' है, एक संक्षिप्त आह्लादपूर्ण अनुभव। उम्र बढ़ने के साथ-साथ जो ज़िम्मेदारियां आती हैं उनकी तुलना में अत्यंत संक्षिप्त। भगवान के जो विशेष कृपापात्र रहे हों उनके लिए यह बात सत्य हो सकती है, चाहे बचपन के इस संक्षिप्त स्वर्ग को निराधार और ऐसी बातें कहनेवालों के कथन को झूठ सिद्ध करने के काफी प्रमाण हैं। यह भी सत्य नहीं कि हर एक बच्चा शहीद होता है। बच्चे में नैराश्य और एकाकीपन की भावना इतनी अधिक होती है, जिसका कारण बिना बड़ा हुए ही मान और प्रतिष्ठा पाने की उत्सुकता है, जैसे कोई पौधा शाखाएं फूटने से पहले ही पूर्ण वृक्ष बन जाना चाहे, या फिर छोटी-सी उम्र में जीवन के बारे में सब कुछ जान लेने का प्रयत्न और वह भी अपनी ही कल्पना के अनुसार। यह बहुत कठिन है।

इस घोर दु:ख का मुख्य कारण बड़ों द्वारा बच्चों का न समझा जाना है। वे अपना बचपन भूलकर बच्चों की अपेक्षा करते हैं या अपनी नालिग उम्र के अनुभवों से उन्हें मापते हैं, और बड़ों की नैतिकता बच्चों पर थोपते हैं···लेकिन उस विशाल जेल में जो हिन्दुस्तान उन दिनों था, विशेषकर 'सशस्त्र कैम्प जेल' में जो पिता छावनी को कहा करते थे, बचपन की अत्यन्त प्रसन्नता और अत्यन्त विक्षोभ एक विचित्र कृत्रिमता पर निर्भर करता था। कारण एक तो वह अशिष्टता थी जो छावनी के वातावरण में निहित थी और दूसरे वह कठोरता थी जो उन निष्ठुर सैनिकों के नीचे रहने के लिए आवश्यक थी जिन्हें हर क्षण कोर्टमार्शल से बचने की चिंता रहती थी और जिन्हें कठोर, दुर्बोध और श्रेष्ठ गोरे साहबों का कृपापात्र बने रहने के लिए खुशामद करनी पड़ती थी।

पिता की स्थिति के बारे में मुझे अस्पष्ट-सा ज्ञान था। निस्संदेह हम सब दूसरों से कुछ श्रेष्ठ बनना चाहते हैं। पिता के प्रति मेरे मन में गर्व और सम्मान

की जो भावना थी, उससे मैंने निश्चित किया था कि सुनारों और ठठेरों की बिरादरी में हमारा घराना सबसे प्रतिष्ठित घराना है और मेरे पिता एक आदरणीय और प्रभावशाली बाबू—एक शिक्षित व्यक्ति हैं। लेकिन एक निरीक्षणकारी बच्चे की निरीह और उदार आंख से मैंने अपनी इस प्रतिष्ठा की विडम्बना को शीघ्र ही भांप लिया क्योंकि मैं देखता था कि हमारे घर में रहन-सहन का जो स्तर है छोटे दर्जे के नौकरों में बाजेवाले उससे कहीं बेहतर जीवन बिताते हैं। चाहे हमें बार-बार समझाया जाता था कि हम पारिवारिक खर्च और घर की दूसरी बातों के बारे में किसीसे कुछ न कहें लेकिन जो कोई भी मिठाई या पैसा देकर मेरा विश्वास प्राप्त कर लेता था मैं उसे, माता-पिता घर में जो कुछ कहते करते थे, सब बता देता था।

मुझे मालूम था कि हमारे परिवार के प्रति लोग इस कारण भी कुछ अवज्ञा-भाव दिखाते हैं कि हम मौलिक रूप से सैनिकों की नहीं बल्कि ठठेरों की संतान हैं और हमारे पूर्वज आगाखां को मानते थे। मैंने बाबू चत्तरसिंह के मकान और जयराम के मन्दिर में लोगों को यह गप करते भी सुना था कि फलां-फलां साहब का विश्वास प्राप्त करके मेरे पिता को नौकरी से अवकाश दिलाया जा सकता है। लेकिन मुझे इन बातों की इतनी परवाह नहीं थी जितनी इसकी कि हमें घर पर खाने को अच्छा नहीं मिलता था और मेरे साहब बनने के सपने धूल में मिल रहे थे। मुझे बार-बार यह उपदेश सुनना पड़ता था कि मैं छोटे मुलाजिमों के बच्चों के साथ न खेलूं और एक परीक्षा समाप्त होते ही दूसरी की तैयारी शुरू कर दूं क्योंकि मैट्रिक पास करके परिवार की इज्जत बढ़ाने में एक दिन अथवा एक घंटा भी नष्ट न किया जाए। कर्नल लौंगडन ने जो रंगों का डिब्बा और ब्रश क्रिसमस के उपहार में भेजा था, मैं उससे खेलना चाहता था, पर मुझे समय व्यर्थ खोने के लिए झिड़का जाता था। मैं खेलने के लिए बाहर नहीं जा सकता था और घर में निठल्ला घूमने की भी आज्ञा नहीं थी; कुछ न करूं तो गणित के सवाल निकालूं।

मेरे सारे सपने, सारी कल्पनाएं और घुमक्कड़ विचार, जो मेरे चंचल शरीर में उमड़ते थे, कुचल दिए गए और घंटे दिनों में और दिन कभी न खत्म होनेवाले आगामी लम्बे दिनों में बदलते रहे। लगता था कि मुझे मनुष्य बनने और स्वतन्त्र होने के लिए सदियां चाहिए।···निस्संदेह पिटने के भय के बावजूद मैं आदेशों और उपदेशों

का पूर्णरूप से पालन नहीं करता था। हमें चूंकि जेब-खर्च नहीं मिलता था, इसलिए कोई अगर मुझे पैसा देता तो मैं पारिवारिक नियम का उल्लंघन करके झट ले लेता। अथवा मैं किसी भी सिपाही के साथ पलटन के बाज़ार जाता और उससे मिठाई या दूध स्वीकार कर लेता। हालांकि मां बार-बार समझातीं कि ये पहाड़ी भरोसे के लोग नहीं हैं और वे मुझे 'बिगाड़' देंगे। मां ने सूबेदार गरकसिंह के अर्दली, मुंशी से कोई चीज़ लेने से खास तौर पर मना कर रखा था क्योंकि उसने एक बार मेरा चुम्बन लेकर मुझे 'बिगाड़ने' का प्रयत्न किया था। मैंने चोरी-छिपे जो साहसिक कार्य किए मेरे जीवन पर उनका गहरा प्रभाव है, पर उनमें घरेलू अनुशासन का आंतरिक भय भी निहित है। पिता के मन पर ब्रिटिश सैनिक विधान की कठोरता और निष्ठुरता का जो प्रभाव था उसका इस अनुशासन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं था।

हमारे घर में हमेशा रूखा-सूखा और सादा भोजन पकता था। मेरे पिता को आठ रुपये भत्ते के अलावा 'काले' हवलदार की तनखाह और पलटन के बनिये से आटे, दाल, नमक और घी का दैनिक राशन मिलता था। पिता जेब से पैसा खर्च करके खाने की और कोई सामग्री बाज़ार से नहीं खरीदते थे। इसलिए परिवार का गुज़ारा इस राशन में भूंगे में मिले उस मनभर आटे और दूसरी चीज़ों पर होता था, जो दुकानदार लायसेंस बनवाने अथवा दूसरे काम करवाने के लिए रिश्वत देते थे। मेरी मां अच्छी गृहिणी थी; इसलिए परिवार को आवश्यक खाद्य-पदार्थ काफी मात्रा में मिल जाते थे। पर विभिन्न स्वादिष्ट और सुगंधित पकवान कभी-कभार बनते थे वरना वही रोटी और मसूर की दाल और कभी कोई सब्ज़ी। उपहार में जो फलों के टोकरे आते थे, हम अधीरता से उनकी प्रतीक्षा किया करते। मगर ये भी हमें हाथ रोककर दिए जाते और आम चुराने के लिए पिता के हाथ से पिटने की घटना मैं कभी नहीं भूल सका।

अगर कभी राशन में या ईद के त्यौहार पर जब हज़रत मुहम्मद के अनुयायी बकरों की कुर्बानी देते हैं, किसी पठान या मुसलमान बाजेवाले के घर से गोश्त आ जाता तो इसका अधिकांश भाग पिता को मिलता, क्योंकि वे परिवार में सबसे बड़े थे और समझा जाता था कि दफ्तर के काम में उन्हें अधिक शक्ति लगानी

पड़ती है। इसके विपरीत हम बदमाश किस गिनती में थे; दिन-भर खेलने और घूमने के अलावा हमें काम ही क्या था। इसलिए हमें एक-एक हड्डी और थोड़ा-सा शोरबा मिलता था। नौशहरा या पेशावर से कोई शुभचिंतक अथवा प्रार्थी अगर कभी अंडों का टोकरा भेज देता तो उसपर एकमात्र पिता का अधिकार होता। वे कुछ अंडे लाकर हमारी पहुंच से बाहर बरामदे में बंधे छीके में रख देते और हर सुबह उनमें से एक तलने के लिए मां को दे देते। हमारे मुंह में पानी भर आता और हम ललचाई हुई नज़रों से उन्हें खाते हुए देखा करते। कभी मां पिता के दफ्तर जाने के बाद दो अंडों का आमलेट बनाकर हममें बांट देती। पर यह भी सम्भावना थी कि पिता ने अंडे गिनकर रखे हों; इसलिए मां के मन में यह आशंका रहती कि अगर कहीं उन्हें पता चल गया तो शाकाहारी होने के बावजूद वे मां पर अंडे खुद खा जाने का आरोप लगाएंगे। अलबत्ता जो सेर-भर दूध मेरे पिता खरीदते थे, हमें उसमें से हर रात एक-एक प्याला मिल जाता था।

इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं कि हममें से कोई भी सैंडो पहलवान नहीं बन पाया; हालांकि पिता की व्यायाम की पुस्तक में उसका चित्र देखकर हम भी उस जैसा बनने की कामना किया करते थे। अलबत्ता शिव जब बड़ा हुआ तो वह घर से रुपया चुराकर ले जाता और खूब खाता था। इसीलिए डील-डौल में वह हमारा बड़ा भाई जान पड़ता था।

•

भोजन की जो व्यवस्था थी, वही कपड़ों की भी थी। पिता के स्वभाव में रुपये की बचत को अधिक महत्त्व प्राप्त था; इसलिए अपनी कंजूसी को उन्होंने 'सरलता' नाम दे रखा था। उन्होंने बस एक बार हरीश की शादी पर हमें कुछ कपड़े सिला दिए थे। वरना हम वही कुर्ते और पायजामे पहनते थे जो मां उस सूती और खाकी ट्विल से सिंगर मशीन पर सी देती थी जिसे हवलदार सुर्जन क्वार्टर-मास्टर स्टोर की रसीदों में गुम हो गई दिखा दिया करता था। एक बार सूबेदार गरर्कासह जार्ज पंचम के एडिकांग बनकर विलायत गए थे और वे मां के लिए यह सिंगर मशीन वहां से उपहार-स्वरूप लाए थे।

हमारे कपड़े जान-बूझकर खुले रखे जाते थे। पर हमारे शरीर बढ़ रहे थे; इसलिए ये सिकुड़ जाते थे या फिर धोबी के यहां फट जाते थे, जो

इन्हें पत्थर की सिलों पर पटक-पटककर घोता था। जब हम नये कपड़े मांगते तो पिता हमें तब तक टालते रहते जब तक सुर्जन को खुश करने का कोई अवसर हाथ न लग जाए अथवा खुद सर्जन स्टोर से कुछ कपड़ा लाकर उन्हें खुश करने की न सोचे। आम तौर पर सुर्जन और मेरे पिता क्वार्टर-मास्टर-क्लर्क चत्तरसिंह के विरुद्ध .संयुक्त मोर्चा बनाने में व्यस्त रहते थे। ऐसा अवसर हाथ आने में कई महीने बीत जाते। हम रोते और मां के प्राण खाते। वह आखिर दिल कड़ा करके अपनी संदूकों में बचाकर रखा हुआ कपड़ा निकालती। वह इसे काटकर हमारे लिए नये कुर्त्ते-पायजामे सी देती। चाहे हम ये घर के सिले हुए कपड़े घर के इस्तेमाल के लिए स्वीकार कर लेते, पर हम दर्ज़ी के सिले हुए बढ़िया फैशनेबुल कपड़े चाहते थे। मां की देहाती सूझ का इतना परिष्कार नहीं हो पाया था कि वह सर्दी के कोट काटकर अपनी मशीन पर ढंग से सी दे।

इसलिए हम तब तक मांगते और इंतज़ार करते और फिर मांगते जब तक कि पिता सुर्जन का कोई काम कर देते और वह इसके बदले हमें खाकी ड्रिल या सर्ज ला देता। तब हमें उस समय का इंतज़ार करना पड़ता जब पलटन का दर्ज़ी उस्ताद रमज़ान पिता का कृतज्ञ होकर हम दोनों भाइयों के लिए एक-एक सूट मुफ्त सी दे। रमज़ान ने हमारा माप ले लिया था क्योंकि पिता हमें उसके पास ले गए थे। बड़े बाबू के प्रति आदर-भाव के कारण कोई भी सेवा सहज में की जा सकती है। पर कोई भी मज़दूर, उस देश में भी जहां कृपा के रूप में मजूरी मिलती हो, बच्चों के कपड़े सीने पर समय नहीं लगा सकता, जबकि उसे सिपाहियों की वर्दियां सीने और मरम्मत करने के लिए सरकार से तनखाह मिलती हो, जबकि उसे सिपाहियों की मुफ्ती सीकर कुछ फालतू आमदनी करनी हो और जबकि उसे उसके पास करने को इतना काम हो कि 'उस्ताद दर्ज़ी' अपनी पलकें तक उसकी भेंट चढ़ा चुका हो।

गणेश ने और मैंने चाचा रमज़ान की दुकान के हफ्तों चक्कर लगाए और उसे तंग किया। सहृदय दर्ज़ी ने हमें अपनी सूइयों में धागा पिरोने को कहकर अपनी सहृदयता प्रकट की; पर हमारे सारे तकाज़े उसकी अपनी और उसके स्टाफ की मशीनों के शोर में डूबकर रह गए। रमज़ान ने सिर्फ उसी वक्त हमारा कपड़ा हाथ में लिया और उसपर कुछ समय भी खर्च किया जब दफ्तर में उसकी तनखाह रुक गई और जिसे जल्दी वसूलने के लिए उसे पिता से एडजूटेंट साहब

के पास सिफारिश करानी पड़ी। कपड़े चूंकि इस संकट काल में काटे और सीए गए थे, इसलिए उनमें कला की उस सुंदरता का अभाव था जो हम चाहते थे। विशेषकर जाकटें ! वे न अंग्रेज़ी बन पाई थीं और न देशी। दोनों स्टाईलों का कुछ विचित्र मिश्रण था। मुझे बहुत/ही निराशा हुई क्योंकि मेरी साहबी की भावना को ठेस लगी थी और ये कपड़े पहनकर मैं परिहास-उपहास का कारण बना था।

जूतों की भी कमो-बेश यही कहानी थी, चाहे उसमें कुछ भिन्न तत्त्व का समावेश हो गया था। क्वार्टर-मास्टर हवलदार सुर्जन हमारे लिए स्टोर से न फौजी जूते और न साधारण देशी जूते ला सकता था जैसाकि वह पिता को ला दिया करता था। कारण यह कि वहां बिगुल बजानेवाले लड़कों के लिए जो जूते आते थे, वे भी हमारे पांव से कई गुना बड़े थे। पलटन का पुराना मोची सौदागर अपना वादा पूरा नहीं कर पाया था। उसने हम दोनों के अंग्रेज़ी बूटों का माप एक साल पहले लिया था।

जबकि गणेश इसे व्यर्थ समझता था, मैं सौदागर के पास दिन-प्रतिदिन तकाज़ा करने जाता था और उसे अंग्रेज़ अफसरों के लिए चमड़े की पट्टियां और लम्बे बूट तैयार करने में व्यस्त पाता था। वह ऐनक चढ़ाकर अपने दढ़ियल और अनुभवी चेहरे पर चिंता की रेखा अंकित कर लेता और इधर-उधर व्यर्थ खोजने के बाद घोषित करता कि उससे माप गुम हो गया है। वह मेरे पांव का दोबारा माप लेकर कहता कि अगर तुम कल आओ तो देखोगे कि मैंने जूता बनाना शुरू कर दिया है। अलबत्ता जब मैं अगले दिन जाता तो वह वही या कोई दूसरा बहाना बना देता और एक बटुवा बनाकर मुझे टाल देता। उससे अगले दिन भी मैं उसे अपने बाकी पड़े काम में व्यस्त पाता। वह मुझे पहाड़ियों पर विलक्षण पशुओं की कहानी सुनाकर बहला देता और कहता कि इन पशुओं की खाल से जो जूते, बूट और कोट बनते हैं, उन्हें पहननेवाला अमर हो जाता है। फिर वह मुझे अपने द्वारा पकड़े गए सांपों की, पकाए गए मेंढकों की और कोई दूसरी विचित्र बातें सुनाकर टरका देता।

हमारे पुराने जूते बिलकुल फट चुके थे, इसलिए हमें पथरीले रास्तों पर

महीनों नंगे पांव जाना पड़ा। गणेश का खयाल था कि अगर हम योंही नंगे घूमते रहें तो हमारे पैर जल्द ही इतने बड़े हो जाएंगे कि हम फौजी बूट भली प्रकार पहन सकेंगे। पर दोपहर को धरती इतनी तप जाती थी कि हमारे पांव जलते थे।

इन्हीं दिनों निकट के गांव से एक मोची आ गया। उसने बारकों से बाहर-वाली सड़क के चौराहे पर बैठकर राहगीरों के जूतों की मरम्मत करने की आज्ञा पलटन के आफीसर-कमांडिग से प्राप्त कर ली और इस सिलसिले में पिता ने उसकी सहायता की। इस कृपा के बदले मोची ने गणेश और मेरा माप लिया और ज़रीदार पेशावरी जूते बना देने का वादा किया। पर उस बेचारे को लायसेंस खरीदना था, आवश्यक सामग्री खरीदनी थी और राहगीरों के जूतों की मरम्मत से रोटी ही मुश्किल से चलती थी; इसलिए वह हमारे जूते तैयार नहीं कर पाता था।

दोपहर बाद स्कूल से लौटते समय हर रोज़ हम उससे पूछते कि वह हमारे जूते बनाना कब से शुरू करेगा। इस शिथिल संसार के दूसरे दस्तकारों की तरह वह कल का बहाना बना देता। पर गरीब देहाती मोची सस्ती उजरत में जूते गांठकर इतना कम कमा पाता था कि वह जूते बनाने के आवश्यक औज़ार खरीदने में भी समर्थ नहीं था। इसके बावजूद हम नित्य तकाज़ा करने जाते। आकर्षण सिर्फ यही नहीं था कि उसने ज़रूरत के समय पिता से हमारे जूते बना देने का वादा किया था बल्कि हमारे बार-बार के तकाज़ों से बचने के लिए उसने यह भी कहा था कि हमें बढ़िया अंग्रेज़ी जूते बनाकर देगा।

आखिर जब उसके लिए झूठे वादे करना असम्भव हो गया और औज़ार खरीदने के लिए काफी पैसा भी न कमा पाया तो वह एक दिन नौशहरा के बाज़ार में गया और अपनी मामूली बचत से हमारे लिए सस्ते देशी जूते खरीद लाया। जिस बाबू ने उसे चौराहे पर बैठकर जीविका कमाने की आज्ञा ले दी थी और जो इस आज्ञा को रद्द करके उसे वापस गांव भी भिजवा सकता था, उसके बेटों के तकाज़ों को मोची ने यों पूरा किया। पर जब वह इन्हें लाकर हमारे मकान पर आया तो हम देशी भद्दे जूते देखते ही आगबगूला हो गए और हमने उन्हें पहनकर देखने तक से इनकार कर दिया। इस तथ्य को समझते हुए कि रिश्वत दे और फिर यह भी चाहे कि वह उसके बच्चों की रुचि के अनुसार हो, जैसाकि

दूसरे साहमी रिश्वतखोर कर सकते थे, पिता ने अपनी गर्जन-तर्जन से हमें शान्त किया। जूते जरा तंग थे। हम कई दिन तक फुनफुनाते और बड़बड़ाते रहे। आखिर जब गणेश की खूब मरम्मत हुई और मेरे मुंह पर एक थपत लगी तब कहीं हमारा विरोध समाप्त हुआ।

हमने जूते चुपचाप पहन लिए, पर उनसे हमारे पांव सूजने लगे। इसपर जूते शहर ले जाकर खुलवाए गए और यह पैसा पिता की जेब से खर्च हुआ। इसके बाद वे पाव में ठीक आते थे। तेल लगाकर उनका चमड़ा नर्म करने के खेल में हम ऐसे रम गए कि पांव के घाव और मन के घाव भूल गए और स्वभाव ने कटुता के धब्बे भी धो डाले।

पर हमारे घर की शान्ति हमेशा भंग हो जाती थी। जब हमारे माता-पिता और बाहर के लोगों में अथवा माता-पिता और हम बच्चों में कोई झगड़ा न होता तो हमारी अपनी लड़ाइयों से दीवारें गूंज उठतीं। गणेश और मुझमें जो परस्पर स्पर्धा थी उसने अब खुली शत्रुता का रूप धारण कर लिया था। हम अपनी गाली-गलौच और मार-पीट से घर-भर को सिर पर उठाए रखते।

इसके लिए गणेश और मैं बराबर जिम्मेदार नहीं थे। मैं स्वीकार करूंगा कि दोष अधिक मेरा ही था। बीमार होने के नाते मुझे जो छूट मिलती थी उसने मुझे स्वेच्छाचारी बना दिया था। परिणामस्वरूप मैं स्वच्छंद, अहंकारी, घमंडी और मुंहफट बनता जा रहा था और दूसरों को नीचा दिखाकर आत्मप्रदर्शन करता था।

मां के स्नेह ने इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया। मेरी निरीह कल्पना, मेरे खेलों और चालाकियों पर उसे इतना गर्व था कि उसने अकसर मेरी शरारतों में दैवी रहस्य देखना शुरू किया। इस पक्षपात से गणेश स्वभावतः चिढ़ता था।

उदाहरण के लिए जब मैंने पेड़ की एक तिकोनी टहनी से गोफिया बनाया तो मां ने कहा कि भगवान ने मुझे वही अस्त्र बनाने की प्रेरणा दी है जिससे कनिंघम साहब ने मुझे घायल किया था ताकि मैं उससे बदला चुका सकूं।

मैं गर्मी की शान्त दोपहरी में कमरे से निकल आता और बरामदे के एक कोने में बैठकर साहबों के बंगलों जैसा अपने लिए एक बंगला बनाता। मैं एक टूटी

हुई कुर्सी मध्य में रखकर और ह्वाइटवे लेडला एण्ड कम्पनी की
इधर-उधर विखेरकर आवश्यक वातावरण उत्पन्न करता। इससे भी
मदे में जो पुराना सन्दूक पड़ा था उसे पाखाना बनाने में मैं कोई हर्ज न
हालांकि उसमें कमोड नहीं था। मैं इस विश्वास के साथ अंग्रेज़ी ढंग का
बनाता कि बढ़ईगिरी में थोड़े दिनों के अभ्यास के वाद सचमुच का बंगला
कर लूंगा। गर्मी और पसीना निर्माणकार्य की प्रसन्नता और स्वच्छंदता
न बनते। अलबत्ता गणेश के बीच में कूद पड़ने का भय और खेल के
पकड़े जाने की लज्जा आनन्द में अवश्य मिश्रित रहती।

मुझे छिपकर खेलना विशेषकर इसलिए पसंद था कि मैं एक अदृश्य
अपनी कल्पना की एक लड़की से वातें किया करता था। मेरा ख्याल है
मां को किसीसे वातें करते सुना था कि मैं बड़ा होकर एक सुन्दर मेम के सा
करूंगा, यह वात मेरी कल्पना का आधार बन गई और मैंने साहव के जी
प्रतीक बनाकर इसे साकार रूप देना शुरू किया। "हैलो !" मैं अपने
सम्बोधित करता। यही एक अंग्रेज़ी शब्द था जो मुझे उस समय तक
और फिर सिपाहियों की अंग्रेज़ी भाषा में वात जारी रखता—"टिश-मिश
मिश, विश..." मैं बरामदे में उसके पीछे दौड़ता, अगर वह चिल्लाती
प्यारे सुनहरे वालों को सहलाता और उसके मुख पर चुम्बन
एक दिन मां ने मुझे यह खेल खेलते देख लिया और दैवी शक्ति
कारण वह आश्चर्यचकित सोचने लगी कि मैं वास्तव में कुछ
यह कल्पना-मात्र है। अगर मुझमें वाकई वह कुछ देखने की
के लिए अदृश्य हो तो मैं एक अलौकिक जीव हूं जिसने उसकी
है। निश्चित रूप से मैं भगवान कृष्ण बनकर गोपियों
पर मैंने जो सम्पत्ति बटोरी होती, उसमें से कुछ अपनी
डाल देता और जब मां पिता से मेरी लीला का उल्ले
मुस्करा देते।

मेरे 'अवतार' होने के अलावा, जिसकी मनोवृ
शकुन समझती थी, मां मुझे अपनी संतान के नाते स्व
जो उसे अपने ग्रामीण पूर्वजों से विरासत में मिला था
शक्ति थी, जो विवाह द्वारा प्राप्त प्रतिष्ठा से सिर्फ

उसने हमें प्राकृतिक जीवों की तरह धूल में पलने दिया। वह सिर्फ हमें कभी-कभी मछूत और नीच वर्ग के बच्चों से बचने के लिए कहा करती थी। जब वह मुझे अपने अत्यन्त विध्वंसकारी, पैशाची और विद्रोही रूप में देखती तो दो-चार गालियां देकर चली जाती। मेरे हठ में उसे चरित्र की दृढ़ता और शक्ति के कीटाणु, मेरी लम्पटता में जीवन की भावी विपत्तियों के विरुद्ध संघर्ष करने का उत्साह और सुगमता और मेरी असीम प्रसन्नता में उसे सन्तों की दया नजर आती, जो जीवन के दुःख-विपाद में खुद उसका अपना सहारा बन जाती।

जब मैं पढ़ा हुआ पाठ और कविता तोते की तरह दोहरा देता था, गणेश ने मेरी स्मरण-शक्ति की श्रेष्ठता का सिक्का उसी समय से मान लिया था। फिर मेरे महत्त्व को मां के पक्षपात ने बढ़ा दिया था, इसलिए मैं जान-बूझकर गणेश को सताता और उसे लड़ने के लिए उकसाता था। मैं जानता था कि अगर हमारा मुकदमा माता-पिता के सुप्रीम कोर्ट में पेश हुआ तो क्षीण स्वास्थ्य के कारण निर्णय मेरे पक्ष में होगा।

मुझे मालूम हो गया था कि भाई का क्रोध भड़काने का निश्चित ढंग उसकी सम्पत्ति पर कब्जा कर लेना था।

चीजों के इस्तेमाल में चौकस और सावधान होने के कारण गणेश ने बहुत-सी कापियां, लाल-नीली पेंसिलें, लाल पीले और निब आदि जमा कर लिए थे। पिता दफ्तर में स्टेशनरी के इंचार्ज थे। वे सब चीजें वही हमें देते थे। पर अपनी लापरवाही से मैं अपने हिस्से की चीजें योंही इधर-उधर बिखेर देता था और बाद में भाई का खजाना देख उससे ईर्ष्या करता था।

एक दिन दोपहर के बाद गणेश किसी काम से बाहर गया हुआ था, मैंने एक संदूक के पीछे उसके स्टोर का पता लगा लिया। मैंने उसपर हल्ला बोल दिया। दो लाल और दो नीली बढ़िया पेंसिलें, एक कापी और कुछ दूसरी छोटी चीजें चुरा लीं।

और मैंने तुरन्त पेंसिलों से कापी में लिखना और चित्र बनाना शुरू किया। मैं अपने बाल-स्वभाव से इतने बड़े और मोटे-मोटे अक्षर बनाता [illegible] एक अक्षर से पूरा पृष्ठ भर जाता था। चित्र तो एक पृष्ठ से दूसरे तक फै

कुर्सी मध्य में रखकर और ह्वाइटवे लेडला एण्ड कम्पनी की पुरानी सूचियां र-उधर बिखेरकर आवश्यक वातावरण उत्पन्न करता। इससे भी आगे, बरा- में जो पुराना सन्दूक पड़ा था उसे पाखाना बनाने में मैं कोई हर्ज न समझता, ांकि उसमें कमोड नहीं था। मैं इस विश्वास के साथ अंग्रेजी ढंग का यह मकान ाता कि बढ़ईगिरी में थोड़े दिनों के अभ्यास के बाद सचमुच का बंगला निर्माण र लूंगा। गर्मी और पसीना निर्माणकार्य की प्रसन्नता और स्वच्छंदता में बाधक बनते। अलबत्ता गणेश के बीच में कूद पड़ने का भय और खेल के दर्मियान में कड़े जाने की लज्जा आनन्द में अवश्य मिश्रित रहती।

मुझे छिपकर खेलना विशेषकर इसलिए पसंद था कि मैं एक अदृश्य साथी—अपनी कल्पना की एक लड़की से बातें किया करता था। मेरा खयाल है कि मैंने मां को किसीसे बातें करते सुना था कि मैं बड़ा होकर एक सुन्दर मेम के साथ शादी करूंगा, यह बात मेरी कल्पना का आधार बन गई और मैंने साहब के जीवन को प्रतीक बनाकर इसे साकार रूप देना शुरू किया। "हैलो!" मैं अपने साथी को सम्बोधित करता। यही एक अंग्रेजी शब्द था जो मुझे उस समय तक आता था और फिर सिपाहियों की अंग्रेजी भाषा में बात जारी रखता—"टिश-मिश, टिश-मिश, बिश···" मैं बरामदे में उसके पीछे दौड़ता, अगर वह चिल्लाती तो उसके प्यारे सुनहरे बालों को सहलाता और उसके मुख पर चुम्बन अंकित करता।··· एक दिन मां ने मुझे यह खेल खेलते देख लिया और दैवी शक्ति में दृढ़ विश्वास के कारण वह आश्चर्यचकित सोचने लगी कि मैं वास्तव में कुछ देख रहा हूं अथवा यह कल्पना-मात्र है। अगर मुझमें वाकई वह कुछ देखने की शक्ति हो जो दूसरो के लिए अदृश्य हो तो मैं एक अलौकिक जीव हूं जिसने उसकी कोख से जन्म लिय है। निश्चित रूप से मैं भगवान कृष्ण बनकर गोपियों के संग खेल रहा हूं! पर मैंने जो सम्पत्ति बटोरी होती, उसमें से कुछ अपनी बताकर गणेश रंग में भं डाल देता और जब मां पिता से मेरी लीला का उल्लेख करती तो वे अवज्ञा रे मुस्करा देते।

मेरे 'अवतार' होने के अलावा, जिसकी मनोवृत्तियों को वह आध्यात्मिव शकुन समझती थी, मां मुझे अपनी संतान के नाते स्वाभाविक प्रेम भी करती थी जो उसे अपने ग्रामीण पूर्वजों से विरासत में मिला था। वह खुद प्रकृति की शक्ति थी, जो विवाह द्वारा प्राप्त प्रतिष्ठा से सिर्फ ऊपरी ढंग से नियं

उसने हमें प्राकृतिक जीवों की तरह धूल में पलने दिया। वह सिर्फ हमें कभी-कभी अछूत और नीच वर्ग के बच्चों से बचने के लिए कहा करती थी। जब वह मुझे अपने अत्यन्त विध्वंसकारी, पैशाची और विद्रोही रूप में देखती तो दो-चार गालियां दे कर चली जाती। मेरे हठ में उसे चरित्र की दृढ़ता और शक्ति के कीटाणु, मेरी लम्पटता में जीवन की भावी विपत्तियों के विरुद्ध संघर्ष करने का उत्साह और सुगमता और मेरी असीम प्रसन्नता में उसे सन्तों की दया नज़र आती, जो जीवन के दुःख-विषाद में खुद उसका अपना सहारा बन जाती।

जब मैं पढ़ा हुआ पाठ और कविता तोते की तरह दोहरा देता था, गणेश ने मेरी स्मरण-शक्ति की श्रेष्ठता का सिक्का उसी समय से मान लिया था। फिर मेरे महत्त्व को मां के पक्षपात ने बढ़ा दिया था, इसलिए मैं जान-बूझकर गणेश को सताता और उसे लड़ने के लिए उकसाता था। मैं जानता था कि अगर हमारा मुकदमा माता-पिता के सुप्रीम कोर्ट में पेश हुआ तो क्षीण स्वास्थ्य के कारण निर्णय मेरे पक्ष में होगा।

मुझे मालूम हो गया था कि भाई का क्रोध भड़काने का निश्चित ढंग उसकी सम्पत्ति पर कब्ज़ा कर लेना था।

चीज़ों के इस्तेमाल में चौकस और सावधान होने के कारण गणेश ने बहुत-सी कापियां, लाल-नीली पैंसिलें, लाल फीते और निब आदि जमा कर लिए थे। पिता दफ्तर में स्टेशनरी के इंचार्ज थे। ये सब चीज़ें वही हमें देते थे। पर अपनी लापरवाही से मैं अपने हिस्से की चीज़ें योंही इधर-उधर बिखेर देता था और बाद में भाई का खज़ाना देख उससे ईर्ष्या करता था।

एक दिन दोपहर के बाद गणेश किसी काम से बाहर गया हुआ था, मैंने एक संदूक के पीछे उसके स्टोर का पता लगा लिया। मैंने उसपर हल्ला बोल दिया। दो लाल और दो नीली बढ़िया पैंसिलें, एक कापी और कुछ दूसरी छोटी चीज़ें चुरा लीं।

और मैंने तुरन्त पैंसिलों से कापी में लिखना और चित्र बनाना शुरू किया। मैं अपने बाल-स्वभाव से इतने बड़े और मोटे-मोटे अक्षर बनाता था कि एक अक्षर से पूरा पृष्ठ भर जाता था। चित्र तो एक पृष्ठ से दूसरे तक फैला होता था।

जब मैं अपना सिर हाथों में थामे अपनी कला-कृतियों को हर पहलू से देख रहा था, जैसे कोई निपुण चित्रकार अपने ईज़ल से दूर हटकर फासले से अपने चित्र को साफ-साफ देख रहा हो, तो गणेश उस समय अचानक आ गया। अपनी पैंसिलें और कापी पहचानकर वह मुझपर उसी क्रोध और अधीरता से झपटा जो उसका स्वभाव था।

"बात क्या है ? तुम लड़ते क्यों हो ?" मां ने रसोई से पूछा।

"मां, देखो तो सही, इसने क्या किया है !" गणेश क्रोध से चिल्लाया।

मुझे पिटता देख शिव रोने लगा हालांकि पल्ला मेरा भारी था। जबकि गणेश ने पैरों और कुहनियों से ठोकरें मारी थीं, मैंने जहां भी हो सका नाखून मारे और दांत काटे थे।

मां हमें अलग-अलग करने के लिए दौड़ी आई।

"मां, देखो !" गणेश ने अपनी घायल निरीहता को अंकित करने के लिए मुंह बनाया और मां को देखते ही मुझे छोड़कर अलग हो गया।

"खसमखाने, उसने क्या किया है कि तुमने घर-भर सिर पर उठा लिया है ?" मां ने उसे झिड़का।

"इसने मेरी पैंसिलें चुराई हैं और यह मेरी कापियां खराब कर रहा है," गणेश ने कहा।

"मैं सिर्फ उसके कुरूप चेहरे का चित्र बना रहा था। उसके बड़े-बड़े कान तो देखो।" मैंने कहा।

मां ने चित्र की ओर देखकर सिर्फ इतना कहा, "लड़के, अपने भाई का मजाक मत उड़ा। उसे उसकी पैंसिलें दे दे, खसमखाने ! मैं तुझे और मंगवा दूंगी।"

"मां, चित्र में यह तुम हो और यह पिताजी," मैंने बड़े कार्टूनों की ओर संकेत किया।

"लाओ मैं देखूं," मां ने कहा और कोई खास शकल पहचाने बिना ही मेरा उत्साह बढ़ाया, "बहुत अच्छे। जब तुम्हारे पिता घर आएं तो उन्हें दिखाना।"

मां ने पैंसिलों का वादा कर दिया इसलिए मैंने लूट का माल लौटा दिया। पर कापी का तो अब कुछ नहीं हो सकता था।

जब मेरा दोष हो तब भी मानो वह देवताओं के क्रोध का भागी बनने के

लिए अभिशप्त था, इसलिए पिता जब शाम को घर लौटे तो गणेश ने उनसे मेरी शिकायत की। वे हम दोनों पर बरस पड़े, "सूअर के बच्चो, अगर तुम लड़ना बंद नहीं करोगे तो मैं तुम्हारी हड्डियां तोड़कर रख दूंगा! क्या दफ्तर में कुछ कम परेशानी होती है कि घर आते ही तुम मेरा मगज खाने लगते हो? तुमने मेरा जीना दूभर कर रखा है! मैं तुम सबकी रोजी कमाने के लिए अपना सिर खपाता हूं और उसका फल मुझे यह मिलता है। मादर...!"

"मां को कोसते हो, उसका क्या कसूर है।" मां ने विरोध किया, "और तुम खुद क्यों सूअर बनते हो?"

"जो चीजें उन्हें दी जाती हैं आपस में बांटते क्यों नहीं?" पिता चिल्लाए। "जब मैं मर जाऊंगा तो क्या ये मेरी सम्पत्ति के लिए भी इसी तरह लड़ेंगे? अगर ये इसी प्रकार लड़ेंगे और परिवार की मर्यादा का पालन नहीं करेंगे तो मैं इन्हें छोड़कर अपनी सारी सम्पत्ति धर्मशाला के नाम कर दूंगा।..." तब उनकी आवाज़ धीमी पड़ गई और वे करुणा के स्वर में बोले, "इस निकम्मी संतान के लिए इस कुत्ती सरकार की सेवा करने से क्या लाभ? उस बड़े सूअर, हरीश को देखो! उसकी कृतघ्नता देखो!..."

इस बारे में माता और पिता दोनों सहमत थे। यों उनकी बातचीत एक अनिवार्य लक्ष्य पर पहुंच गई और वे हमारी व्यर्थ की लड़ाई को भूल गए।

१०

आजकल मुझे कोई बच्चा मुश्किल ही से ऐसा दिखाई देता है जो इस बात पर आश्चर्यचकित न हो कि उसका मन किस रहस्यमय मार्ग अथवा हिंसक कार्य की ओर भटक रहा है, वह किन विचित्र और अनदेखे साहसी कार्यों पर विचार कर रहा है और उसकी आत्मा के रंग कैसे बदल रहे हैं। जब मैं अपने अर्ध-अचेतन बचपन के प्रारम्भिक सात सालों पर दृष्टि डालता हूं तो छावनी के कठोर, अनुशासित और संकीर्ण वातावरण के बावजूद मैं अपने-आपको बहती हुई नदी के सदृश पाता हूं। यह कभी इसमें प्रतिबिम्बित होनेवाली किरणों से उज्ज्वल और प्रफुल्ल और कभी मेरे विषाद के आंसुओं से मलिन होती है; पर हमेशा बहती रहती है। मार्ग में जो बाधाएं और रुकावटें पड़ती हैं, कभी उनसे धीरे-

धीरे गुज़रती है और कभी तीव्र प्रवाह से तोड़ने-ढाने का प्रयत्न करती है। कभी प्रचंड धूप में क्षीण हो जाती है और कभी बरसात में उफन पड़ती है, पर थमती कभी नहीं। अलबत्ता मैं अपने बहाव की दिशा से अवगत नहीं था और अकसर अपना मार्ग बदल लेता था। पर मुख्य रूप से मैं अपने निकट बहनेवाली दूसरी नदियों के साथ-साथ बहता था। मुझमें जो रचनात्मक प्रेरणाएं थीं, वे एक-दूसरी के प्रति आंतरिक आकर्षण और थोड़ी ही दूर बहनेवाली जीवन की विशाल विस्तृत नदी के कारण थीं।

उन नीरस और निरानंद दिनों के अभावों में जब मनुष्य शैशव से बचपन की ओर बढ़ता है ये रचनात्मक प्रेरणाएं ही मेरी जीवन-शक्ति थीं। यों जब मैं मियां मीर और नौशहरा छावनी के बारे में सोचता हूं तो मुझे वे अनेक साहसी कार्य भी स्मरण हो आते हैं, जो मैंने सिर्फ अपने सपनों और कल्पनाओं ही में नहीं बल्कि बाहरी दुनिया में सरअंजाम दिए थे। कुछ क्षण, जो अत्यंत उज्ज्वल कहलाते हैं, वे इन दिनों को यहां तक जगमगा देते हैं कि मेरे बचपन के प्रथम क्रीड़ास्थल मेरे जीवन के प्रसन्नतम भाग जान पड़ते हैं, शायद इसलिए कि वे अत्यंत निरीह और भावुकतापूर्ण थे।

मुझे वे मोहक क्षण याद नहीं जब मेरी इंद्रियां और मेरे हृदय ने सीमांत प्रदेश-सी भूमि की सुंदरता और भयंकरता को अनुभव करना शुरू किया। पर मैं यह जानता हूं कि जब मेरी अवस्था सात साल की हुई कुछ दृश्य और कुछ ध्वनियां मेरे मस्तिष्क पर इतनी गहरी अंकित हो चुकी थीं कि वे मेरे बाद के जीवन की समस्त स्मृतियों की स्थायी पृष्ठभूमि बन गईं। ये दृश्य इतने स्पष्ट हैं कि अगर मैं अब भी अपनी आंखें बंद कर लूं तो नौशहरा छावनी में दोपहर का पूर्ण वातावरण देख सकता हूं, जिसमें प्रकाश के सतरंगे अणु मेरी आंखों के सामने यों घूमते होंगे जैसे केलाइडोस्कोप में घूमते हैं। अलबत्ता इस धरती की बड़ी-बड़ी वस्तुएं मेरी प्रारम्भिक कल्पना की कहानियां-सी जान पड़ती हैं जो बार-बार दोहराने से भी पुरानी नहीं होतीं।

उन दिनों की दुनिया में क्या-कुछ नहीं था। पर इन वस्तुओं के विपुल भंडार से कुछ प्रमुख नायक याद आते हैं।

उदाहरण के लिए वहा भूरे ताम्र रंग के पहाड़ अर्थात् स्वर्ग की सीढ़ियां थीं। वे नदी के सूखे पाट से परे मालाकंड यारकों की नुक्कड़ पर फैली हुई थी। वे निकट ही से ऊपर उठनी शुरू हुई थी पर उनकी चोटिया ऊंची, ऊंची—इतनी ऊंची थीं कि उस धुंध में खो गई थीं, जिसे हिंदुकुश की पर्वतमाला कहा जाता था। भूरी चोटियों के बीच जो थोड़ा अंतर था उसमें पठानों की झोंपड़ियां थीं, जो पहाड़ियों ही का अंग मालूम होती थीं। इन झोंपड़ियों के काले दरवाज़ों में से धुआं निकलता रहता था। पहाड़ियों और चोटियों के दर्मियान जहां कहीं समतल भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े होते थे वहां गेहूं और मकई की खेती होती थी, जिसमें एक बांस पर फटा-पुराना हैट टागकर 'डरना' बनाया जाता था। मुझे बताया गया था कि पठान जिन दामियों को युद्ध में मार डालते हैं, उनकी प्रेतात्माएं इन 'डरनों' में बंद कर देते हैं, इसलिए मुझे इनसे भय प्राता था।

लुंडा नदी के साथ-साथ सड़क पर हमेशा गधों, ऊंटों और आदमियों के कारवां चलते रहते थे। ये पशु खालों, ईंटों, अनाज अथवा कपड़े से लदे होते थे जबकि फटे कुर्तोंवाले सारवान इन्हें अपने डंडों से हांकते थे, ये धूल के बादल अपने पीछे छोड़ जाते थे। लाल सलवारें और काले कुर्तोंवाली पठान स्त्रियां अपने सिरों पर पानी के मटके अथवा ईंधन रखे गुज़रती थीं। वे अपनी बाज़ जैसी ... और बाज़ जैसी नाकों के साथ ऊपर से अपने पुरुषों की तरह ... थीं, पर भीतर से अपनी संतानों के प्रति और मेरे जैसे बालकों के प्रति सहृदय और कोमल थीं, जिन्हें वे रोटी के बड़े-बड़े टुकड़े और अचार खाने को देती थीं। भेड़-बकरियों के बूढ़े गड़रिये जिनकी कमरें बुढ़ापे से झुक गई थीं, मुझे खास तौर पर पसंद थे क्योंकि दुर्बलता के कारण उनसे किसी हानि की अपेक्षा नहीं ... चाहे मुझे घर पर हमेशा यह चेतावनी दी जाती थी कि अगर मैं उनके ... अकेला घूमूंगा तो वे निश्चित रूप से मेरा अपहरण करके ले जाएंगे।

मेरे उस समय के भौगोलिक ज्ञान के अनुसार पहाड़ों के आदिम दृश्य ... परे, पेशावर से परे जहां मेरा जन्म हुआ था और खैबर से परे जहां मेरे ... हो आए थे, काबुल के बादशाह का शासन था, जिसका राज्य ...निस्तान के साथ ग्रांड ट्रंक रोड से सम्बंधित था। इस सड़क के किनारे, ... सामने और लुंडा नदी के उस पार लकड़ी की दुकानों के पास शहर के ... जनों की झोंपड़ियां थीं। यह एक दूसरी दुनिया थी जिसने मेरी स्मृति पर ...

प्रभाव डाला था।

वहां पहियों की लकीरोंवाले खुले कोने में जहां से एक छोटी सड़क सदर बाज़ार को जाती थी, तांगे अव्यवस्थित ढंग से जहां-तहां खड़े रहते थे। वातावरण घोड़ों की लीद और सड़ी हुई घास की बदबू से भरा रहता, पर गाहकों और कोचवानों की तकरार, घोड़ों की हिनहिनाहट और हर प्रकार के लद्दू पशुओं के खुरों की नालबंदी करनेवाले लोहार की ठक-ठक उसे मुखरित करती। मुझे याद है कि जब हम उनके निकट से गुज़रते और अपने चेहरों से थकान के कुछ भी चिन्ह प्रकट करते तो कोचवान चिल्लाते हुए आगे बढ़ते और उनमें से हरएक पिता को अपने तांगे की ओर खींचता और साथ ही किराया ठहराने की बात भी करता। मगर पिता कभी-कभार ही उनकी बात मानते, वरना इस बहाने कि चलो थोड़ी-सी सैर और हो जाएगी अथवा बाज़ार में कुछ खरीदेंगे, हम पैदल ही घर लौटते। मैं जानता था कि वास्तविक प्रयोजन यहां से मालकंड बारकों तक किराया बचाना होता था।

हम जल्दी-जल्दी बाज़ार की ओर बढ़ते। वहां छोटे बाज़ार में दुकानों पर लों के ढेर और टोकरे के टोकरे देखकर मेरा मन खुशी से बल्लियों उछलने ।। गुलाब जैसे सुर्ख सेब, लकड़ी के भद्दे गोल संदूकचों के अन्दर रूई में पटकर रखे हुए अंगूरों के स्वादिष्ट सुन्दर गुच्छे, कंधारी अनार और फिर सूखे बेर, आड़ू, खजूरें, बादाम और अखरोट! इन्हें देख-देख मुंह में पानी भर आता और मैं मन ही मन "मैं खाऊंगा···मैं खाऊंगा···" का पाठ करता। अगर पिता कभी खरीदने के लिए सहमत हो जाते तो मैं खुशी से चिल्ला उठता और भूंगे में मिले फल सारे रास्ते बड़ी उत्सुकता से उठाए घर लौटता।

मैं बंद मीट-मार्केट को कभी नहीं भूल सकता, जिसमें मुसलमानों की भीड़ लोहे के हुकों से लटके हुए भेड़ों के शव टटोला करती थी। हमारा परिवार हिंदू होते हुए भी आगाखां इस्माइली सम्प्रदाय के प्रति अपनी निष्ठा बनाए हुए था और सिर्फ उन्हीं पशुओं का मांस खरीदता था जो मुस्लिम धर्म के अनुसार कलमा पढ़कर मारे जाते थे। हम चूंकि इस नियम का पालन करते थे इसलिए सदर बाज़ार मीट-मार्केट में सिर्फ मैं दफ्तर के अर्दली अथवा किसी मुसलमान बाजेवाले के साथ जाया करता था क्योंकि मांस मेरा मनभाता खाना था।

मार्केट में जाते रहने के कारण मैं बाज़ार की तंदूरी दुनिया से भी भली

भांति परिचित हो गया था, जहां नाज के ढेर और [illegible] के [illegible] लगे रहते थे। [illegible] निनानवाले और [illegible] गए होते, पर इतने पड़े [illegible] के कारण इतनी [illegible] जब कभी मैं इस प्रकार की किसी दुकान के [illegible] पानी भर आता है।

मैं समझता हूं कि मेरी [illegible] चीज देख सकता था। छोटी-छोटी दुकानों में [illegible] थे, उनकी मूंछें और दाढ़ियां [illegible] से उनके नाखून काटते थे। [illegible] याद हैं। वे अपने गालों पर [illegible] और गले में चांदी के जेवर होते थे। [illegible] नग्न भिखारियों को भली प्रकार पहचानता था। [illegible] एक-एक पैसे के लिए गिड़गिड़ाते, [illegible] हाथ और मुंह के घावों से मक्खियां भी उड़ाते रहते थे।

जब मैं छोटी गलियों और छोटे बाजार की [illegible] पर पारसियों के बड़े ब्लाक से, जहां यूरोपियन साहब जाते थे और सदर बाजार की हिन्दू दुकानों से करता हूं जहां सिपाही और [illegible] सौदा खरीदते थे तो मुझे एक श्रेष्ठ जाति के होने के नाते अपने वैभव पर गर्व अनुभव होता था। डनलप टायर, सिगर सिलाई मशीन और पीयर्स साबुन के पोस्टरों, जिलेट ब्लेडों और साहबों और बाबुओं के जीवन की अन्य सामग्री की मैं पूजा करता और इस जन्मगत श्रेष्ठता को पिछले जन्म के पुण्य कर्मों का फल समझता था।"'

बचपन ग्रहण करने की अवस्था होती है। इसलिए सिपाहियों को दुकानें लूटकर प्रसन्न होते देख मैं भी प्रसन्न होता, इस छोटे शहर में [illegible] ही उसका स्वामी हूं, जब स्थानीय व्यापारी पिता का अभिवादन करते और इन छावनी में रहनेवाले बच्चों को ढेरों उपहार मिलते तो मेरा मन [illegible]।

मगर हर्ष, उल्लास और विषाद के ये दिन [illegible]।

एक दिन पिता हम सबको पिकनिक पर ले गए जिसकी व्यवस्था उनके मित्रों ने लुंडा नदी के किनारे की थी। जब मां, गणेश, शिव और मैं नाव के पुल पर बैठे दोपहर का स्वादिष्ट भोजन कर रहे थे और ठंडी बर्फीली हवा खा रहे थे जो नदी के पानी पर बहती हुई तपते हुए मैदानों की ओर आ रही थी, तो सहसा एक अर्दली पलटन से आया। उसकी सांस फूली हुई थी और वह पसीने से सराबोर था। उसने आते ही पिता से कहा कि साहब उन्हें बंगले पर बुला रहा है।

"ओह, यह कुत्ती सरकार !" पिता बड़बड़ाए। "इस गर्मी में भी वह सुख की सांस नहीं लेने देती। शाम के इस वक्त उन्होंने मुझे क्यों बुलाया है ?"

"वे कहते हैं कि विलायत में युद्ध छिड़ गया, बाबूजी !" अर्दली ने हकलाते हुए कहा।

"कैसा युद्ध !" मेरे पिता ने उसके चेहरे पर आंखें गड़ाकर पूछा।

"जंग ! जंग ! लड़ाई !" सिपाही बोला।

पिता चौंककर उठ खड़े हुए। उनका रंग लाल-पीला पड़ गया। मित्रों से लेते हुए उन्होंने मेरी मां से कहा, "हरीश की मां, तुम लड़कों को घर ।न ।"

"हम तबाह हो गए," मां ने हमें चलने को तैयार करते हुए कहा। उसने अपने मित्रों से विदा ली और घर को चल पड़ी।

जब हम रेंकते हुए गधों और तांगों से जुते हिनहिनाते हुए घोड़ों और बिना तेल के चरचराते हुए छकड़ों में से और उस आग के धुएं में से जो कारवान के पठानों और उनकी लाल गालोंवाली पत्नियों ने हुक्के भरने के लिए जला रखी थी, गर्द से धुंधली सड़क के किनारे पहुंचे तो हमें मुनादी की मनहूस आवाज़ सुनाई दी जिसके बाद घोषणा हो रही थी—"जंग ! जंग ! छिड़ गई ! जंग, लड़ाई !"

मेरी मां ने पश्चिमी आकाश पर हत्या का उत्सव मनाकर अस्त हो रहे सूर्य की ओर देखकर कहा, "कलियुग का अंत निकट है।"

लुण्डा नदी पर पिकनिक करते समय अर्दली ने जो सूचना हमें दी थी, करनैल साहब ने और अगली सुबह आर्मी हैडक्वार्टर के आदेशों ने उसकी पुष्टि कर दी।

आधी ३८वीं डोगरा पलटन को ४१वीं डोगरा पलटन में मिला दिया गया। उसे लाहौर डिवीज़न के साथ युद्ध के लिए जाना था। बाकी आधी को चित्राल मे उत्तर-पश्चिमी सीमा की दूरस्थ छावनी मालकंड को जाना था ताकि अफगानिस्तान के रास्ते आक्रमण के विरुद्ध सीमा को दृढ़ किया जा सके।

इस आदेश के पहुंचते ही तमाम पलटन पर अवसाद छा गया और हरएक को यह चिंता पड़ गई कि देखें उसके भाग्य का क्या निर्णय होता है और उसे कहां जाना पड़ता है। क्योंकि यह फैसला होने में कि कौन-कौन-सी कम्पनियां समुद्र-पार जाएंगी और कौन-कौन-सी डिपो में रहेंगी, कुछ विलम्ब हो गया।

पलटन में लगभग आधे आदमी पेचिश से बीमार पड़ गए। कुछ वाकई बीमार थे और कुछ दवाई खाकर बीमार पड़ गए थे ताकि डाक्टरी तौर पर युद्ध-क्षेत्र में भेजे जाने के अयोग्य घोषित हो सकें। उनमें से कुछेक ने अपनी या अपने सम्बंधियों की ज़मीन बेच डाली ताकि रिश्वत देकर समुद्र-पार जानेवाले दस्तों मे से अपना नाम कटवा सकें।

मेरे पिता भी घबराए हुए थे क्योंकि पता नहीं था कि क्या हो। बाबू चत्तर-सिंह को बुखार आ गया और हमारे दोनों परिवारों के सम्बन्ध सहसा अच्छे हो गए। हमारे माता-पिता दिन में दो बार गुरदेवी के घर जाते थे। हम बच्चों को दोनों घरों के सदूकों मे से 'मोह कुछ' ढेरों मिलने लगा।

"करनेल साहब डिपो में रहेंगे," पिता ने एक दिन रसोई मे सुबह का खाना खाते और अपने भाग्य के बारे में सोचते हुए कहा, "और वे मुझे चाहते हैं। इसलिए यह सम्भावना है कि वे मुझे अपने साथ रखेंगे। दूसरी ओर अजीटन साहब, मेजर कार ने युद्ध में जाने का निर्णय किया है। वे भी मुझे चाहते हैं। शायद वे करनेल साहब को मुझे अपने साथ भेजने के लिए तैयार कर लें..."

लार्ड हार्डिंगवाली दुर्घटना के बाद जहां वे यह प्रार्थना करते थे कि वे साहबों की कृपादृष्टि से न गिर जाएं, उसके विपरीत अब वे मन से चाहते थे कि वे उन्हें बरखास्त कर दें अथवा अवकाश प्राप्त करने को कहें।

पर यदि 'इच्छाएं पूरी हों तो किसान बादशाह बन जाए।' वे बहुत दिनों तक दुविधा में पड़े रहे। आर्मी हैडक्वार्टर्स की चिट्ठियां और सर्कुलर चूंकि पहले वे ही खोलते थे, इसलिए बहुत घबराए हुए थे। उनके और सिपाहियों के मन में युद्ध का जो भय था, उसका वे देश के नागरिकों के आशावाद से सामंजस्य स्थापित नहीं

कर पाते थे।

"राजा-महाराजा सरकार को अपनी सेवाएं अर्पित करने में एक-दूसरे पर गिरे पड़ते हैं," उन्होंने मेरी मां को बताया। "आगाखां ने लिखा है कि उसे पहला आदमी भर्ती किए जाए। एक राजा जिसकी उम्र सत्तर साल है, युद्धक्षेत्र में जाने को तैयार है। बड़ी अजीब बात है।"

"बाजी, जंग कहां हो रही है?" मैंने पूछा, क्योंकि मैं पास बैठा उनकी बातें सुन रहा था।

"बच्चे, यह विलायत में हो रही है," पिता ने उत्तर दिया।

"यह क्यों हो रही है?" मैंने पूछताछ जारी रखी।

"बेटा, जर्मनी का कैसर, तुर्की का सुलतान और आस्ट्रिया का बादशाह एक ओर हैं और अंग्रेज और सारी दुनिया दूसरी ओर है।"

"यह फिर महाभारत के कौरवों और पांडवों का युद्ध है," मां ने लकड़ी से लकड़ी टकराकर चूल्हे में आग तेज करते हुए कहा। वह एक क्षण रुकी, अपनी आंखों से धुआं पोंछा और एक लम्बी सांस छोड़कर फिर बोली, "यह जंग ...नी भयंकर है! लेकिन अगर आगाखां अंग्रेज के साथ है तो अंग्रेज अवश्य ...तेगा। क्योंकि वे श्रीकृष्णजी महराज के अवतार हैं..."

"हूं, आगाखां, जैसे वह खुदा हो!..." पिता ने प्रतिवाद किया।

"तुम ईश्वर-निंदा का पाप अपने ऊपर मत लो," मां ने कहा। "आगाखां की चमत्कारी शक्तियों को कौन समझ सकता है? और कौन जानता है कि इस युद्ध में कौन-सी मायावी शक्तियां काम कर रही हैं?..."

"लेकिन मां, पांडव सिर्फ पांच थे जबकि कौरव सौ थे," मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार बात कही। "अगर आगाखां श्रीकृष्ण के अवतार हैं तो उन्हें अंग्रेजों के बजाय कैसर का साथ देना चाहिए।"

मेरे इस अकाट्य तर्क पर पिता मुस्कराए।

"हवलदार मौला बक्स कहता है," गणेश ने प्रसंग में भाग लेने के लिए बात शुरू की, "कि तुर्की का सुलतान तैमूरलंग है और उसने दुनिया में इस्लाम फैलाने के लिए जिहाद शुरू किया है..."

"ओह, पलटन की गप्पें मत सुना करो," पिता ने उसे डांटा। "साहब लोग इन दिनों अफवाहों के बड़े खिलाफ हैं।..."

"अच्छा, जब भी वह मुंह खोलता है उसे यों मत भिड़का करो," मां ने प्रतिवाद किया, "वह जो कह रहा है उसमें भी कुछ तथ्य होगा।"

"मूर्खता की बात मत करो," पिता ने चिढ़कर कहा।

"तुम चाहे जो कहो," मां ने अध्यात्मिक व्याख्या शुरू की, "दुनिया नंदी के सींगों पर थरथरा रही है। श्रीकृष्ण महाराज अपनी लीला दिखाएंगे। [illegible] प्रलय आ जाए। पुण्य पर पाप छा रहा है। यह सब इन फिरंगियों का दोष है, जिन्होंने इंजिन बनाए···और जो भगवान को भी कुछ नहीं समझते···"

"तुम पागल हो," पिता ने कहा। "इससे भगवान का कोई सम्बन्ध नहीं।"

"तुम मुझे पागल कह सकते हो," मां ने कहा, "पर युद्ध दुनिया में पाप के बढ़ जाने से होता है। शास्त्रों ने पहले ही इस युद्ध के बारे में लिख दिया था कि कलियुग में एक भयकर आग तमाम दुनिया को झुलस देगी। इसके बाद नई सृष्टि होगी और फिर से पुण्य स्थापित होगा।"

"मां जो कह रही है क्या वह सच है?" मैंने पिता से पूछा।

"नहीं बेटा, वह योंही भूक रही है," उन्होंने उत्तर दिया।

"अच्छा, जब तुम आग में झुलसोगे, तब तुम्हें पता चलेगा।"

प्रत्यक्ष रूप मे मां की भविष्यवाणी सही सिद्ध नहीं हुई, क्योंकि पिता को [illegible] कड के डिपो में जाने का आदेश मिला। इससे पिता को तनिक निराशा हुई क्योंकि वे जानते थे कि अगर वे समुद्र-पार से लौटते तो उनकी युद्ध-सेवाओं का बड़ा महत्त्व होता। दरअसल अब उन्हें किसी बात की परवाह नहीं थी। इतना ही [illegible] कि इस खबर ने दुविधा और आशंका समाप्त कर दी थी। घटना ने जो [illegible] उत्पन्न कर दी थी, उसे उन्होंने स्वीकार कर लिया।

मैंने दुनिया की भावी महान घटनाओं का [illegible] इसका मूलाधार मां से सुनी हुई पौराणिक कथाएं और [illegible]। [illegible] अतिरिक्त हम बिना किसी संकोच और भय के सेना की [illegible] फाड़कर देखा करते और सूरज की तेज धूप में [illegible] जो जब और सब रो रहे थे तब सिर्फ वहीं एक [illegible]। और हमारी भीरु, अचेत आत्माएं हमारे सिरों के [illegible] थी। इस दुःख और विषाद में प्रसन्नता की [illegible] कि [illegible] अमृतसर जाने और वहां स्कूल में पढ़ने की सोच रहे थे। [illegible]

उम्रों के साथ खेलने के लिए तरसता रहता था, यों लगा जैसे मैं एक नई शानदार दुनिया को जा रहा हूं, जहां चाची देवकी और चाचा प्रताप रहते हैं, जिन्होंने मुझे मांस खाना सिखाया था और जहां हमारा अपना मकान था। मेरे मस्तिष्क में गुरु की अद्भुत नगरी—अमृतसर का सारा वैभव उभर आया, इसमें नये के प्रति कौतूहल और हर्ष का मिश्रण था जो मेरी आंखों के सामने दूर तक फैलता चला गया था।